ओशो (रजनीश) का अधुनातम् शिक्षा दर्शन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

की

शिक्षा शास्त्र विषय

में

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी

की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2002

निर्देशक

डॉ0 जे.एल. वर्मा
एम.ए., एम.एड., पी.एच.डी.
प्रवक्ता, बी.एड. विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

शोधार्थी

रामयश
एल.एल.बी., एम.एड.
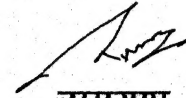
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

घोषणा–पत्र

मैं रामयश, घोषणा करता हूँ कि मैंने अपना शोध प्रबन्ध "ओशो (रजनीश) का अधुनातम् शिक्षा दर्शन" – डॉ. जे.एल. वर्मा के निर्देशन में पूरा किया है। यह मेरी अपनी मौलिक कृति है जो इससे पूर्व अन्यत्र कहीं न तो प्रकाशित हुई है और न प्रस्तुत की गई है।

उपरोक्त घोषणा के साथ यह शोध प्रबन्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत है।

शोधकर्ता

रामयश
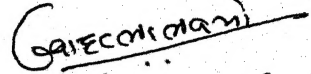
(एल.एल.बी.,एम.एड.)

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोधकार्य, "ओशो (रजनीश) का अधुनातम् शिक्षा दर्शन" मेरे निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। शोधार्थी रामयश की लगन एवं परिश्रम का परिणाम यह शोधकार्य पूर्णतया अनूदित है जो भावी शोधकर्ताओं के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करेगा। यह मेरा विश्वास है।

इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए मैं प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के परीक्षण की संस्तुति करता हूँ।

शोध निर्देशक

डॉ. जे.एल. वर्मा
प्रवक्ता बी.एड. विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज,झाँसी

प्राक्कथन

आज हमारा देश, हमारा समाज अन्धकार के गर्त में धंसता चला जा रहा है। इसका कारण हमारी शिक्षा की वर्तमान रूपरेखा तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली हैं। हम लोगों को वकील, डाक्टर, शिक्षक तो बना रहे हैं किन्तु यह सब धन कमाने की कलायें हैं। इससे हमारे समाज का चारित्रिक, सामाजिक विकास सम्भव नहीं है जिसके फलस्वरूप भारत आज विनाश की ओर बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा है। संसार में ज्ञान की सर्वप्रथम ज्योति भारत में प्रचलित हुई, भारत को जगत गुरू की पदवी से विभूषित किया गया। फिर भी आज क्या कारण है कि हम शिक्षा के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र में, टेक्नॉलॉजी के क्षेत्र मेें अन्य देशों से पिछड़े हुए हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था को विदेशी आक्रमणों का जो आघात सहना पड़ा है यदि किसी और देश को यह आघात सहने पड़े होते तो वह समूल नष्ट हो जाता, किन्तु हमारी शिक्षा विकसित नहीं हुई तो खत्म भी नहीं हुई। हमारी शिक्षा में विदेशी आक्रमणकारियों का प्रभाव जरूर पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय जनमानस विनाश के कगार पर खड़ा हुआ है।

यदि हम विनाश को रोकना चाहते हैं तो हमें राष्ट्रीय चरित्र और देश के प्रति भक्ति की भावना से ओत–प्रोत पाठ्यक्रम को शिक्षा में पिरोना पड़ेगा। वर्तमान समय में शिक्षा में अमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हो रही है। ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें बंधे बंधाये उत्तर न मिलते हों, प्रश्न शिक्षक द्वारा दिया जाये और उनके उत्तर छात्र स्वयं खोजकर के लाये तो वह उत्तर उसके मस्तिष्क से निकला हुआ सही उत्तर होगा। इसी तरह व्यायाम शिक्षा, खेलकूद की शिक्षा बालक के जीवन में परमावश्यक विषय है। क्योकि अगर वह इस प्रकार के मनोरंजक कार्यों में अपनी ऊर्जा का बर्हिगमन नहीं करेगा तो बड़ा होकर वह बसें जलायेगा, कालेज और स्कूलों में कुर्सियां तोड़ेगा और यहाँ तक कि उसके अन्दर से अगर यह ऊर्जा बाहर नहीं निकली तो फिर वह किसी की गर्दन तोड़ने का कार्य करेगा।

शोधार्थी ने शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को देखते हुए ही "ओशो (रजनीश) का अधुनातम् शिक्षा दर्शन" विषय पर शोध करने का विचार किया जिससे शिक्षा के क्षेत्र में ओशो के योगदान तथा उनके दर्शन का अध्ययन कर शिक्षा के स्वरूप को ऐसा बनाया जाय जिससे देश, समाज और व्यक्ति का चारित्रिक, सामाजिक तथा मानसिक विकास हो सके।

वर्तमान समय में जितनी अशान्ति, पीड़ा तथा घृणा समाज में फैली हुई है इतनी पिछली किसी सदी में नहीं थी। अतः शोधार्थी का विश्वास है कि ओशो (रजनीश) जैसे महान पथ प्रदर्शक ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपने जो विचार व्यक्त किये हैं वे समाज को ऐसा नागरिक देने में सक्षम हैं जो देश के विकास के लिये प्रतिबद्ध हों तथा समाज को ऐसी शिक्षा व्यवस्था दे सकें जिससे समाज का चारित्रिक मानसिक तथा धार्मिक विकास हो।

मेरे इस शोधकार्य में जिनका निर्देशन मुझे प्राप्त हुआ है, डॉ0 जे.एल. वर्मा, प्रवक्ता–बी.एड. विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी का मैं हृदय से आभारी हूँ तथा अन्य सहयोगियों में डॉ0 बाबूलाल तिवारी, प्रवक्ता–शिक्षा शास्त्र विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी जिन्होंने मेरे इस शोधकार्य में मार्गनिर्देशक का कार्य किया है का मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ तथा अन्य सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

शोधकर्ता

रामयश
एल.एल.बी., एम.एड.

विषय – सूची

अध्याय चतुर्थ
ओशो की शैक्षिक विचारधारा

अध्याय पंचम
ओशो की शिक्षा के अंग

अध्याय षष्टम्
निष्कर्ष एवं सुझाव

अध्याय प्रथम

"वर्तमान शोधकार्य के प्रेरक स्रोत एवं आवश्यकता"

अध्याय – 1

वर्तमान शोधकार्य के प्रेरक श्रोत एवं आवश्यकता

(क) समस्या की उत्पत्ति

वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व में पहले से अधिक शिक्षा है विद्यालय हैं अध्ययन के तमाम साधन उपलब्ध हैं। परन्तु इन सब साधनों के होते हुए भी इतनी पीड़ा अशान्ति घृणा तथा ईर्ष्या बढ़ी है इसका मुख्य कारण है हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में कहीं न कही बुनियादी भूल हो गयी है और इस तरह की भूल का दायित्व किसी पर भी इतना नही है जितना हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली का है। हम लोगों को वकील बनाते हैं, डाक्टर बनाते है, परन्तु क्या वास्तव में यह डाक्टर या वकील मानव मात्र के हित चिन्तन का काम करते है वह तो उस शिक्षा को अपना व्यवसाय मान कर धन कमाने की होड़ में जुट जाते हैं।

हम अपने बच्चों को पढ़ने लिखने के लिए विदेश भेज रहे हैं और समझ रहें हैं कि हमारा कार्य पूरा हुआ परन्तु यह ध्यान रहे कि हम उन्हें धन कमाने की कुशलता ही सिखा रहे हैं, हम उन्हें शिक्षित नही कर रहे हैं। शिक्षा तो वास्तव में वह है जो विद्यार्थी के जीवन को निखार दे स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है- ''हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य सही अर्थो में अपने को स्वावलम्बी मानता है।''

अतः इस तरह की शिक्षा प्रणाली अपनी वास्तविक परम्परा में खरी नहीं उतरती तथा धनोपार्जन की दिशा में अग्रसर यह शिक्षा राष्ट्र निर्माण में सहायक नही हो सकती। हमे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसमें आदमी सरल होकर अपने वास्तविक और आन्तरिक ज्ञान को प्रतिविम्वित् करके अपने को दृढ़ निश्चयी बनाने तथा समाज और देश के हित चिन्तन की दिशा में आगे बढ़े। अब तक जो शिक्षा है वह शिक्षा समाज के ढाँचे को मजबूत करने के लिए ही व्यवस्थित की गयी है उसे तोड़ने के लिए नहीं। तो हम स्कूल में बच्चों को सिखा

रहे हैं कि चोरी करना पाप है लेकिन यह नही सिखा रहे हैं कि शोषण करना पाप है, जबकि सत्यता यह है कि शोषण जारी रहेगा तो बच्चे चोरी अवश्य करेंगे।

हम यह शिक्षा दे रहे हैं कि गरीब अमीर की सम्पत्ति छीने तो पाप है या चोरी पाप है तो भी कोई अमीर गरीब के यहाँ चोरी करने नही जाता गरीब ही अमीर के यहाँ चोरी करने जाता है। परन्तु शोषण भी एक प्रकार की चोरी का ही तरीका है वहाँ अमीर गरीब के घर घुसता है यानी शोषण अमीर के चोरी करने का तरीका है और चोरी गरीब की तरकीब है अमीर के घर में घुसने की।

तो इस तरह से हम अपनी शिक्षा में गरीब को इनकार कर रहे हैं और अमीर की तरकीब को स्वीकार कर रहे हैं। बच्चों को हम महत्वाकांक्षा की शिक्षा दे रहे हैं उन्हें यह सिखा रहे है कि तुम आगे बढ़ो अन्यथा पीछे रह जाओंगे और अगर तुम पीछे रह गये तो तुम फेल हो जाओगे। धन-दौलत, मकान, तरक्की, यह सब जो भी सम्पत्ति की दौड़ है यह सब हम पैदा कर रहे हैं, यह शिक्षा मनुष्य के स्वास्थ्य उसके आन्नद तथा शान्ति को ध्यान में रख कर निर्धारित नही हुई। यह शिक्षा समाज का जो वर्तमान ढांचा है उसको कैसे चलाया जाय इसको ध्यान में रखकर निर्धारित की गयी है।

तो अब तक की सारी शिक्षा समाज की बाई प्रोडक्ट है और उससे ही जीवन जुड़ा हुआ है समाज शिक्षा को बनाता है फिर शिक्षा समाज को बनाने में जुट जाती है। आज हम एक बच्चे को शिक्षित कर रहे हैं कल वह शिक्षक हो जाता है शोधकर्ता जिस शिक्षा की बात कर रहा है उसमें व्यक्ति हमारा केंद्र होगा समाज नहीं, समाज को हम केंद्र ही नहीं रखना चाहते पुरानी शिक्षा का यह केंद्र था कि समाज का ढांचा बचे व्यक्ति टूट जाये इसलिए वह व्यक्तियों को तोड़ने में लगी है शेधकर्ता का मानना है कि समाज को हमें यंत्र बनाना चाहिए और व्यक्ति को प्राण। व्यक्ति को बचाने के लिए समाज चाहे चला जाये, समाज कहीं जायेगा नही यह समाज जायेगा और दूसरा समाज आयेगा ऐसी शिक्षा जो सिद्धान्त न देती हो नैतिक विचार करने की क्षमता को विकसित करती हो, निषेध सिखाओं और विधेय तक वह स्वंय पहुंच जायेगा और अगर हमने उसे सब रेडीमेड कनक्लूजन्स स्वंय दे दिया तो हमने

उससे सोचने के सब अवसर छीन लिए। हमने इसकी स्वंय की प्रतिभा को मार डालने का काम किया है। इनकार से असत्य कटेगा, शेष सत्य रह जायेगा हम उसे सही कुछ न दें सोचने की शक्ति प्रदान करें। सही जो भी होगा अपने आप आयेगा।

अतः शोधकर्ता के मन में वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सुधार के लिए कुछ लिखने की उत्कंठा जागृत हुई और उसने ओशो के शिक्षा दर्शन सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करके यह तय किया कि रजनीश को माध्यम बनाकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली जो युगों-युगों से ज्यों की त्यों एक से दूसरे को हस्तान्तरित की जा रही है उसके सुधार के लिए कुछ नया लिखा जाय।

(ख) अध्ययन का महत्व

आज समस्त विश्व अनेक प्रकार के द्वन्दों के मध्य से गुजर रहा है कहीं देश कहीं भाषा, कहीं परिवार तथा कहीं सम्प्रदाय इत्यादि। अनेक प्रकार के भीषण द्वन्द सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं इसका कारण है हम अथवा हमारा अज्ञान ही शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता रूढ़िवादिता मानसिक दुर्बलता जैसे दोषों को उत्पन्न करता है ऐसे भीषण समय में ओशो ने हमारे विक्षिप्त मन को स्पर्श किया।

ओशो हमारे युग के संबुद्ध हृदयस्पर्शी हैं 21 वर्ष की अवस्था में वे बुद्धत्व को प्राप्त हुए। सागर विश्व विद्यालय से दर्शनशास्त्र में एम. ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्रथम रहकर प्राप्त करने के बाद वे जबलपुर विश्व विद्यालय में प्राध्यापक रहे उन्हीं दिनों ओशो देश भर मे घूम-घूम कर प्रवचन देते रहे, उन्हे लाखों लोग सुनने आते। उन्होंने अपने प्रवचनों में रूढ़िवादी धार्मिक नेताओं को चुनौती दी तथा परम्परागत धारणाओं पर प्रहार किया जिसके कारण वे विवादास्पद बने।

ओशो ने अपने प्रवचनों में मानव चेतना के विकास के हर सम्भव पहलू पर बोला है। अनेक हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं में दिये गये मूल प्रवचन 650 पुस्तकों में प्रकाशित हुए हैं, जिनका 35 भाषाओं में अनुवाद हुआ है। ओशो के सानिध्य में पूना में सत्य के खोजियों का जो कम्यून खड़ा हुआ है वह आज भी फलफूल रहा है। विश्वभर में हजारों हजार शिक्षा एवं साधक समूचे वर्ष यहाँ ध्यान तथा अन्य कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए आते रहते हैं। कुछ लोग होते है-जो चिन्तन कला या विज्ञान के क्षेत्र में प्रतिभाशाली होते हैं और कभी - कभी ये दुनिया उन्हें सम्मानित करती है लेकिन ओशो अकेले हैं जिनके होने से यह दुनिया सम्मानित हुई यह देश सम्मानित हुआ।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था ने जीवन को दुरूह बना दिया है। इसकी अपेक्षा हम अपने जीवन को ओशो जीवन को सहज और स्वाभाविक बनाने की प्रेरणा देते हैं।

क्या यह सम्भव नहीं है कि जीवन को हम सीधा देख सकें। ऐसा भी सम्भव है कि हम जीवन को वैसा देखें जैसा कि पहले आदमी ने उसे देखा होगा क्या हमारा मन उतनी

सरलता और सहजता से जीवन को नही देख सकता है। शिक्षा के समक्ष मैं इसे सबसे अहम समस्या मानता हूँ।

शिक्षा व्यक्ति के चित्त को इतना बोझिल और जटिल कर दे कि उसका जीवन से सम्पर्क छिन्न भिन्न हो जाय तो यह अच्छा नही हो सकता। वोझिल और बूढ़ाचित्त जीवन के ज्ञान आनन्द और सौन्दर्य सभी से बंचित रह जाता है। ज्ञान आनन्द और सौन्दर्य की अनुभूति के लिए तो युवा चित्त चाहिए शरीर तो बूढ़ा होगा लेकिन मन तो सदा युवा रह सकता है। मृत्यु के अन्तिम क्षण तक जवान रह सकता है और ऐसा चित्त ही जीवन और मृत्यु के रहस्यों को जान सकता है।

लेकिन वर्तमान शिक्षा तो चित्त को बूढ़ा करती है वह चित्त को जगाती नही है, और भरने से चित्त बूढ़ा होता है। विचार जहाँ जागृत है वहां मन सदा युवा रहता है और मन जहाँ युवा है वहाँ जीवन का सतत् संर्घष है। वहाँ चेतना के द्वार सदा खुले रहते हैं वहाँ सुबह की ताजी हवायें आती है और उगते सूरज का प्रकाश भी आता है व्यक्ति जब दूसरों के विचारों में कैद हो जाता है तो सत्य के आकाश में उसकी स्वयं के उड़ने की क्षमता ही नष्ट हो जाती है। लेकिन वर्तमान शिक्षा क्या करती है? क्या वह विचार करना सिखाती है या कि मात्र उधार या मृत विचार देकर ही तृप्त हो जाती है।

श्रद्धा और विश्वास बांधते है सन्देह मुक्त करता है, सन्देह से हमारा तात्पर्य अविश्वास नही है क्योंकि अविश्वास विश्वास का नकारात्मक रूप है – ''न विश्वास न अविश्वास सन्देह'' विश्वास और अविश्वास दोनों ही सन्देह की मृत्यु है और जहाँ संदेह की मुक्ति दाई तीव्रता नही है वहाँ न सत्य की खोज है न प्राप्ति है संदेह नही तो सत्य की खोज कैसे होगी असंतोष कैसे होगा इसलिये तो हम सब अत्यंत छिछली तृप्ति के डवरे बन गये हैं और हमारी आत्माए सतत् की खोज मे बहने वाली सरिताएं नहीं हैं।

यह जड़ता पैदा की है शिक्षा ने तथा शिक्षक ने शिक्षा के माध्यम से मनुष्य के चित्त को परतंताओ की अत्यंत सूक्ष्म जंजीरों में बांधा जाता रहा है यह सूक्ष्मशोषण बहुत पुराना है। शोषण के अनेक कारण है – धर्म है, धार्मिक गुरू है, राजतंत्र है, समाज के निजी स्वार्थ में सत्ताधारी है।

सत्ताधारी ने भी कभी नहीं चाहा है कि- ''मनुष्य में विचार हो क्योकि जहां विचार है वहाँ विद्रोह का बीज है। विचार मूलत: विद्रोह है क्योकि विचार अन्धा नही हैं विचार के पास अपनी आंखे हैं। उसे कही नहीं ले जाया जा सकता उसे हर कुछ करने और मानने को राजी नही किया जा सकता इसलिए सत्ताधारी विचार के पक्ष में नहीं हैं वे विश्वास के पक्ष में नही हैं विश्वास अन्धा है और मनुष्य अन्धा हो तो उसका शोषण आसानी से हो सकता है और मनुष्य को उसी के अन्तर्गत संलग्न किया जा सकता है।''1

विचार के अभाव में व्यक्ति निर्मित ही नही हो पाता है। व्यक्तित्व की मूल आधारशिला ही इसमे अनुपस्थिति होती है। व्यक्तित्व की मूल आधारशिला क्या है ? विचार की स्वतंत्र क्षमता ! लेकिन स्वतंत्र विचार की तो जन्म से हत्या कर दी जाती है, गीता सिखाई जाती है, बाईबिल सिखाई जाती है उनके आधार पर उनके ढांचे पर विचार करना सिखाया जाता है।

ऐसे विचार से मिथ्या और कौन सा विचार हो सकता है, ऐसी अन्धी पुनुरूक्ति सिखाई जाती है और इसे ही विचार कहा जाता है। मनुष्य का अन्धापन उसे सब तरह से शोषण की भूमि बना देता है इसलिए विश्वास सिखाया जाता है, आस्था सिखाई जाती है, श्रद्धा सिखाई जाती है धर्मो ने यही किया है विचार जागृत होगा तो न वर्ण हो सकते हैं, न वर्ग हो सकते है, धन का शोषण भी नही हो सकता है और शोषण को पिछले जन्मों के पाप पुण्यों के आधार पर भी नही समझाया जा सकता है।

शिक्षा अनुशासन देने को नही आत्मविवेक देने को है उससे ही जो अनुशासन फलित होगा वही शुभ और मंगलदायी हो सकता है क्योंकि उस अनुशासन का फिर शोषण नहीं किया जा सकता, भ्रम पुरोहितो और राजनीतिज्ञों के हाथ मे हिंसा और युद्ध के लिए उपकरण नही बनाया जा सकता। उसके आधार पर हिन्दू को मुसलमान से नही लड़ाया जा सकता है।

शिक्षक बहुत से शोषणों का औजार रहा है और उसे इस बात का पता भी नही है क्योंकि वह स्वयं भी ऐसी ही शिक्षा का शिकार है। प्रत्येक पीढ़ी अपनी ईर्ष्या में अपने

1 शिक्षा और जागरण - सम्पादक स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ - 12

द्वेष वैमनुष्यता अपनी मूढ़ता सभी शिक्षक के द्वारा नई पीढ़ी को वसीयत के रूप में दे दी जाती है अपने अनुभव और ज्ञान के साथ-साथ अपने रोग दोष भी साथ मे सौप देते हैं।

हिन्दू बाप अपने बच्चों को हिन्दू होना सिखा जाता है, जैन अपने को जैन और मुसलमान अपने को मुसलमान और मनुष्य विरोधी जिन सम्पदायों में वह फँसा है उसी विष को वह अपने बच्चों को भी सौंप जाना चाहता है।

शिक्षा के अनेक माध्यमों से यह विष फैलाया जाता है और ऐसी विषाक्त सिखावन के कारण मनुष्य एक नही हो पाता है और उस धर्म के प्रति भी हमारी आंखे नही उठ पाती जोकि एक है और एक हो सकता है। ऐसे ही राष्ट्रीयतायें सिखाई जाती है और राष्ट्रीय अंहकारों को गौरवान्वित किया जाता है एक देश को दूसरे देश के विरोध मे पाला पोषा और खड़ा किया जाता है। परिणाम मे हिंसा फलती फूलती है और युद्धो की अग्नि जलती है।

जहाँ अहंकार है, वहाँ हिंसा है, वहाँ युद्ध है जिनके कीटाणु शिक्षक अबोध बच्चों में संक्रमित करते रहते है मनुष्य के साथ किये जाने वाले जघन्य से जघन्य अपराधों में यह एक है। अगर शिक्षक अत्यन्त जागरूक हो तो ही इस लांक्षन से वह बच सकता है।

शिक्षक को निद्रा से जगाना ही होगा उसके अतिरिक्त और कोई भागीरथ नही है जो कि विद्रोह की गंगा को पृथ्वी पर ला सके। लेकिन शिक्षक बड़े भ्रमों में है समाज उसे भूखा भले मार डाले लेकन उसके प्रति आदर खूब दिखाता है। शिक्षक को सदा से ही आदर एवं सम्मान दिया गया है वह गुरू है सम्माननीय है ऐसे उसके अहंकार को पोषित किया जाता है और उसे भ्रम में डाला जाता है और फिर उसके द्वारा नई पीढ़ियों को पुराने ढांचे में ढालने का कार्य लिया जाता है। ऐसे बड़े आदरपूर्वक ढंग से शिक्षक का शोषण किया जाता है समाज शिक्षक को व्यर्थ आदर नही देता है इस आदर के बदले में बहुत मंहगा काम उससे लेता है।

ओशो ने वर्तमान शिक्षा का बहुत ही बारीकी और गहराई से अध्ययन किया है समाज जिन बुराइयों को अनजाने में पकड़ लेता है उससे छुटकारा दिलाने का प्रयास किया है। अतः इनका शिक्षा दर्शन पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नया आनन्ददायक मार्ग प्रशस्त करता है।

उनका शिक्षादर्शन अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, ईर्ष्या, द्वेष को समाप्त करने वाला, समाज में नयी चेतना जागृत करने वाला है। उनकी शिक्षा रूढ़िवादियों धार्मिक नेताओं को चुनौती देने वाली परम्परागत धारणाओं पर प्रहार करने वाली तथा मानव चेतना के विकास के हर सम्भव पहलू के बारे में मार्गदर्शन देने वाली है। उनका कहना है कि शिक्षा के भीतर एक ज्वलंत अग्नि होनी चाहिए चिन्तन की, विचार की, विद्रोह की । शिक्षा द्वारा बहुत कुछ विध्वंस किया जा सके ताकि नये का सृजन हो उसके द्वारा बहुत कुछ गिराया जा सके ताकि कुछ नया बन सके उसे परम्पराओं से छोड़ा गया बहुत सा कूड़ा करकट जलाना है और व्यर्थ के घास–पात से मनुष्य की भूमि को साफ करना है ताकि उस पर प्रेम की और सौन्दर्य के फूलों की खेती हो सके।

शिक्षा के ऊपर यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, यदि शिक्षा इस दायित्व पर इस कसौटी पर खरी उतरी तो ही नये मनुष्य का और नई मनुष्यता का जन्म हो सकता है।

इसके लिए शिक्षण की आमूल पद्धति ही बदलनी होगी। प्रथम और अंतिम की कोटि तो नई होगी परीक्षाओं को समाप्त करना होगा और इन सबकी जगह जीवन के उन मूल्यों की स्थापना करनी होगी जो कि अहंशून्य और प्रेमपूर्ण जीवन को सर्वोच्च जीवन दर्शन मानने से पैदा होते है।

(ग) अध्ययन के उद्देश्य

व्यक्ति जब भी कोई महत्वपूर्ण कार्य करना चाहता है तो वह उस कार्य को करने के उद्देश्य को अवश्य समझ लेता है बिना उद्देश्य के कोई भी कार्य करने की कल्पना नही की जा सकती है उस कार्य को करने की कल्पना वह अपने मन में संजोकर रखता है बिना उद्देश्य का कार्य ऐसा ही है जैसे हम रास्ता चल रहे हों और मंजिल का हमें कुछ पता ही न हो उद्देश्य ही मनुष्य को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं और अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोगी प्रदान होते हैं।

अतः जान डयूवी का यह कथन अक्षरसः सत्य है "उद्देश्य सहित कार्यकरण ही कुशलता या बुद्धिमानी पूर्वक कार्य करना है।" कार्य करने का अगर उद्देश्य निश्चित कर लिया जाय तो कार्य अत्यन्त आसान हो जाता है और लगभग आधी सफलता हासिल हो जाती है।

महाभारत में एक कथा प्रचलित है एक बार की बात है कौरव तथा पाण्डवों के धनुर्विद्या के गुरू दोणाचार्य अपने शिष्यों की परीक्षा लेना चाहते थे वे सभी शिष्यों को जंगल में ले गये वहाँ पर उन्होने पेड़ पर एक बनावटी चिड़िया पहले से रख छोड़ी थी यह जानने के लिए कि कौन कितना बड़ा धर्नुधर है उन्होनें क्रमशः युधिष्ठिर, दुर्योधन आदि से चिड़िया की आंख पर निशाना लगाने को कहा और उनसे प्रश्न पूँछा कि तुम्हें क्या दिखता है ? सबने उत्तर दिया कि पेड़ तथा उस पर बैठी चिड़िया आप और जंगल सब दिखता है अन्त में अर्जुन से वही प्रश्न पूछने पर अर्जुन ने बताया कि मुझे केवल चिड़िया की आँख ही दिखाई देती है तब आचार्य ने बाण चलाने की इजाजत दी और अर्जुन का बांण चिड़िया की आंख वेध गया जबकि अन्य सभी के निशाने चूक गये।

हमारी अबकी सारी शिक्षा चालाकी की शिक्षा है, महत्वाकांक्षा की शिक्षा है जबकि हमारी शिक्षा का मूल उद्देश्य पराम्पराओं से मुक्त होना रूढ़िवादिता को समाप्त करना होना चाहिए परन्तु हमारा तो मजा इतना गहरा है कि हमारी शिक्षा परमात्मा तक को साधन बनाती है, एक आदमी मन्दिर में खड़ा है और भगवान से कह रहा है कि मेरे लड़के को नौकरी

दिलाओ तो मैं एक नारियल चढ़ाऊँगा, वह भगवान को भी अपनी नौकरी मे लगा रहा है। जबकि हमारी शिक्षा के मूल उद्देश्य जीवन के सही लक्ष्य को पाना होना चाहिए। तो हम एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जरूर कर सकते हैं जहां महत्वाकांक्षा की शिक्षा न दी जाती हो जहाँ हम व्यक्ति को व्यक्तिव देना सिखाते हों।

उसे उन साधनों से गुजारने की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ व्यक्ति के भीतर आनन्द के झरने प्रवाहित होने लगें ध्यान से, योग से, हम उसे उन प्रक्रियाओं में ले जायें जहाँ से वह अपने भीतर आनन्द के श्रोत खोज ले और हम धीरे-धीरे उसे इतने गैर महत्वाकांक्षी माइंड को पैदा कर दें कि वह दूसरे को साधन बनाने का ख्याल ही छोड़ दें और जब वह अपने भीतर आनन्द की जरा सी किरण पाले तो फिर उसके जीवन में प्रेम शुरू हो जायेगा और फिर वह प्रेम देगा ओर वह प्रेम बेशर्त होगा और अगर ऐसे व्यक्ति पैदा न हो सके तो दुनिया से युद्ध बन्द न होंगे।

जब तक लक्ष्य न पूरा होगा, तब तक पग की गति न रूकेगी।

आज कहे चाहे जो दुनिया, कल को बिना झुके न रूकेगी।।

अतः हमें यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि किसी कार्य को सफल बनाने के लिए उद्देश्य का निर्धारण और उद्देश्यों की गुणवत्ता भी आवश्यक होती है। इसी बात को ध्यान में रखकर शोधकर्ता ने भी अपने इस शोध में उद्देश्यों का निरूपण किया है।

(घ) समस्या का सीमांकन

शोधकर्ता को चाहिए की वह अपने शोधकार्य की समस्या को ठीक से समझ ले तथा उसके समाधान के लिए उसके स्वरूप को किसी हद तक सीमाबद्ध कर ले अन्यथा वह बार-बार अपने सम्बंधित विषय से भटक सकता है। इसलिए उसे अपने शोधकार्य को प्रारंभ करने के पहले ही अपनी समस्या का समाधान कर लेना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखकर ही शोधकर्ता ने अपनी चयनित समस्या को सीमाबद्ध करके शोधकार्य को पूरा करने के लिए प्रयास प्रारंभ किया है।

भगवान श्री रजनीश एक अद्भुत विद्वान हैं, धर्म, समाज और राजनीति पर उनकी पैनी नजर सदैव ही रही है अतः उन्होंने सभी विषयों पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने मानव मात्र के कल्याण के लिए समस्त प्रकार के पहलुओं पर चर्चा की है उनके समस्त क्षेत्रों से सम्बंधित विचारों का अध्ययन करने के लिए अत्यधिक समय की आवश्यकता पड़ेगी तथा इस कार्य में धन का व्यय भी बहुत आयेगा । अतः शोधकर्ता ने भगवान रजनीश के शैक्षिक दर्शन सम्बंधी विचारों को ही संकलित करने का प्रयास किया है।

उनके द्वारा कहे गये प्रवचनों की पुस्तकें तथा पत्र पत्रिकाएं पं. दीन दयाल उपाध्याय, स्वामी विवेकानंद आदि विचारकों की पुस्तकों तथा समाचार पत्रों की सहायता से उनके आधुनिक शिक्षादर्शन तथा विचारों की महती आवश्यकता सिद्ध करने का प्रयास किया जायेगा।

(ङ) अध्ययन विधि

शोधकर्ता को अपने शोधकार्य को पूरा करने के लिए किसी न किसी विधि को अपनाना पड़ता है। शोध समस्या की प्रकृति के अनुसार ही शोधविधि का प्रयोग किया जाना चाहिए अर्थात् अध्ययन विधि का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि समस्या का स्वरूप क्या है ? विद्वानों ने अनेकों शोध विधियों की खोज की है जिनमें तीन प्रमुख है :-

1. प्रयोगात्मक शोध विधि
2. ऐतिहासिक शोध विधि
3. विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध विधि

शोधकर्ता अपने इस शोध ऐतिहासिक शोध विधि तथा विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध विधि का प्रयोग करेगा। अतः दोनों विधियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

ऐतिहासिक शोध विधि

इस विधि में ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूंढकर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उनकी व्याख्या और आलोचना के आधार पर कुछ मान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। यह विधि अतीत के इतिहास का किसी विशेष दृष्टिकोण से अध्ययन करती हैं और संग्रहीत सामग्री की व्याख्या और विवेचना करके संबद्ध तर्क संगत निष्कर्षो तक पहुंचाती है। इतिहास ज्ञान के क्षेत्र में अतीत की घटनाओं का एकीकृत वर्णन है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक साधनों के आधार पर उसकी प्रमुख घटनाओं और उन्नत क्रम का अध्ययन किया जाता है इस प्रकार के अध्ययन से वर्तमान की समस्याओं का समाधान करने के लिए अतीत के अनुभवों से लाभ उठाया जा सकता है।

ऐतिहासिक विधि में शोधकर्ता के सामने यह कठिनाई होती है कि उसके पास प्रथम दृष्टि सूचनायें नहीं होतीं अर्थात् घटनायें भूतकाल में घट चुकी हुई होती हैं उनका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता, मूल लेखों के अन्दर झांक कर नहीं देखा जा सकता। अतः उसको उपलब्ध सामग्री पर ही विश्वास करना पड़ता है। अतीत की घटनाओं के संबंध में वह कुछ कर भी नहीं सकता है भले ही उपलब्ध आंकड़े कम विश्वसनीय ही क्यों न हों उन्हीं पर आश्रित होकर अपना शोधकार्य पूरा करना पड़ता है।

सर्वेक्षण विधि

सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए सर्वेक्षण समस्या से सम्बंधित आंकड़ों के संकलन का एक महत्वपूर्ण साधन व उपकरण है। समस्याओं का समाधान शिक्षाशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, सरकार, उद्योगपति तथा राजनीतिज्ञ सभी करते हैं। वे वर्तमान क्रिया की सार्थकता सिद्ध करने अथवा वर्तमान क्रिया में सुधार करने के लिए वर्तमान दशा से संबंधित आंकड़े एकत्र करते हैं। सर्वेक्षण संबंधी अध्ययन का क्षेत्र उसकी गहरी समस्या की प्रकृति पर निर्भर होगा उसके अनुरूप सर्वेक्षण विस्तृत अथवा संक्षिप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक देशों अथवा एक देश, धर्म, शहर अथवा किसी ईकाई को ही ले सकते हैं। किसी विशेष पक्ष के विषय में आंकड़े प्राप्त करेंगे या अनेक पक्षों के विषय में यह समस्या की प्रकृति पर निर्भर है।

"सर्वेक्षण का मूल अर्थ ही ऊपर से देखना या अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है।"1 शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्रायः सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है जिसका उद्‌देश्य एक क्षेत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बंध में यथार्थ संरचना प्रदान करना होता है।

इस प्रकार शोधकर्ता शोध सम्बंधी तथ्यों को खोजने और भारतीय जीवन में उनकी उपयोगिता को स्पष्ट करने के लिए ऐतिहासिक तथा सर्वेक्षण विधि का अनुसरण करेगा।

1 अनुसंधान विधियां, सर्वेक्षण अनुसंधान, एच के कपिल — पृष्ठ 186

च. तथ्य संकलन श्रोत

शोधकर्ता ऐतिहासिक विधि के अन्तर्गत प्राथमिक एवं गौण श्रोतों के ऐतिहासिक महत्व के तथ्यों को ढूंढकर उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण करके उनकी व्यवस्था और आलोचना के आधार पर निष्कर्ष निकालने का प्रयास करेगा।

प्रस्तुत शोध में विधि के विभिन्न आयामों, विद्यालय सर्वेक्षण, समुदाय सर्वेक्षण के द्वारा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के सुधार के लिए वर्तमान दशा से संबंधित आंकड़े एकत्र किये जायेंगे। सर्वेक्षण के उपकरण निरीक्षण प्रश्नावली, साक्षात्कार, मानक परीक्षण, मूल्यांकन, मापदण्ड आदि के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर सीमाओं का ध्यान रखते हुए शैक्षिक पाठ्यक्रम संबंधी सुझाव शोधकर्ता प्रस्तुत करेगा।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था उससे संबंधित साहित्य शास्त्र, उपनिषद, वेद, गीता आदि धर्मग्रन्थ या उनका ओशो पर प्रभाव का अध्ययन करके तथ्य एकत्र किये जायेंगे।

ओशो किन-2 शिक्षा शास्त्रियों से प्रभावित थे और महात्मा गाँधी जैसे विचारक ने उनको कहां तक मार्गदर्शित किया है इस संबंध में तथ्य इकट्ठे किये जायेंगे।

(छ) सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

संबंधित साहित्य से तात्पर्य है-शोध विषय से संबंधित ऐसा साहित्य जिसमें विषय के किसी पक्ष अथवा सम्पूर्ण विषय पर विचार व्यक्त किये गये हों अथवा सम्पूर्ण विषय पर विचार व्यक्त किये गये हों। शोधकर्ता को अपने शोध से संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण एवं अध्ययन करके उपयोगी विषय सामग्री को एकत्र करते हुए समस्या का समाधान निकालना पड़ता है।

भारतीय शिक्षा के संबंध में विभिन्न विद्वानों, शिक्षा विदों एवं मनीषियों ने समय-2 पर अपने-2 दर्शन के अनुसार विचारों का प्रतिपादन किया है। उनमें स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, पं. दीनदयाल उपाध्याय, भगवान श्री रजनीश (ओशो) डॉ0 जे. एल. वर्मा का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

शोधकर्ता ने उपरोक्त महामानवों के शिक्षा सम्बन्धी नियमों का अध्ययन किया है तथा ओशो के जीवन दर्शन से अत्यन्त प्रभावित होकर उनकी विशिष्ठ चिन्तन धारा आधुनिक शिक्षा दर्शन के लिए उनकी उपदेयता शिद्ध करना चाहता है।

शोध से सम्बन्धित साहित्य स्वातन्त्रोत्तर, उत्तर प्रदेश में उच्चशिक्षा का विकास १९५०-७५
पी.एच.डी. थीसिस गणेश मूर्ति मिश्राप्रवक्ता डी.वी. कालेज उरई, पृष्ठ - 12

अध्याय द्वितीय

"ओशो का व्यक्तित्व एवं कृतित्व"

अध्याय-2

ओशो का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

जन्म एवं शिक्षा

कभी-कभी धरती में मनुष्य समाज को जागृति का अवसर प्रदान करने एवं परिवर्तन के ईश्वरीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए युग पुरूषों का जन्म होता है। वे प्रतिकूल परिस्थितियों में जन्म लेने के बाद भी अपनी जन्मजात चमत्कारिक प्रतिभा द्वारा बड़े से बड़े कार्य सम्पन्न करके अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय क्षितिज में कुछ ऐसे ही उज्जवल नक्षत्रों का जन्म हुआ, उन्होंने अपने प्रकाश से वसुन्धरा को आलोकित कर दिया। इस काल खण्ड में दो प्रकार के व्यक्तियों के दर्शन हुए एक तो वे जो पश्चिमी दुनिया से शिक्षित होकर आये और वहाँ की भोगवादी संस्कृति से लालाइत होकर कुछ करना चाहते थे तथा दूसरे वे जो पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के बीच में खड़े हो गये विज्ञान भी, धर्म भी ऐसे ही बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारम्भ है और उनके साथ ही समय दो स्पष्ट खण्डों में विभाजित होता है "ओशो पूर्व एवं ओशो पश्चात्।"

ओशो के आगमन से एक नये युग एक नये मनुष्य एक नये जगत का सूत्रपात हुआ जिनकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी धार्मिक विचार पद्धति में नही है। ओशो धार्मिकता के प्रथम पुरूष हैं सर्वथा अनूठे संबुद्ध हृदयदर्शी हैं।

मध्य प्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसम्बर 1931 को जन्मे ओशो के बचपन का नाम रजनीश चन्द्र मोहन था। इनकी माता का नाम अमृत सरस्वती तथा पिता का नाम देवतीर्थ भारती था। ओशो जैन थे। उन्होंने जीवन के प्रारम्भिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था 100 फीट ऊंचे पुल से कूदकर बरसात में उफलती नदी को तैरकर पार करना उनके लिए साधारण कार्य था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित पुरोहितों, मुल्ला, पादरियों,

सन्त महात्माओं, जो स्वभाव के बिना ही भीड़ के अगुआ बने बैठे थे कि मूढ़ताओं और पाखण्ड का पर्दाफाश किया।

21मार्च 1953 को 21 वर्ष की आयु में ही ओशो संबोधि (परम जागरण)को उपलब्ध हुए। संबोधि के सम्बन्ध में वे कहते हैं। अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूँ अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।

उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शन शास्त्र के विद्यार्थी थे। संबोधि घटित होने कि पश्चात भी उन्होंन पढ़ाई जारी रखी और सन् 1957 में सागर विश्व विद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्ड मेडलिस्ट) रहकर एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच में आचार्य रजनीश के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्व विद्यालय के अपने 9 सालों के अध्यापन काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्राय 60,70 हजार की संख्या में श्रोता उनकी सभाओं में उपस्थित होते वे अध्यात्मिक जनजागरण की एक लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में उनकी उपस्थिति में वह जादू होता वह सुगन्ध होती जो किसी पार के लोक से आती है।

सन् 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्याग पत्र दे दिया ताकि अस्तित्व ने जिस परम भगवत्ता का खजाना उन पर लुटाया है उसे पूरी मानवता में बाँट सकें और नये मनुष्य को जन्म देने की प्रक्रिया में समग्रतः लग सकें।

ओशो का यह नया मनुष्य जेरवादि बुद्धा एक ऐसा मनुष्य है जो जेरवा की भाँति भौतिक जीवन का पूरा आनन्द मनाना जानता है। और जो गौतम बुद्ध की भाँति मौन रहकर ध्यान में भी उतरने में सक्षम है ऐसा मनुष्य जो भौतिक और अध्यात्मिक होना तरह से समृद्ध है। जोरवादी बुद्धा एक समग्र और अविभाज्य मनुष्य है इस नये मनुष्य जो भौतिक के बिना पृथ्वी का कोई भी भविष्य शेष नही है।

सन् 1970 में ओशो बम्बई में रहने के लिए आ गये । पश्चिम से सत्य के खोज की जो भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के किन्ही और गहरे रहस्यों को जानने और

समझने के उत्सुक थे उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें देशना दी कि अगला कदम ध्यान हैं ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितम्बर में मनाली (हिमाचल) में आयोजित अपने शिविर में ओशो ने नव सन्यास में दीक्षा देना प्रारम्भ किया। इसी समय के आस-पास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने गये।

सन् 1974 में वे अपने बहुत से सन्यासियों के साथ पूना आ गये जहाँ श्री रजनीश आश्रम की स्थापना हुई। पूना आने के बाद उनके प्रभाव का दायरा विश्व व्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया बुद्ध, महावीर, कृष्ण, शिव, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ ही साथ भारतीय आध्यात्म के आकाश के अनेक नक्षत्रों आदि शंकराचार्य, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा, आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का कोई ऐसा आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग तन्त सेन हसीद सूफी जैसी विभिन्न साधना परम्पराओं के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीतिक विज्ञान, मनोविज्ञान दर्शन शिक्षा परिवार समाज गरीबी जनसंख्या विस्फोट पर्यावरण तथा सम्भावित युद्ध के व उससे भी बढ़कर एड्स महामारी के विश्व संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन दृष्टि उपलब्ध है।

शिक्षा और साधनों के बीच दिये गये उनके में प्रवचन 650 पुस्तकों से भी अधिक में प्रकाशित हो चुके हैं और 30 भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं ''मेरा संदेश कोई सिद्धान्त कोई चिन्तन नही है, मेरा सिद्धान्त तो रूपान्तरण की एक विधा, एक विज्ञान है।

ओशो अपने आवास से केवल दो बार बाहर आते थे, प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकलते हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को सन्यास की दीक्षा देने के लिए।

सन् 1980 में कट्टरपंथी हिन्दू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शरीरिक रूप से बीमार हो जाने के कारण 1981 को वे मौन पर चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष जून में उन्हे अमेरिका ले जाया गया। उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगन राज्य के मध्य भाग में हजारों एकड़ जमीन खरीदी थी, जहाँ उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे वह अर्धरेगिस्तानी जगह एक फलते-फूलते कम्यून में परिवर्तित होती गयी, वहाँ लगभग 5000 प्रेमी मित्र मिलकर अपने सदगुरू के सानिध्य में आनन्द और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के निर्माण को यर्थाथ रूप दे रहे थे। शीघ्र ही यह नगर रजनीश पुरम संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का एक निगमा कृत शहर बन गया।

किन्तु कट्टरपंथी ईसाई धर्माधीशों के प्रभाव में राजनीतिज्ञों के निहित स्वार्थ बस प्रारम्भ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमेरिका के संघीय राज्य और स्थानीय सरकारें हर समय प्रयास कर रही थी।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्टूबर 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारम्भ कर दिया। जीवन सत्यों के स्पष्टवादी व मुखर विवेचनों से निहित स्वार्थों की जड़े चरमराने लगी।

अक्टूबर 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर अप्रकाश नियमों के उल्लघंन के 35 मन गढ़न्त आरोप लगाये बिना किसी गिरफ्तारी वारन्ट के ओशो को बन्दूकों की नोंक पर हिरासत मे ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नही की गयी उनके हाथ पैर पर हथकड़ी बेड़ी डालकर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल में घुमाते रहे बाद में उन्हे पोर्टलैण्ड (ओरेगन) ले जाया गया। इस प्रकार जो यात्रा कुल 5 घण्टे की है वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों द्वारा उन्हे थेलियस नामक धीमें असर वाला जहर दिया गया।

नबम्वर 1985 को अमरीका छोड़कर ओशो भारत लौट आये यहाँ की तत्कालीन सरकार ने भी उन्हें समूचे विश्व से अलग-थलग करने का पूरा प्रयास किया। तब ओशो नेपाल चले

गये। नेपाल में भी उन्हें अधिक समय तक रूकने की अनुमति नही दी गयीं।

फरवरी 1986 में ओशो विश्व भ्रमण पर निकले जिसकी शुरूआत उन्होंने ग्रीस से की लेकिन अमरीका के दबाव के अर्न्तगत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नही दी। इन तथा कथित स्वतंत्र व लोकतान्त्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्वीटजरलैण्ड, स्वीडन ग्रेट ब्रिटेन, पचिमी जर्मनी, हॉलैण्ड, कनाडा, स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना के अपने आश्रम में लौट आये जो अब ओशो कम्यून इन्टरनेशनल के नाम से जाना जाता है। जहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों से पंडित पुरोहितों तथा राजनेताओं के पाखण्डों व मानवता के प्रति उनके षडयंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यम ओशो के प्रति छोटे बड़े सभी प्रकार के समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अम्रत वचन व इनके सम्बन्ध में लेख व समाचार प्रकाशित करने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, तर्क साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इन्टर नेशनल में आने लगे। पुण्य की चिर आकांक्षा का सपना साकार देखकर उन्हें अपनी ही आँखो पर विश्वास न होता था।

26 दिसम्बर 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से भगवान सम्बोधन हटा दिया 27 दिसम्बर 1989 को ओशो कम्पून इन्टरनेशनल के बुद्ध सभागार में सांध्य प्रवचन के समय उनके 10000 शिष्यों व प्रेमियों ने एक मत से अपने प्यारे सदगुरू को "ओशो" नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्टूबर 1985 में जेल में अमरीका कीी रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियस नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने एवं उनके शरीर को प्राण घातक रेडियेसन से गुजरने के कारण उनका शरीर तब से निरन्तर अस्वस्थ रहने लगा और भीतर से क्षींण होता गया इसके बावजूद वे ओशो कम्यून इन्टर नेशलन पूना के दि गोतम बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल 1989 तक प्रतिदिन संध्या में 10000 शिष्यों, खोजियों और प्रेमिओं की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हे ध्यान में डुबोते रहे। इसके बाद अगले कई महीने उनका शारीरिक

कष्ट बढ़ गया।

ओशो की अंतिम यात्रा

इसके बाद शुरू हुई ओशो की अंतिम यात्रा 17 सितम्बर 1989 से पुनः गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम मे हर शाम केवल आधे घण्टे के लिए उपस्थित होते रहे आकर ओशो मौन दर्शन सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। इस बैठक को उन्होने "ओशो हवाइटरोवब्रदरहुड" की स्थापना की। ओशो 16 जनवरी 1990 तक प्रतिदिन सांध्य 7 बजे ओशो हवाइटरोवब्रदर हुड की सभा में आधे घण्टे के लिए उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वह सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गये। 18 जनवरी को ओशो हवाइटरोवब्रदरहुड की संध्या सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी प्रेम अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर का दर्द इतना बढ़ गया है कि वे हमारे बीच नही आ सकते लेकिन वे अपने कमरे से ही 7 बजे से ही हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी 1990 को पाँच बजे ओशो शरीर छोड़कर महाप्रयाण कर गये। इसकी घोषणा सांध्य सभा में की गयी। ओशो की इच्छा के अनुरूप उसी सांध्य सभा में उनका शरीर गौतम बुद्धा ऑडीटोरियम में 10 मिनट के लिए रखा गया। 10 हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखरी विदाई का उत्सव संगीत, नृत्य, भावातिरेक व मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाह के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी 1990 के पूर्वाह उनके अस्थिफूल का कलश महोत्सव पूर्वक कम्यून में लाकर च्वांम्त्सू हॉल में निर्मित संगमरमर के समाधि भवन में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

OSHO

NEVER BORN

NEVER DIED

ONLY VISITEL THIS

PLANET EARTH BETWEEN DEC. 1931 JAN 1990

ओशो एवं उनका आर्थिक चिन्तन

ओशो ने अपने व्याख्यानों में आर्थिक चिन्तन को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। वह यह नही चाहते थे कि आदमी के पास जितना धन सम्पत्ति उपलब्ध है उस पर वह सन्तोष करके बैठ जाय "यथा ते ते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर" उन्होंने इस सन्तोष को नकार दिया है उन्होंने कहा है कि सौर (चादर) चाहे जितनी छोटी हो पैर पूरे फैला लेना है क्योंकि पैर चादर से बाहर आयेंगे और रात को जब ठण्ड महसूस होगी तब सवेरे चादर बढ़ाने का ख्याल आयेगा अन्यथा पड़े रहो उसी छोटी चादर में सिकुड़े हुए क्योकि पैर तो बढ़ेगा परन्तु चादर अपने आप कभी नहीं बढ़ेगी इस प्रकार से उनकी दृष्टि सामाजिक बुराइयाँ खत्म करने के साथ-साथ आर्थिक जगत को सुदृढ़ कराने की भी है वह कहते हैं व्यक्ति जब तक आर्थिक रूप से समृद्धशाली नहीं होगा वह चिन्तन की दिशा को प्राप्त नही कर सकता बुद्ध ने अपने राजपाठ को क्यों छोड़ दिया क्योकि वह राजा थे और राजा जो सभी भोगों का स्वाद ले चुका उसके लिए वह महत्वपूर्ण नही रह गया तब ही चिन्तन की दिशा में बुद्ध आगे बढ़ सके।

पूर्व के लोग पश्चिम की बराबरी कभी नहीं कर पाये उसका मूल कारण यह रहा कि पूर्व का मानव पूर्णरूपेण धार्मिक प्रवृत्ति का था तथा पश्चिम के लोग पूर्णरूपेण विज्ञान की दिशा में सोचने वाले। आदिकाल से आमेरिका रेड इन्डियन लोगो का अविकसित देश रहा है। अभी कुछ तीन सौ साल पहले वहाँ यूरोपीय देशों के तथाकथित सभ्य लोग पहुंचे और वहाँ उन्होने रेड इंडियन लोगों को बलात् बन्दी बनाकर उन्हें आरक्षण स्थलों पर आबद्ध कर दिया। सभ्य लोगो ने मूल निवासियों से उनका देश छीन लिया और असभ्य लोग अपने ही देश में आरक्षण की सलाखों के पीछे प्रतिबंधित हो गये। जगंलो में पशुओं की भांति उन्हें पाश में जकड़ दिया गया।

ऐसा तो दुनिया के इतिहास में सदैव होता रहा है लेकिन अमेरिका में जो हुआ वह कोई बहुत प्राचीन नहीं है इसलिए उसका प्रभाव आज भी सभी दिशाओं में महसूस किया जा सकता है।

तो शोधार्थी का मानना यह है कि विज्ञान एवं धर्म अगर साथ-साथ चलते तो पूर्व तथा पश्चिम दोनो ही आर्थिक तथा धार्मिक रूप से बराबर के समृद्ध होते जबकि हुआ यह कि

पश्चिमी देशों में केवल विज्ञान की दिशा में दौड़ लगाई और समृद्धशाली हो गया जबकि भारत जैसे देश धर्म को ही पकड़कर रह गये और उनकी आर्थिक दशा यह हो गयी कि वह विदेशों के अरबों के कर्ज में आ गये। परन्तु हानि में दोनों रहे कारण, विज्ञान जानने वाले को धन, ऐश्वर्य, आराम के साधन तो सब उपलब्ध हो गये पर उन्हे देखने वाला न हो, एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जा रहा है उसके पास इतना धन हो गया है कि अब आगे धन का कोई मूल्य नहीं है क्योंकि धन से जो खरीदा जा सकता था वह खरीद सकता है अब और आगे धन इकट्ठा करना सिर्फ मिट्टी कंकड़ इकट्ठा करने के बराबर है क्योंकि उसे खरीदने का कोई प्रयोजन नही है उसके आगे धन का कोई मूल्य नहीं है बड़े से बड़ा मकान उसके पास है बड़ी से बड़ी कार उसके पास है उसके पास सारी सुविधायें है जगत जो दे सकता है उसके पास है लेकिन अब भी वह धन की दौड़ में पागल होता चला जा रहा है सारी सुविधाओं का उपभोग नही कर पा रहा है कभी पिकनिक कि लिए बाहर नही जा पा रहा है, क्योंकि धन कमाने में लगा है। सुन्दर से सुन्दर स्त्री घर में ले आया है लेकिन उससे बात करने का समय कहाँ है क्योंकि वह धन कमाने में लगा है। तो धन से जो उसने इकट्ठा भी कर लिया है, वह उसको भी नही भोग पा रहा है अब आगे धन का कोई मूल्य भी नहीं है, तो यह धन का इस पागलपन से कमाना किसी भीतरी पागलपन से पैदा हो रहा है उन्होंने कहा है कि यह कहीं भीतरी पागलपन है जो भीतर आक्यूपाइड रहना चाहता है वह इतना ज्यादा व्यस्त रहना चाहता है कि उसे अपने पागलपन का पता न चल जाये।

तो इस तरह से सब गड़बड़ हो गया है क्योंकि भौतिकवाद आधा सत्य है, तथा विज्ञान आधा सत्य है,यानि आधा सिक्का और धर्मयोग आधा सिक्का है, लेकिन जो अपने आधे हिस्से को देख रहे हैं वे अपने दूसरे हिस्से को स्वीकारने को राजी नहीं है। लेकिन जिस आधे को वे स्वीकार कर रहें हैं वह भी आधा और जिस आधे को इन्कार कर रहे है वह भी आधा। अत: धन और धर्म एक दूसरे के सहारा हैं और उसके इन्कार करने से आधे को छोड़ने से वह आधा भी मिट जायेगा। यही कारण है कि अगर आप अमेरिका के बालक से प्रश्न करें कि वह इस समय क्या सोच रहा है तो वह उत्तर देगा कि सोच रहा हूँ कि चांद पर घर कैसे बनाया जाये और अगर भारत के बच्चे से यही सवाल करें तो वह कहेगा कि सोच रहा हूँ आज

रामलीला कहाँ देखने जाऊँ ! परिणाम, भारत का जवान धन से कमजोर होकर रामलीला देख रहा है और विदेश का जवान भारत में आकर धर्म तीर्थो में हरे राम हरे कृष्ण गाता पागल बना घूम रहा है।

अतः ओशो का मानना है कि ''भौतिकवाद तथा धर्म अगर दोनो को साथ मे लेकर चला जाय तो व्यक्ति अन्दर से सुखी हो सकता है और आर्थिक दृष्टि से भी अपने राष्ट्र को समृद्धशाली बना सकता है।''1

1 शिक्षा और जागरण पेज नं. 17

ओशो एवं उनका व्यक्तित्व

ओशो एक युग पुरूष हैं। युग को शाब्दिक अर्थ न लिया जाय। सत युग 1,72,80,00 वर्ष का था त्रेता युग 1,29,60,00 वर्ष का था। द्वापर 864000 वर्ष का था और कलियुग 432000 वर्ष का है मेरे कहने का अर्थ ये है कि ओशो ने हमारे समय के ज्ञान और दर्शन को जो योगदान दिया है वह महत है, अभी विदा हुई शताब्दी के महानतम चिन्तकों में ओशो खड़े होते हैं।

पिछली सदी के महान चिन्तकों और विचारकों के विषय में सोचना शुरू करें तो कई नाम ख्याल में आते हैं जिनमे कार्लमार्क्स और लेनिन बर्टेंडरसल और अपने ही देश के डॉ. राधाकृष्णन ऐसे लोग है जिन पर सबसे अधिक शोध कार्य हुआ है। मुझे इस बात मे संदेह नहीं है कि जैसे-जैसे ओशो के इर्द-गिर्द मंडराता विवादों का वातावरण शांत होगा, बृद्धिजीवी उनकी देशनाओं को समझने और उन पर व्याख्या करने का प्रयास करते चले जायेंगे।

वरिष्ठ पत्रकार एम.बी. कामथ ने ओशो टाइम्स मे लिखा है कि पिछली बार जब मैं पूना गया था तो मेरा ध्यान इस ओर गया कि उन्होंने कितना विस्तृत अध्ययन किया है उनकी लायब्रेरी में रखी पुस्तकें इसकी गवाह हैं। लेकिन इससे महत्वपूर्ण तथ्य है उनका विचारक होना और विचारों को वे अक्सर सिर के बल खड़ा कर दिया करते थे और जो लोग सोचने विचारने के आदी नहीं हैं उन्हे भयभीत कर देने के लिए इतना काफी था। सदा स्मरण रखने वाली उनकी हजारों सूक्तियों मे ऐसी कितनी मणियाँ मिल जायेंगी जिनकी जगमगाहट लोगों को चौंकाती भी है ओर चुनौती भी देती हैं।

वर्ड्स फ्राम ए मैन ऑफ नो वर्ड्स की यह सूक्ति देखें "समाज तुम्हें सिखाता है कि जो सुविधाजनक है उसे चुनो उस रास्ते पर चलो जिस रास्ते में आदम और हव्वा के जमाने से तुम्हारे पुरखे चलते आ रहे हैं। समाज तुम्हे उस जाने पहचाने रास्ते पर चलने को कहता है ताकि तुम्हे भरोसा रहे कि लाखों लोग जहाँ से गुजर चुके हैं वहां से तुम गलत जगह नही जा सकते"

लेकिन एक बात याद रखो "भीड़ को कभी सत्य का अनुभव नहीं होता सत्य हमेशा अकेले-अकेले व्यक्तियों ने ही जाना है"। यहाँ ओशो अपने सुनने वालो को भीड़ से अलग

होने को कह रहे हैं चिरपरिचित रास्तों को छोंड़कर गुम हो जाने को कह रहे हैं। ताकि भटकते हुए व्यक्ति अपना रास्ता खुद खोज सकें ऐसे परिणाम की बात सोचना ही सामान्यजन को भयभीत कर जाता है। हमारे समय के अनेक दार्शनिक ऐसा सुझाव देने का साहस नहीं कर सकते, लेकिन ओशो स्वाभाविक और सहज रूप से ये बातें कह जाते हैं यहीं वे औरों से भिन्न हैं।

कई मामलों में शोधार्थी का मत है कि, वे वैज्ञानिक कम और कवि अधिक हैं। जैसे कृष्ण पर वे बोले तो इतनी अन्तरंगता और रसपूर्ण ढंग से बोले जैसे उन्हें करीब से जानते हैं। ठीक जैसे कजान जाकिस ने परमात्मा की बात की है। मुझे लगता है अगर मार्क्स वादी विद्वान डी.डी. कौशाम्बी अगर ओशो के साथ बैठा होता तो इस विषय को लेकर दोनों में अच्छा विवाद होता। कौशाम्बी जब कृष्ण को देखता तो विद्वान और पांडित्य की दृष्टि से देखता है। उसके पास कृष्ण को 'भगवान' होने की कोई धारणा नहीं है वह 'कृष्ण' के संदेशों को खींचतान मानता है कौशाम्बी को कृष्ण के विकृत संदेश में कोई उपयोगिता नजर नहीं आती और उसका मानना है कि उसमें कोई प्रेरणा भी नहीं है। कौशाम्बी ने कृष्ण और गीता की भरपूर आलोचना की है वैज्ञानिक उदाहरणों से, लेकिन ओशो तो कवि हैं। वे पूरी बात बदल देते हैं। ऐसे लगता है जैसे बोलने से पहले उन्होंने स्वयं को कृष्ण में डुबोया है कृष्ण में डूबने से मेरा मतलब भौतिक कृष्ण में डूबने से नहीं है बल्कि कृष्ण की अवधारणा में डूबने से है। इस तरह वह स्वयं ही कृष्ण बन गये हैं।

ओशो कहते हैं अपने विश्वासों को तोड़ दो मैने अपने खुद के कुछ विश्वास बनाये हैं। जो मुझे अच्छे लगते हैं फिर वे कहते हैं। जीवन केवल उन चीजों से बना है जिनमें कोई लक्ष्य नही हैं। तो फिर इससे पहले कि मैं उनसे विवाद करूं वे स्वंय कहते हैं जीवन सयमं में ही महत्वपूर्ण हैं और मै शान्त हो जाता हूँ लेकिन इसका महत्व क्या है? कोई भी चीज महत्वपूर्ण क्यों हो? मुझे लगता है अगर मैं ओशो के आगे बैठा होता तो हर शब्द पर शायद मेरा मन विवाद खड़ा करता और मैं वाक युद्ध में उलझ जाता जब तक कि शब्दो का अस्तित्व ही समाप्त न हो जाता या फिर मैं उनके पास बिलकुल मौन होकर बैठ जाता बिना एक भी शब्द बोले और कुछ मिनट बाद में निःशब्द लौट जाता आनन्दित होकर,

कि हमारे बीच संवाद हो सका अभी जब मैं यह लिख रहा हूँ तो भी मुझे लग रहा है कि मै उनके साथ संवाद कर रहा हूँ।

इस व्यक्ति के साथ यह बात बड़ी मजेदार है कि वह मर कर भी जिंदा है उनके शब्द कभी फटकारते हैं, कभी चुनौती देते हैं ओर बार-बार कहते हैं तुम सोचते हो तुम नहीं जानते हो? भाई तुम जानते हो तुम बस अपने आप को इजाजत नहीं दे रहे हो कि तुम जानते हो इस तरह ओशो से बात करते करते मजा आने लगता है।

ओशो की कभी मुझे कमी महसूस नहीं होती क्योंकि उनसे मेरा वाद विवाद अनन्तरूप से चलता रहता है मैने कुरान भी पढ़ी है गीता का अध्ययन भी किया है लेकिन किसी भी किताब ने मुझे सोचने के लिए चुनौती नहीं दी लेकिन जब भी मैं ओशो की कोई किताब खोलता हूँ तो हर विचार मझे सोचने पर मजबूर कर देता है कई बार ओशो अपने विचार का दंश ऐसा छोड़ते है कि व्यक्ति छटपटा जाये कई बार उनको पढ़ते मुझे ऐसा लगता है कि अपने विचारों की मार से छटपटाते श्रोताओं को देखकर वे कितना मजा लेते होंगे।

कई बार तो वे अपने आप को ही काटते हुए नजर आते हैं और मेरा मानना यह है कि यह अपरिहार्य भी है विरोधाभास बौद्धिक और भावनात्मक विकाश का हिस्सा है। बाल्टहिटमैन के स्वर में स्वर मिलाकर ओशो सहसा कहते थे क्या मै खुद को काटता हूँ हाँ जरूर ! कई बार मैं ऐसा सोचता हूँ कि ओशो और हिटमैन के बीच समय की इतनी गहरी खाई होने के बाबजूद दोनो में कितनी समानता है।

सत्य की वैसी ही अभीप्सा उत्सव का वैसा ही अहसास मै अपना ही उत्सव मनाता हूँ और खुद को ही गाता हूँ और जो मै कर रहा हूँ वही तुम भी करो क्योकि मेरा हर अणु भी तुम्हारा ही है किसी दिन मै सोचता था कि कोई ओशो और हिटमैन पर तुलनात्मक अध्ययन करेगा पी.एच.डी. के शोध के लिए यह विषय हमेशा ताजा रहेगा।

मैने शुरू में कहा था कि ओशो एक युग पुरूष हैं। युग पुरूष शास्वत होता है उसे सदा स्मरण किया जाता है आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उसका महत्व होता है मनुष्य के लिए भी उसके पास एक सन्देश होता है इस कसौटी पर ओशो कहाँ तक खरे उतरेंगे।

समय के मुकाम पर इसका अन्तर मै स्वयं नहीं जानता लेकिन इस पर विचार करें जिस दिन क्राइस्ट को सूली पर चढ़ाया गया था उस दिन तक कितने लोगो ने उन्हें सुना था हो सकता है रोम के गवर्नरों ने रोम तक उनकी खबर पहुंचाई हो लेकिन वह खबर बहुत विस्तृत नहीं थी जहां तक रोम का सवाल था जीजस एक और अपराधी थे जिसे कानून ने सूली पर चढ़ा दिया था। बस इतनी धूमिल सी ही खबर थी असली खबर एक दूसरे के द्वारा ही आगे पहुंची और इसमें समय लगा क्राइस्ट के पक्ष में बस यही बात जाती थी कि वहाँ के लोगों के पास इतना कुछ नहीं था जो उनका मन इधर उधर भटक सके इस परिस्थिति में जीजस का सूली पर चढ़ाया जाना उनके लिए बड़ी खबर थी।

बुद्ध अधिक देर तक जिए और बड़ी संख्या में उन्होने लोगों को सम्बोधित किया लेकिन उनका संदेश भी मुंह जबानी एक दूसरे तक पहुंचा। आज की परिस्थिति बिकुल अलग है।

मीडिया सूचना और ज्ञान के श्रोत को धन्यवाद कहना चाहिए अब विचार तेजी से यात्रा कर लेते हैं लेकिन विचारों के स्वीकृत होने के लिए वैश्विक रूप से बचाये जाने के लिए यह जरूरी है कि उनमे एक स्वीकार्यता हो। क्या ओशो की देशनाये वैश्विक हैं?

सुकरात की तरह उन्होंने भी सम्वाद को अपनाया ऐसा लगता है कि सुकरात की तरह ही ओशों की मृत्यु भी अपने विचारों के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का परिणाम थी फिर भी सुकरात ने किसी धर्म की स्थापना नहीं की। बुद्ध ने एक नये धर्म की स्थापना की। सुकरात को बुद्ध से कम ज्ञानी तो नहीं कहा जा सकता फिर कैसे उसे भुला दिया जाय।

ओशों के विषय में कई ऐसे प्रश्न हैं जिनका अभी कोई उत्तर नहीं है, हो सकता है, हम सबके जाने के बादे भी ओशो जीते चले जायें यह समय ही बतायेगा।

एम0 बी0 कामथ, वरिष्ठ पत्रकार **ओशो टाइम्स जनवरी 2000 से**

अध्याय तृतीय

"त्याज्य एवं ग्राह्य विचार पद्धति"

अध्याय 3

त्याज्य एवं ग्राह्य विचार पद्धतिः-

जिस प्रकार शरीर उपयुक्त भोज्य पदार्थ ग्रहण करके ही स्वस्थ रह सकता है इसके विपरीत अनुपयुक्त पदार्थ ग्रहण करने से इनके नष्ट होने का खतरा बना रहता है। ठीक इसी प्रकार अनुपयुक्त विचार पद्धतियों को स्वीकार करके कोई देश सुखी समृद्ध एवं स्वस्थ रह सकता है अन्यथा उसके नष्ट होने की सम्भावना उत्पन्न हो जाती है मानव शरीर के इसी प्रकार के अन्यान्य उदाहरण देकर ओशो ने मानव कल्याण को गहरी समझ के द्वारा वास्तविक जीवन के कल्याण के लिए कल्याणकारी सुझाव दिये हैं।

जहां तक ग्रहण करना या त्याग देना यह बात बहुत कुछ अपने ऊपर आधारित बात नही है, क्योंकि त्यागा हुआ या यूं कह लें अनिच्छा से त्यागा हुआ कुछ भी छूट नहीं सकता। जिस प्रकार जबरन किसी को कुछ ग्रहण नहीं कराया जा सकता, जब तक की उसका मन स्वयं उस को ग्रहण करने के लिए तैयार न हो इस प्रकार से तो एक झूठा व्यक्ति पैदा हो जायेगा जो कि नकली है। महावीर की नग्नता किसी बहुत गहरी इनोसेंस का परिणाम है किसी बहुत गहरे निर्दोष भाव का, वह कुछ ऐसी जगह पहुँच गये हैं जहाँ कि नग्न होना और नही होना बराबर हो गया। लेकिन उसके पीछे जो आदमी नंगा खड़ा होता है उसका नंगा होना बहुत "केलक्युलेटेड" है बड़ा गणित का हिसाब है वह मानता है कि नंगे हुए बिना मोक्ष नहीं मिलता है तो वह नंगे होने का अभ्यास कर रहा है वह धीरे-धीरे छोड़ता है एक-एक कपड़े छोड़ता चला जाता है वह धीरे-धीरे सीढ़ियां बढ़ाता है फिर लंगोटी रह जाती है फिर लंगोटी भी छूट जाती है ऐसा अभ्यास करके अन्तः वह नंगे होने का अभ्यासी हो जाता है।

यह नग्नता बिकुल सर्कस की तरह की है इसका कोई मूल्य नहीं है। महावीर को बिल्कुल भी पता नही चला होगा कि कब नंगे हो गये किसी दिन वस्त्र गिर गया है और फिर उसका ख्याल ही नहीं रहा वह किसी अभ्यास का परिणाम नहीं था, तो कोई महावीर जैसा हो नही सकता। होने की कोशिश करेगा और नकली हो जायेगा उसे तो प्रत्येक को

वही होना है जो वह हो सकता है। सबकी अपनी पोटेंशियलटी है अपना बीज है वही होना है और कोई फायदा भी नही है अगर पिकाशो महावीर हो जाये तो दुनिया को नुकसान होगा पिकासो को पिकासो होना चाहिए या महावीर पिकासो हो जाये तो भी भारी नुकसान हो जायेगा। अतः महावीर को महावीर होना चाहिए। आइस्टीन होना चाहिए इन सबके होने से दुनिया बहुत समृद्ध है नकली आदमियों की वजह से दुनिया समृद्ध नहीं है। इस जगत में कोई व्यक्ति न ऊँचा है न नीचा है। यह भाव ही गलत है और यह ध्यान में रहे कि अगर मै किसी व्यक्ति को ऊँचा समझता हूँ तो किन्ही व्यक्तियों को नीचा भी समझता हूँ यह असंभव है।

ओशो कहते हैं मैं एक सन्यासी के पास गया, सन्यासी एक बड़े तख्त पर बैठे हुये थे, उनके नीचे बगल में एक छोटा तख्त लगा हुआ है उस पर भी एक सन्यासी बैठे हुये हैं और फिर दो तीन सन्यासी नीचे बैठे हैं सारी जनता नीचे बैठी हुई है। मैं उनको मिला तो उन्होंने मुझसे कहा कि आपको शायद पता न होगा कि मेरे बगल में तख्त में जो बैठे हैं वह धन्य हैं। मैने कहा मुझे पता नहीं है और जरूरी भी नही है पता करना। तो उन्होंने कहा कि मैं आपको बताना चाहता हूँ, कि वह हाईकोर्ट के जस्टिस हैं, साधारण आदमी नहीं है। जस्टिस हैं और उन्होंने सब छोड़ दिया है और इतने विनम्र आदमी हैं कि कभी मेरे साथ तख्त पर नही बैठे हैं बो मुझसे छोटे तख्त पर बैठते हैं।

मैने कहा मैं बिल्कुल समझ रहा हूँ कि छोटे से तख्त पर बैठे हुये हैं। लेकिन तख्त पर ही हैं और उनसे नीचे भी कुछ लोग बैठे हुए हैं। उनके साथ भी वे नहीं बैठे हुये हैं। मैने कहा यह तो समझ गया कि आपके साथ आपके तख्त पर नही बैठते। लेकिन उस तख्त के नीचे भी दो तीन सन्यासी बैठें हुये हैं। उनके साथ भी बैठते है कि नहीं तो वे जरा मुश्किल में पड़े, मैने कहा कि उनके साथ भी वे नही बैठे और आपके मरने की प्रतीक्षा देख रहे हैं कि कब इस तख्त पर बैठै और तब वे इस पर बैठेगें तो नीचे वाले उस तख्त पर आयेगे। वे उस पर आयेगें। और वे उनकी तारीफ करेगे कि यह आदमी बड़ा विनम्र है। कभी मेरे साथ नहीं बैठा।

मैनें कहा यह भी मै समझ गया। वह आदमी विनम्र हैं आपके साथ नहीं बैठता। लेकिन आप विनम्र है कि नही ? क्योंकि आपको यह ख्याल क्यों आता है, कि मेरे साथ बैठे जायें तो विनम्र नहीं होगा। आप अहंकारी आदमी हैं। आपको यह मजा क्यों आ रहा है, कि यह आदमी विनम्र है और इसको भी मजा आ रहा होगा कि नीचे के लोग विनम्र है मेरे साथ तख्त पर नही बैठते। यह बड़ा लम्बा जाल है और बड़ी श्रखंला है।

एक फकीर था जापान में उसके पास किसी ने जाकर पूँछा कि कुछ लोग महान क्यों हो जाते हैं और कुछ लोग छोटे क्यों हो जाते हैं। उस फकीर ने कहा कि तुम बिल्कुल पागल हो हमने आज तक कोई महान नही देखा न कोई छोटा देखा। जो जैसा है वैसा देखा है तो उसने कहा भाई ये समझ में नही आता। फकीर उसको बाहर ले गया बाहर ले जाकर उसने दिखाया कि देख वे पेड़ दिखायी पड़ते हैं, फिर उसने कहा छोटे पौधे दिखाई पड़ते हैं, उसने कहा हाँ दिखाई पड़ते हैं। जो आकाश को घेरे खड़े हैं। उसने कहा हाँ दिखायी पड़ते हैं बड़े पौधे बड़े पौधे है और अगर हम आदमी को हटा दें तो कौन ऊँचा होगा कौन वृक्ष नीचा होगा अगर आदमी न हो पृथ्वी पर तो घास का तिनका भी उसी मौज में है जितना आकाश को छूने वाले वृक्ष।

तो मै मानता हूँ कि इस तरह की तुलना ही घातक है। तुलना कराने की कोई जरूरत नहीं है। ''हीरोवर्सिप'' पैदा करने की कोई जरूरत नहीं है समझ पैदा करने की जरूरत है।

आज की शिक्षा हमें सिखाती है सारी बातों को, वह जला देने योग्य है सारी शिक्षा का सर अंजाम गलत है। तो फिर से पूरे के पूरे नये आधार देखेने की आवश्यकता है और वे आधार होंगे कि हमे प्रेम सिखाया जाय। प्रतियोगिता नहीं, मनुष्य के प्रति सम्मान सिखाया जाये प्रतियोगिता नहीं, पदों और ओहदों के प्रति आदर नहीं। जरूरी है कि कार्यो के साथ प्रतिष्ठा न जोड़ी जाये, समग्र जीवन सभी लोगों का सामूहिक योगदान है यह भाव पैदा किया जाये।

और तब इस सारी भाव भूमि के साथ हमारे व्यक्तित्व में क्या सम्भावनायें हैं। बिना किसी कम्परीजन के बिना, किसी दूसरे की तुलना करने की जरूरत नहीं है क्योंकि प्रत्येक

शिक्षा और जागरण सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व **पृष्ठ 97–98**

व्यक्ति अपने आप में अनूठा है। कोई कहने की जरूरत नही है कि तुम फला व्यक्ति से कमजोर हो या फला आदमी से अधिक बुद्धिमान हो ये सब तुलनायें खतरनाक हैं इनकी वजह से गड़बड़ पैदा होती है। प्रत्येक व्यक्ति जैसा वह है हमें स्वीकृत है उसमें जो सम्भावनाये हैं वह विकसित हों।

एक पौधा गुलाब का है एक घास का पौधा है जिसमें घास का छोटा सा फूल खिलता है लेकिन उसकी भी अपनी गरिमा है उसका अपना आनन्द है रहस्य पूर्ण और महत्वपूर्ण यह है कि गुलाब के फूल का अपना आनन्द है खिलने में तथा घास के फूल का अपना आनन्द है खिलने में प्रत्येक व्यक्ति अनूठी कृति है परमात्मा की और उसकी हमे स्वीकृति होनी चाहिए और यह ध्यान होना चाहिए कि हमारी पूरी शिक्षा हमारी पूरी संस्कृति और सभ्यता उसके भीतर जो भी छिपी है उसे निकाल कर बाहर ले आये उसके भीतर कुछ छिपा न रह जाये और यह प्रतिस्पर्धा के द्वारा नही बल्कि सहज प्रेम और आनन्द के द्वारा ही सम्भव है।

शिक्षा का अन्तिम आधार तो यही होना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा की पूर्णता तक अपनी आत्मा की अनुभूति तक पहुंच जाये लेकिन अभी तो हालात यह है कि वह अभी संसार में सुख और शान्ति अनुभव ही नहीं कर पाता परमात्मा तो दूर की मंजिल और यात्रा हो जाती है। फिर अशान्ति के कारण वह मंदिरों की ओर जाता है भगवान को पैसे चढाता है पुजारियों के पैर पकड़ता है यह सब व्यर्थ है इस का कोई मतलब नही है अशान्ति से वचने के लिए भगवान का सहारा लेता है इलैक्सन में जीतने के लिए भगवान का सहारा लेता है सफलता नही मिलती तो फिर ताबीज बनवाता है।

अशान्त दुखी प्रतिस्पर्धा में हारे भयग्रस्त लोग ये सारे के सारे लोग फिर धर्म की शरण में जाते है। वह धर्मझूठा हो जाता है इन सबके वहाँ पहुंचने का कारण ही अधार्मिक है। धर्म के निकट वही पहुंच सकता है जिसने मनको सब भाँति शांत किया हुआ है जिसका मन सब भाँति द्वन्द शून्य हो जिसके मन में कोई संघर्ष न हो जिसके मन में सबके प्रति समादर हो करूणा हो ईर्ष्या न हो। ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे ही अपने धर्म के करीब पहुंचने

लगता है। उसे किसी मंदिर में जाने की जरूरत नहीं होती। वास्तविक शिक्षा धार्मिक शिक्षा है लेकिन धार्मिक शिक्षा का यह मतलब नहीं कि आपको गीता रटवाई जाये और कुरान की आयतें याद करवाई जायें। इन सबसे तो दुनिया में खूब अर्धम फैलेगा अब इन सबको रटवाने से कुछ भी नहीं होने वाला है।

अब धार्मिक शिक्षा का मतलब है ऐसा मन, ऐसा मांइंड पैदा करना जो नान कांपटिटिव हो, नान जेलस हो, नान वायलेंट हो, हिंसक न हो, ईर्ष्यालु न हो, प्रतियोगी न हो, प्रेम पूर्ण हो करूणा से भरा हो, ऐसे मन की व्यवस्था देना धार्मिक शिक्षा का अर्थ है। ऐसी धार्मिक शिक्षा फिर आपको हिन्दू नहीं बनायेगी। कोई स्वस्थ व्यक्ति न तो हिन्दू होता है, न जैन होता है, न मुसलमान होता है, धार्मिक होता है। अगर हम सच में युवा होना चाहते हैं जिस भाँति आपका मन शांत होगा ज्ञान को उपलब्ध करना चाहते हैं इस भाँति हमारे जीवन में शाँति आयेगी ज्ञान आयेगा।

ये थोड़ी बातों पर अगर हम विचार करें और खुद ही अपने व्यक्तित्व को समझें कि क्या सच में मैं कम्पटीशन में पड़ूं इर्ष्या में जियूं या कि शाँति के आनंद के किसी मार्ग को खोजूं अपने भीतर कोई सम्भावनायें जगाऊं जहां से आनंद की सुगन्ध फैले तो आप ठीक ठीक अर्थों में विद्यार्थी हो सकेंगे।

अध्यात्मवादी दर्शन :-

दुनिया में जब कोई धार्मिक आदमी पैदा होता है तो पुरोहित और ब्राहम्ण और पंडित हमेशा उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। क्राइस्ट को जिन्होंने सूली दी वे पुरोहित पंडित और धार्मिक लोग थे। सुकरात को जिन्होंने जहर दिया वे धार्मिक विचारशील लोग पंडित थे।

दुनिया में हमेशा पंडित धार्मिक आदमी के विरोध में रहा है क्यों ? क्योंकि धार्मिक आदमी सदैव इस बात पर चोंट करेगा कि धर्म के नाम पर बना हुआ जो भी प्रचारित संगठन है, धर्म के नाम पर जो भी संप्रदाय हैं धर्म के नाम पर जो भी अन्ध-श्रद्धायें फैलाई गयी हैं वे नष्ट कर दी जायें। अगर क्राइस्ट फिर से जी जायें तो सबसे पहले जो इनके विरोध में खड़े होंगे वे ही लोग होंगें जो पादरी और पुरोहित होंगे जो गीता का प्रचार करते हैं। यह बिलकुल स्वाभाविक है क्योंकि धर्म एक तरह का विद्रोह है।

धर्म सबसे बड़ा विद्रोह है, सबसे बड़ी क्रांति है और वह क्रांति इस बात से शुरू होती है कि श्रद्धा नही हम जिज्ञासा पैदा करें, अभी तो जो दूसरे आपसे कहते हैं उसी पर ही आप विश्वास कर लेंगे। उसके सत्य और असत्य होने का आपको कुछ भी पता नहीं है ऐसा विश्वास अन्धा होगा। सब विश्वास अन्धे होते हैं। क्योंकि वे दूसरे आपको देते हैं जो भी अभी आपने माँगे है वे किसी दूसरे ने आपको दियें हैं आपकों कुछ भी पता नही है कि वह ठीक है या गलत है सिवाय इसके कोई प्रमाण नहीं है कि हमारे माँ बाप ने हमें दिया है जो परम्परा से उपलब्ध होता है। वह कभी सत्य होने की सम्भावना नहीं है।

जो स्वयं की, निज की खोज से उपलब्ध होता है वही सत्य होता है। इसलिए सत्य प्रत्येक को स्वंय पाना होगा दूसरे से उधार पाने का कोई उपाय नही है। फिर जितनी गहरी श्रद्धा होगी उतना ही विवेक आपके भीतर क्षींण हो जायेगा क्योंकि विश्वास विवेक विरोधी है। वह हमेशा यह कहता है मन में बांध लो इससे भिन्न न सोचना, इससे अन्य मत सोचना, इसके विपरीत मत सोचना, जितनी श्रद्धा गहरी होगी उड़ना उतना मुश्किल हो जायेगा।

एक गांव में एक आदमी रहता था वह जंगल से तोतों को पकड़ कर लाता और पिंजरो

में बन्द कर देता कुछ दिन वे फड़फड़ाते उड़ने की कोशिश करते, फिर वे पिंजरे में रहने के आदी हो जाते। यहाँ तक कि अगर उनके पिंजरे खोल दिये जाय तो वे थोड़ी देर बाहर जाकर फिर पिंजरे में आकर बैठ जाते बाहर असुरक्षा लगती और भीतर सुरक्षा, करीब-करीब ऐसी ही हमारे मन की हालत हो गयी है। हमारा चित हमारी परम्परा संस्कार दूसरों के दिये गये विचार और शब्दों में इस भाँति बंध गये हैं कि उसके बाहर हमें डर लगता है घबराहट होती है। डर लगता है कि कहीं सुरक्षा न खो जाय। जिस भूमि को हम अपने पैरों के नीचे समझ रहे हैं वह हिल न जाय इसलिए हम डरते हैं और जो अपने घर के बाहर न निकल सकेगा वह परमात्मा को कभी न पा सकेगा। उससे मिलना हो तो सभी घेरे तोड़ने ही पड़ेगे।

कौन यह कहता है जो क्राइस्ट को अनुभव हुआ वह आपको अनुभव न होगा। जो यह कहता है वह दुश्मन है, कौन कहता है जो बुद्ध को अनुभव हुआ है वह सड़क पर झाड़ू लगाने वाले को अनुभव नही होगा। जो यह कहता है वह मनुष्यता का दुश्मन है। हर मनुष्य के भीतर वही परम परमात्मा बैठा हुआ है।

असलियत यह है इस जमीन पर प्रकृति में इस पर परमात्मा के राज्य में दो कंकड़ भी एक जैसे नही होते हैं। सारे जीवन खोज आयें दो कंकड़ दो पत्ते एक जैसे नही होते तब दो मनुष्य एक जैसे कैसे हो सकते हैं प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है और इसलिए जब कोई व्यक्ति राम का अनुसरण करता है, राम बनने की कोशिश करता है तभी भूल हो जाती है। इस जगत में परमात्मा ने सबको अद्वितीय बनाया है कोई किसी का अनुकरण करके कुछ भी न बन सकेगा एक थोथा पाखण्ड और एक अभिनय भर होकर रह जायेगा क्या इस बात के सम्बन्ध में इतिहास प्रमाण नही है।

बुद्ध को मरे 2500 वर्ष हो गये क्राइस्ट को मरे दो हजार वर्ष हुए इन दो हजार वर्षो मे कितने लोगों में बुद्ध या क्राइस्ट पैदा हो सका क्या यह दो हजार वर्ष का असफल प्रयास इस बात की सूचना नही है कि यह कोशिश ही गलत है असल में कोई मनुष्य एक दूसरे जैसा नही हो सकता जब भी मनुष्य एक दूसरा जैसा होने की कोशिश पैदा कर लेता है इस प्रकार उसके भीतर एक बेचैनी एक अशान्ति एक संर्घष पैदा हो जाता है।

परमात्मा को तो केवल वह ही पा सकते हैं जो शान्त हों जो अशान्त हैं वे कैसे पा सकते हैं जो व्यक्ति किसी दूसरे की नकल में कुछ बनना चाह रहा है वह अनिवार्यतः अशान्त हो जायेगा उसकी अशान्ति उसे परमात्मा के पास नही पहुंचा सकेगी। अगर जूही के फूल गुलाब होना चाहें तथा गुलाब के फूल कमल होना चाहें तो वे ऐसी बेचैनी और पेरशानी में पड़ जायेगे जैसी बैचेनी और परेशानी में हम पड़ गये हैं।

इसलिए अनुकरण नहीं आत्म खोज पहली बात, श्रद्धा नही जिज्ञासा दूसरी बात किसी का अनुकरण नही करना है, कोई किसी के लिए आदर्श नही है, प्रत्येक व्यक्ति का आदर्श उसके अपने भीतर दिया है।

एक अन्धा आदमी अगर आकर मुझसे कहें कि मुझे प्रकाश जानना है तो क्या मै उसे सलाह दूंगा कि जाओ प्रकाश के बारे में लोगो से समझें वह जो तुम्हें बतायें उसे याद कर लो तो प्रकाश का पता चल जायेगा मै उससे कहूंगा प्रकाश के सम्बन्ध में जानने की फ्रिक न करो आंख ठीक हो जाये, प्रकाश का उपचार ठीक हो जाय इसकी चिन्ता करो। अगर आँख ठीक जाये तो प्रकाश सम्बन्ध में जानने की कोई आवश्यकता नहीं है आँख संवेदनशील है प्रकाश सत्य है, सत्य के खोजी को भी ओशो कहते हैं, कि ईश्वर की फिक्र छोड़ दो संवेदना की फिक्र करो। हमारी जितनी गहरी संवेदना होगी उतनी ही दूर तक हमें सत्य के दर्शन होते हैं।

हमें सिखाया जाता है ईश्वर की खोज करो तब कुछ पागल हिमालय पर ईश्वर को खोजने जाते हैं जैसे भीड़ में ईश्वर नहीं है तब कोई भटकता है दूर-दूर तीर्थो की यात्रा करता है कि वहाँ ईश्वर मिलेगा ! संवेदना गहरी हो तो ईश्वर यहीं है इसी क्षण उपलब्ध है। जिसे देखने की शक्ति हो उसके लिए ईश्वर यहीं है, जिसकी आँख ठीक न हो उसके लिए यहाँ प्रकाश नही है।"1

1 ओशो टाइम्स सम्पादक :- ध्यान सम्बोधि मार्च 2000 पृष्ठ -26

ओशो के दार्शनिक विचारों की समीक्षा :

मनुष्य की कमजोरियों का शोषण राजनीतिज्ञ कर रहे हैं, धर्म गुरू कर रहें हैं ओर न मालूम किस किस तरह के लोग कर रहे हैं। लेकिन सबसे गहरा शोषण धर्म गुरूओं ने किया है। राजनीतिज्ञ तो बहुत पीछे से आये हैं उस दौड़ में। यह बात उनके समझ में आई कि धर्मगुरू क्या कर रहा है। राजनीतिज्ञ अभी पीछे आया है और इसलिए पीछे जनों की जो राजनीति है वह धर्म गुरूओं के विरोध मे खड़ी है उसका कोई और कारण नहीं है। दो चोर एक ही की सम्पत्ति पर आँख लगाये हैं।

इसलिए पिछला जो राजनीतिज्ञ है अभी-अभी, नया-नया जो सारी दुनिया में राजनीति है चाहे वह कम्युनिज्म हो चाहे वह फासिज्म हो चाहे वह कुछ और हो उन सबकी टक्कर धर्म गुरूओं से है क्यों? एक ही आदमी पर दोनों का हमला है दोनो का ही शिकार एक आदमी को बनना है वही कमजोर आदमी है। इन दोनों के बीच टक्कर पुरानी है लेकिन अभी प्रगाढ़ हो गयी है और राजनीतिज्ञ ने धर्म को हटा दिया हैं मन्दिर से ईश्वर को विदा कर दिया गया है स्थापित हो गये नये प्रतिमान वहाँ बन गये हैं। लेकिन आदमी का शोषण वहाँ जारी रहेगा क्योंकि आदमी की कमजोरी बरकरार है। एक ने शोषण बन्द किया तो दूसरा शुरू कर देगा।

यह जो हम विश्वास करते हैं कि आत्मा अमर है तो आप यह मत समझ लेना कि आप जानते हैं कि आत्मा अमर है, नहीं आप मृत्यु से भयभीत हैं इसलिए जल्दी में विश्वास कर लिया है कि आत्मा अमर है सबको पता है कि कोई नहीं मरना चाहता। यह दुनिया भर के पुरोहित यह समझाने की कोशिश करते हैं कि घबराते क्यों हो कोई मरता ही नहीं आत्मा बिल्कुल अमर है। और मृत्यु से भयभीत मनुष्य यह विश्वास कर लेना चाहता है, इसलिए जवान आदमी कम धार्मिक होता है बूढ़ा आदमी अधिक धार्मिक होता है मौत जितनी करीब आती है उतना मृत्यु का भय भी करीब आता है। और आदमी की अमरता को मान लेने से मन तीव्र हो जाता है। जल्दी होती है कि मान लो विश्वास कर लो। कोई भी मरना नही चाहता यही कमजोरी है हमारे भीतर और इसीलिए,"जो कौम

जितनी मौत से भय करने वाली होती है वह कौम उतनी ही आत्मा की विश्वासी होती है। अमरता की विश्वासी होती है।''1

आदमी अकेले में डरा हुआ है, भय मालूम होता है, जिन्दगी बड़ी अकेली है। कोई संगी साथी नहीं मालूम होता। ऐसे क्षण आते हैं जब पत्नी अपनी नहीं मालूम होती लड़का अपना नहीं मालूम होता मित्र अपने नहीं मालूम होते कमजोरियाँ बीमारियां आती हैं मौत करीब आती है। तब लगता है सब छूट जायेगा। कोई सम्पत्ति अपनी नहीं मालूम पड़ती। तब पुरोहित साथ आता है और कहता है- ''घबराओ मत परमात्मा साथी है उसका नाम जपो और तब इस कमजोरी का शोषण किया जाता है और यह जो परमात्मा का जाप आप कर लेते हैं तो यह मत समझ लेना कि परमात्मा से आपका बहुत प्रेम हो गया इसलिए आप जाप कर रहें हैं आप भयभीत है जिन्दगी में अकेले हैं। इसलिए परमात्मा का साथ खोज रहे हैं और ऐसा कोई साथ नहीं मिलेगा, क्योकि जो भयभीत है उसका प्रेम से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।''

ब्रह्म को जानने के मार्ग :

आध्यात्मिक शब्दावली के साथ एक बहुत बड़ी दुर्घटना घटी है। आधुनिक मनुष्य के लिए उसका अर्थ खो गया है आज अगर हम ढाई हजार वर्ष पहले के शास्त्र उठाकर पढ़ते हैं तो उनका हमारे वर्तमान जीवन के साथ कोई तालमेल नहीं बैठता है। हम उन्हें पढ़ने की कोशिश भी करें तो फौरन ऊबकर वापस रख देते हैं उनकी भाषा जीर्णशीर्ष हो गयी हैं। लेकिन वह भाषा बुद्धत्व के परम अनुभव का परिणाम है वस्त्र है। बुद्ध पुरूषो को निर्वस्त्र अनुभव के वस्त्र पहनाने पड़ते है। आज ये वस्त्र कितने ही जर्जर क्यों न हो गये हों उन अनुभवों की सार्थकता और बुद्धत्व का साम्य आज भी उतना भी ताजा उतना ही सद्यस्नात है जितना कभी रहा होगा। क्योकि सत्य समायातीत है।

उदाहरण के लिए महावीर द्वारा कथित उणोदी का अर्थ उजागर करते हुए ओशो बायलाजिस्ट अर्थात् जीव वैज्ञानिकों की खोज के आधार देते हैं और यह बेबूझ शब्द समसामयिक बन जाता है।

शरीर के ऊपर तपस्या के होने वाले प्रभाव को समझाने के दौरान ओशो ने फिरलियान फोटोग्राफी का वर्णन किया है कि किस प्रकार अब सूक्ष्म शरीर के परिवर्तन का ऊर्जा के संचरण का भी चित्र लिया जा सकता है। जो काम पहले तपस्वियों की तीसरी आंख करती थी वही काम अब विभिन्न कैमरे कर लेते हैं।

तपस्या के परिणाम वैज्ञानिक उपकाराणों द्वारा अंकित करने की सम्भावना ने ही तपस्या के पूरे विज्ञान को विज्ञान युग में सार्थक बना दिया है अब तो तप के प्रयोग करना अधिक सुगम हो गया है ऊर्जा की गति आप यत्रों पर देख सकते है क्रोध इत्यादि के भाव रंगीन टीवियों पर देखे जा सकते है उनके फोटो लिए जा सकते हैं ओशो का एक इटालियन संन्यासी है नमितो जिसने चेतना की भिन्न-भिन्न आक्रतियों के फोटो लिए हैं।

बृहय को जानने का मार्ग तप से होकर निकलता है। इक्सवीं सदी में तप करना मात्र अधात्मिक ही नही है वह वैज्ञानिक हो गया है इसलिए आधुनिक ऋषि मुनियों को पुराने जमाने की तरह समाज को छोड़कर जंगल में जाने की कोई जरूरत नहीं है उलटे ध्यानियों

को विज्ञान की प्रयोगशालाओं के आसापास होना चाहिए ताकि नियमित रूप से उनका परीक्षण हो सके।

तप का मूल अर्थ है कि उसमें एक जैविक अग्नि पैदा हो। और यह अग्नि जैसे ही जल उठेगी वैसे ही शरीर के साथ हमारा जो जुड़ाव है तादात्म है उसे तोड़ देगी, सभी तरह के तप फिर वह बाहय तप हो या आन्तरिक उसका उद्देश्य एक ही है। मन और शरीर के बीच एक गैप एक अन्तराल पैदा करना शरीर के भीतर इतनी गर्मी पैदा करना शरीर के साथ बंधा हुआ सेतू टूट जाये तो हम जान जायेगें कि हम ऊर्जा हैं माटी से बना हुआ शरीर नहीं एक बार इस अन्तराल का हम अनुभव कर लें तो चेतना के उच्चतर आयामों को जानने का द्वार खुल जाएगा।

एक पहाड़ से एक व्यक्ति गीत गाता हुआ गुजर रहा था उसकी आखों में किसी बात को खोज लेने का प्रकाश उसके ह्रदय में किसी सत्य को जान लेने की खुशी थी उसके कदमों में उस सत्य को दूसरे तक पहुंचा देने की गति थी। वह अधिक उत्साह और आनन्द से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था।

अकेला था वह पहाड़ पर और मैदान की ओर उतर रहा था। बीच में उसे एक बूढ़ा आदमी मिला क्यों, पहाड़ पर क्यों जा रहे हो उस बूढ़े ने उत्तर दिया, परमात्मा की खोज के लिए और वह व्यक्ति जो पहाड़ से उतर रहा था बड़ी जोर से हंसा क्या यह भी हो सकता है, तो उस व्यक्ति ने कहा क्या तुम्हें अभी तक पता नही कि ईश्वर मर गया है। तुम किसे खोजने जा रहे हो क्या जमीन पर और नीचे मैदान में अब तक यह बात नही पहुंची कि ईश्वर मर चुका है, मै पहाड़ से ही आ रहा हूँ मै भी ईश्वर को खोजने गया था लेकिन वहाँ जाकर मैने ईश्वर नहीं ईश्वर की लाश को पाया, और क्या दुनिया तभी विश्वास करेगी जब वह उसे अपने हाथ से दफना देगी, क्या यह खबर अब तक नहीं पहुंची लेकिन उस बूढ़े आदमी ने विश्वास नहीं किया साधारणतया कोई मर जाये तो हम उस बात पर विश्वास नही करते फिर ईश्वर मर जाय तो कौन यकीन करेगा और क्या तुम्हें पता है कि जो ईश्वर मरा है वह ईश्वर था ही नही एक झूठा ईश्वर मर गया है कुछ लोग उस झूठे ईश्वर के जिन्दा होने के

ख्याल में है लेकिन जो सच्चा ईश्वर था वह अब भी है और हमेशा रहेगा उससे मैने कहा तुम एक खबर दुनिया को पहुंचाओ कि जो ईश्वर मरा है वह सच्चा ईश्वर नही था क्योंकि जो मर सकता है वह जीवित ही न रहा होगा। "जीवन का मृत्यु से कोई सम्बन्ध नहीं है" जहाँ जीवन है वहाँ मृत्यु नहीं है और जहाँ मृत्यु हो, जानना कि जीवन भ्रामक था झूठा था कल्पित था मृत्यु ही सत्य थी वह जो मरा हुआ है वही केवल मरता है, जीवित है उसके मरने की कोई सम्भावना नहीं है जीवन के मर जाने से असम्भव बात और कोई नही हो सकती ईश्वर तो समग्र जीवन का नाम है।

"कौन सा ईश्वर झूठा है? जो मन्दिरों में पूजा जाता है वह ईश्वर झूठा है। क्योंकि उसका निर्माण मनुष्य ने किया है, मनुष्य ईश्वर को बनाये इससे झूठी बात कोई नहीं हो सकती। ईश्वर ने मनुष्य को बनाया होगा यह तो हो भी सकता है लेकिन यह कैसे हो सकता है कि आदमी ईश्वर बना ले लेकिन जितने प्रकार के मंदिर भी हैं उतने प्रकार की मस्जिदें है, गिरजाघर हैं, और न मालूम क्या क्या हैं।"1

ये ईश्वर निश्चित ही झूठे हैं, ईश्वर ईजाद नहीं किया जा सकता है, इनवैंट नही किया जा सकता न ही उसे पत्थर से निर्मित कर सकते हैं न ही शब्दों के द्वारा, न रंग के द्वारा, न रेखाओं के द्वारा, क्योकि जो भी हम निर्मित कर सकेंगे वह हमसे भी ज्यादा कच्चा हमसे भी ज्यादा झूठा और हमसे भी ज्यादा क्षण भंगुर होगा।

मनुष्य ईश्वर को निर्मित नहीं कर सकता पर ईश्वर को उपलब्ध कर सकता है मनुष्य ने जितने भी ईश्वर ईजाद किये है सब झूठे हैं इन्ही धर्मो और रिलीजन्स के कारण धर्म का पता दुनिया में कहीं नहीं चलता। जहाँ भी जाइये कोई न कोई ईश्वर बीच में खड़ा हो जाता है और कोई न कोई धर्म। और धर्म से आपका कोई भी सम्बन्ध न हो सकेगा हिन्दू बीच में आ जायेगा ईसाई, मुसलमान, बौद्ध बीच में आ जायेगा कोई न कोई दीवार खड़ी हो जायेगी ये द्वार परमात्मा से मनुष्य को तो तोड़ते ही हैं मनुष्य से भी मनुष्य को तोड़ देते हैं। आदमी से आदमी को अलग करने वालें हैं जो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से अलग किये हुए हैं और स्मरण रहे जो दीवालें मनुष्य को मनुष्य से दूर कर दें वे दीवालें मनुष्य को परमात्मा से कैसे मिलने देगी।

लेकिन इस तरह का ईश्वर इस तरह का धर्म हजारों वर्षों से मनुष्य के मन पर छाया हुआ है और यही कारण है कि पांच छः हजार वर्षों से निरन्तर चिन्तन ध्यान और मनन के बाद भी जीवन में धर्म का कोई अवतरण नही हुआ है। नास्तिक नहीं रोक रहे हैं धर्म को और न वैज्ञानिक रोक रहे हैं और न भौतिकवादी रोक रहे हैं। रोक रहे हैं वे लोग जिन्होंने धर्मों को ईजाद कर लिया है और तब हम किसी ईजाद की हुई धर्म की दीवार में आवद्ध हो जाते हैं। कारागार में बन्द हो जाते हैं और हमारे चित्त परतन्त्र हो जाते हैं और हम उस स्वतन्त्रता को खो दते हैं जोकि सत्य की खोज की पहली शर्त है। ऐसा ईश्वर मर गया है, और मर ही जाना चाहिए यदि न मरा हो तो जिन लोगों को भी ईश्वर से प्रेम हैं उन्हें सहायता करनी चाहिए कि वह मर जाये उसे दफना दिया जाना चाहिए। अगर समय रहते यह न हो सका तो सच्चे धर्म के आभाव में मनुष्य जाति का क्या होगा यह कहना बहुत कठिन है और बहुत दुर्भाग्यपूर्ण भी है, यह घोषणा करनी ही है वरना उस दिन की कल्पना भी मन को क्या देने वाली है।

आज मनुष्य को क्या हो गया है? आज मनुष्य क्या है? अगर पशुपक्षियों में होश होगा तो वे आदमी को देखकर अवश्य हंसते होंगे डार्विन ने कुछ वर्ष पहले आदमी को समझाया कि मनुष्य जो है वह बन्दर का विकास है लेकिन एक बन्दर ने मुझे बताया कि मनुष्य जो है वह बन्दर का पतन है। डार्विन समझा नही पाया बन्दर हंसते है आदमी पर, और सोचते हैं कि यह उनका पतन है यह कुछ बन्दर भटक गये हैं और आदमी हो गये है। यह केवल आदमी की भूल है। याद रखिये बीमारियों से अधिक घातक वे दवाइंयाँ हैं, जो झूठी हैं स्मरण रखिये समस्याओं से ज्यादा खतरनाक वे समाधान हैं, जो सच्चे न हों। क्योंकि समस्यायें तो एक तरफ रखी रहती हैं और समाधान दूसरी समस्या खड़ी कर देता हैं। इधर पांच हजार साल से धर्म के नाम पर जो कुछ हुआ है उससे जीवन की कोई समस्या हल नहीं हुई बल्कि और नई समस्यायें खड़ी हो गयी। और अब हर समाधान से विदा लेने का समय आ गया है उन्हें विदा दे देना आवश्यक है। क्योंकि जो व्यर्थ की समस्यायें खड़ी कर देता हो तो ऐसा समाधान नहीं चाहिए। क्योंकि व्यर्थ की समस्यायें उनके कारण हुई हैं और समाधान कोई

नहीं हुआ है। क्या मनुष्य ईश्वर के निकट पहुंचा है? मन्दिर तो बढ़ते जाते हैं, मस्जिदें बढ़ती जाती हैं और अगर यह विकास इसी तरह चला तो आदमी के रहने लायक मकान न बचेंगे। ईश्वर सब मकान घेर लेगा। क्या मनुष्य के जीवन से ईश्वर का सम्बन्ध वहाँ होता है? क्या मनुष्य के जीवन की घृणा वहाँ खत्म होती है? क्रोध और हिंसा पैदा होती है "आज तक जितना रक्तपात मन्दिरों और मूर्तियों के नाम पर हुआ है और किसी चीज के नाम पर नहीं हुआ है। मनुष्यों की जितनी हत्या मनुष्यों के द्वारा निर्मित धर्म के नाम पर हुई है क्या और किसी नाम से हुई है अगर हम इसी मार्ग पर चलते चले गये तो निश्चित मानिये कि धर्म के आवतरण की कोई सम्भावना नही है।"1

जो भीड़ से डरता है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता, अगर भीड़ ही धार्मिक होती तो दुनिया मे अधर्म कैसे होते। भीड़ तो अधार्मिक है इसलिए जो भीड़ से भयभीत है वह भीड़ का अंग बना रहता है वह कभी भी धाार्मिक नही हो पायेगा मन को भीड़ से मुक्त होना चाहिए इसका मतलब यह नहीं कि मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि भीड़ को छोड़ दें और जंगल में चले जायें जमीन बहुत छोटी है अगर सारे लोग जंगल में चले गये तो वहाँ बस्तियां बस जायेंगी उससे कोई फर्क नही पड़ेगा यह मै नही कहता हूँ कि आप गांव छोड़ कर चले जाये कुछ लोगों ने यह गलती भी की है जब उनसे यह कहा जाता कि तुम भीड़ को छोड़ दो तो वे भीड़ को छोड़कर भागने लगते हैं।

भागने वाला कभी मुक्त नही होता भागने वाला भी भयभीत है अगर मुक्त होना है तो बीच में रहो और मुक्त हो जाओ वह जो अभय का, फियर-लेसनेस का सबूत होगा। दो तरह के लोग हैं भीड़ में रहते हैं तो भीड़ से दबकर रहते हैं। इन्ही डरे हुए लोगों को जब कभी यह ख्याल पैदा पैदा होता है कि मुक्त हो जायें तो जगंल की तरफ भाग जाते हैं। क्योंकि वहाँ भीड़ ही नही रहेगी तो डरायेगा कौन। सवाल यह नही है कि डरायेगा कौन सवाल यह है कि आप डरने वाले न हों।

जिन्दगी से भागने वाला धर्म सच्चा धर्म नहीं हो सकता अगर आप तिब्बतियों से पूंछे कि नरक मे क्या है? तो वे कहेंगे नरक बहुत ठण्डा है बहुत शीत है वहाँ क्योकि तिब्बत

1 क्या ईश्वर मर गया है – सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ 37

ठण्ड से परेशान है शीत से परेशान है, जो जो तिब्बत मे पाप करते हैं उनको और भी ठण्डी जगह में भेजना स्वाभाविक है यह बिल्कुल अनुभव की बात है कि उनकों और भी ठण्डी जगह भेज दो जो पाप करते हैं।

लेकिन भारतीयों से पूछों कि तुम्हारा नर्क कैसा है तो वहाँ पर आग की लपटें जल रही हैं कड़ाहे जल रहे हैं और उन जलते कड़ाहों पर लोगों को डाला जा रहा है क्योंकि हम गर्मी से परेशान हैं। सूरज तप रहा है तो हमारा नर्क भी गरम होगा यह बिल्कुल स्वाभाविक है हम अपने पापी को ठण्डी जगह नहीं भेज सकते हैं। ठण्डी जगह तो हम अपने मिनिस्टरों को भेजते हैं। पापियों को ठण्डी जगह भेजेंगे तो परेशानी खड़ी हो जायेगी पापियों को हम गर्म जगह भेजेंगे। यह हमारी कल्पना गर्म जगह भेजने की है। उनको सताने की, हमारे नर्क का निर्माण बन जाती है। हमारा नर्क गर्म है यह हमारा अनुमान है। इन अनुमानों और इन शास्त्रों पर सारी दुनिया विभाजित होकर खड़ी है और इन हवाई बातों पर हम एक दूसरे की हत्या करने पर तुले हैं।

''यह सारा हमारा इतिहास ऐसे झूठे ईश्वरों के पास उन्ही के इर्द-गिर्द निर्मित हुआ है सत्य के निकट नही है। इसलिए जिन्दगी के बीच जहाँ जीवन चारो तरफ है वहीं मुक्त हुआ जा सकता है।''1

1 क्या ईश्वर मर गया है - सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ 38

ध्यान और योग :

ध्यान के सम्बन्ध में थोड़ी सी बाते समझ लेना जरूरी है। क्योंकि बहुत गहरे मे समझ का ही नाम ध्यान है।

ध्यान का अर्थ है समर्पण, ध्यान का अर्थ है अपने को पूरी तरह छोड़ देना, परमात्मा के हाथों में। ध्यान कोई क्रिया नहीं है जो आपको करनी है। ध्यान का अर्थ है कुछ भी नही करना है और छोड़ देना है उसके हाथों में जो कि सचमुच में ही हमें संभाले हुए है।

परमात्मा का अर्थ है मूल स्रोत जिससे हम आते हैं। और जिसमें हम लौट जाते हैं। लेकिन न तो आना हमारे हाँथ में है और न लौटना हमारे हाँथ में है। हमें पता नही चलता कब हम आते हैं और कब लौट जाते हैं। ध्यान जानते हुए लौटने का नाम है।

जब आदमी मरता है तब बिना चाहे और बिना जाने लौट जाता है ध्यान जानते हुए अपने को उस मूल में खो देना है ताकि हम जान सकें कि वह क्या है और यह भी जान सकें कि हम क्या हैं? ओशो ने इन बातों पर विशेष ध्यान दिया है। समर्पण करें सच तो यह है अधूरा समपर्ण हो ही नहीं सकता। ऐसा तो हो नहीं सकता कि आधा तो हम परमात्मा के हांथो छोड़ दें और आधा अपने पास रखें छोड़ेंगे तो पूरा छोड़ेंगे नही छोड़ेंगें तो बिल्कुल नही छोड़ पायेंगे। अंग्रेजी में एक शब्द है *लेट गो* सब कुछ छोड़ देना अगर एक क्षण को भी हम सब छोड़ पाये तो सब हमें मिल जाये।

राम राम सब कोई कहे, दशरथ कहे न कोय।

एक बार दशरथ कहे, कोटि यज्ञ फल होये।।

"पूरी तरह अपने को छोड़ देना ध्यान है" जिसने अपने को थोड़ा भी पकड़ा समझ लें ध्यान में नहीं उतर सकता क्योंकि अपने को पकड़ना मतलब रूकना अपने को छोड़ देना यानी पहुंच जाना।

इस समर्पण की बात करने के लिए हम तीन छोटे प्रयोग करेंगे ताकि यह समर्पण की बात पूरी समझ में आ जाये इसलिए सिर्फ समझ लें यह जरूरी नहीं है, करना जरूरी है ताकि हमे ख्याल में आ सके कि क्या अर्थ हुआ समर्पण का।

"ध्यान विलीन होने की क्रिया है अपने को खोने की उसमें जो हमारा मूल श्रोत है जैसे कोई बीज टूट जाता है, और वृक्ष हो जाता है। ऐसे ही जब कोई मनुष्य टूटने की हिम्मत जुटा लेता है तो परमात्मा हो जाता है। मनुष्य बीज है परमात्मा वृक्ष है हम टूटें तो ही वह हो सकता है जैसे कोई नदी सागर में खो जाती है लेकिन नदी सागर में खोने से इन्कार कर दे तो फिर नदी नहीं रह जाती है तालाब हो जाती है डबरा हो जाती है बंधा हुआ डबरा हो जाती है क्योंकि जो सागर मे खोने से इनकार करेगा उसे बहने से भी इनकार करना होगा। क्योंकि सब बहा हुआ अन्त में सागर में पहुंच जाता है सिर्फ रूका हुआ नही पहुंचता है डबरे सिर्फ सूखते हैं और सड़ते हैं। सागर का महाजीवन उसे नही मिला पाता।"

हम सब भी डबरों की तरह हैं क्योंकि हम सब की वे जीवन सरितायें परमात्मा के सागर की तरफ नही बहती और बह केवल वही सकता है जो अपने से विराट में लीन होने को तैयार हो जो डरेगा लीन होने मे वह रूक जायेगा, ठहर जायेगा, जम जायेगा, बहना बन्द हो जायेगा।

जिन्दगी बहाव है, और महान से महान की तरफ जिन्दगी यात्रा है विराट की मंजिल की तरफ।

लेकिन हम रास्तों पर रूक गयें है मील के पत्थर की तरह, ध्यान इन बहावों को वापिस पैदा कर लेने की आकांक्षा है यह बड़ा उल्टा है वर्षा होती है पहाड़ों पर तो बड़े-बड़े शिखर खाली रह जाते हैं क्योंकि वह पहले से ही भरे हुए हैं खड्ड और खाइयां भर जाती है झीलें भर जाती हैं क्योंकि वह सब खाली हैं जो भरा है वह खाली रह जायेगा, जो खाली है वह भर जायेगा। परमात्मा की वर्षा तो प्रति पल हो रही है लेकिन हम अपने भीतर भरे हुए हैं तो खाली रह जाते हैं काश हम भीतर गड्ढों की तरह खाली हो जायें तो परमात्मा हममें भर सकता है हम तब उसके भराव को उपलब्ध हो सकते हैं यह बहुत उल्टा है लेकिन यही सही है। जो भरे हैं वह खाली रह जायेंगे और जो खाली हैं वह भर जायेगें।

इसलिए ध्यान का दूसरा अर्थ है खाली हो जाना मिटने के समर्पण का खाली होने का सबका एक ही अर्थ है। ध्यान की आधार शिला एक क्रिया है, क्रिया नही है, लेकिन शब्द

ध्यान से लगता है कि कोई क्रिया करनी होगी जबकि जब तक हम कुछ करते हैं तब तक ध्यान में ही कर सकेंगे जब हम कुछ भी नही कर रहे हैं तब जो होता है वही ध्यान है।

ध्यान और योग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बीज को कुछ नहीं करना पड़ता अंकुर बनने के लिए और बीज को कुछ नही करना पड़ता फूल बन जाने के लिए होता है। हम भी बच्चे से जवान हो जाते हैं कुछ करना नही पड़ता जन्म होता है जीवन होता है मृत्यु होती हैं, हमारे करने से नही होता। जीवन में बहुत कुछ है जो हो रहा है अपने से और अगर हम कुछ करेंगे तो बाधा पड़ेगी होने में गति नहीं आयेगी। खाना आपने खा लिया है फिर वह पचता है, पचाना नही पड़ता और अगर आपको ख्याल भी आ जाये कि मुझे पचाना है तो आप बड़ी कठिनाई में पड़ जायेंगे और पाचन में बाधा पड़ जायेगी।

कभी प्रयोग करके देखें खाना खाकर ख्याल मे रखें कि भोजन पेट में पच रहा है आप पायेंगे कि 24 घण्टे बाद भी भोजन पच नहीं पाया है जो रोज पचता था उसमें बाधा पड़ गयी है कभी कोशिश करके सोकर देखें प्रयास करें सोने का तो फिर पायेंगे कि नींद आनी मुश्किल हो गयी नींद आती है लानी नहीं पड़ती।

समन्वित सुख के पक्षधर

मनुष्य जाति के अत्यन्त प्राथमिक क्षणों की बात है। आदम और ईव को स्वर्ग के बगीचे से बाहर निकाल जा रहा था। दरवाजे से अपमानित होकर निकलते हुए आदम ने ईव से कहा हम बड़े संकट से गुजर रहे हैं। यह वचन सदा के लिए सत्य हो गया। ऐसा कोई क्षण है जब हम संकट में न रहे हों। और संकट सदैव बढ़ते चले गये हैं। एक दिन आदम को स्वर्ग से निकाला गया था धीरे–धीरे हम कब नर्क के राज्य में प्रविष्ट हो गये इसका पता भी लगाना कठिन है। आज तो यह कहा जा सकता है इधर तीन हजार वर्षों में मनुष्य ने साढ़े चार हजार युद्ध लड़े हैं ये आश्चर्य करने वाली बात है। तीन हजार वर्षो में साढ़े चार हजार लड़ाईयाँ लड़ीं हों तो यह जीवन शान्ति का जीवन नहीं कहा जा सकता। अब तक हमने कोई शन्तिकाल नहीं जाना है। दो तरह के हिस्से में हम मनुष्य के जीवन को बांट सकते हैं युद्ध का समय और युद्ध की तैयारी का समय शान्ति का समय शान्ति का कोई काल अभी तक जाना नहीं जा सका है निश्चित ही कोई बहुत गहरी विछिप्तता कोई बहुत गहरा पागलपन मनुष्य को पकड़े होगा कोई रास्ता अब खोज लेना जरूरी है। पुरानी लड़ाईयां बहुत छोटी थीं और उनके बाद भी हम बचते आये हैं लेकिन अब शायद जो युद्ध होगा उसमें मनुष्य को बचने का कोई उपाय नहीं।

अलबर्ट आंइस्टीन के मरने के पहले किसी ने पूछा, तीसरे महायुद्ध में किस प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किया जायेगा। आंइस्टीन ने कहा तीसरे महायुद्ध के प्रति कहना कठिन है। लेकिन चौथे के सम्बन्ध में कहा जा सकता है सुनने वाला पूछने वाला हैरान हुआ उसने पूछा चौथे में किन अस्त्रों का प्रयोग होगा। अगर मनुष्य बचा रहा तो फिर से पत्थर के औजारों से लड़ाई होगी। चूंकि तीसरा महायुद्ध बहुत सम्भावना इस बात की है कि सारी मनुष्य जाति को ही नहीं बल्कि समस्त जीवन मात्र को समाप्त कर दे।

पिछले महायुद्ध में पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई पांच करोड़ लोग कम होते, दोनों पिछले महायुद्धों युद्धों में दस करोड़ लोग मारे गये शायद हमें ख्याल भी नहीं है कि इन दस करोड़ लोगों के मरने में हमारा भी हाथ है हम जो यहां बैठे हैं हम भी जिम्मेवार हैं।

कोई भी मनुष्य इस जिम्मेवारी से बच नही सकता जो भी जमीन पर हो रहा है इस सबमें हम सब का हाथ है। दो महायुद्ध हमारे अन्दर से पैदा हुए और हमने इतनी बड़ी हत्या की। और अब तो हमारी तैयारी बहुत बड़ी है। मैं उस तैयारी के सम्बन्ध में भी दो बातें करना चाहूंगा।

1945 में हिरोशिमा पर जो बम गिराये गये वे बहुत घ्रातक थे एक लाख के करीब लोग उन अणुओं के गिराने से नष्ट हुए। इधर बीस वर्षों में बहुत विकास हुआ है और हिरोशिमा पर जो बम गिराया गया था अब बच्चों के खिलौने से अधिक नहीं है। अब हमारे पास उससे बहुत शक्तिशाली बम हैं। ऐसा उदजन बम कोई 40 हजार की मील के घेरे में समस्त जीवन को नष्ट कर सकता है और ऐसे उदजन बमों की संख्या हमारे पास में 1960 में पचास हजार थी निश्चित ही यह संख्या अब बहुत अधिक हो गयी होगी।

ये जो सारे राजनीति की भाषा बोलने वाले लोग हैं, यदि मनुष्य इस भाषा से इस वृत्ति से सचेत नही होता तो युद्ध से नहीं बचा जा सकता मेरी दृष्टि में कोई राजनीतिक उपाय स्थाई रूप से शांत विश्व को जन्म देने में असमर्थ है जहाँ राजनीति है वहाँ दूसरे से आगे निकलने की होड़ है जहाँ आज नहीं कल युद्ध अवश्यम्भावी है। जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से आगे निकलना चाहे तो अन्त में युद्ध आ जाना स्वाभाविक है।

हम सारे लोग भी एक दूसरे को दुख देना चाह रहे है। फोसडेग एक बहुत विचारशील व्यक्ति है वह एक जियोलाजिकल कालेज मे बच्चों को पढ़ा रहा है वह स्कूल जहाँ कई मिशनरी तैयार की जाती हैं। उपदेश के लिए वहाँ वह उन लड़कों को पढ़ा रहा था उसने पढ़ाते वक्त उन लड़कों का कहा जब तुम स्वर्ग का वर्णन करने लगो, तुम कहीं उपदेश करने जाओ तो तुम प्रसन्नता जाहिर करना चेहरे पर हंसी ले आना ताकि लोग समझ सकें कि स्वर्ग के स्मर्ण से तुम्हारा मन प्रफुल्ल हो गया एक युवक ने खड़े होकर पूँछा और जब नर्क का वर्णन करना पड़े तब, तो फोसडेग ने कहा 'तुम्हारी जो सूरत है उसी से काम चल जायेगा और कोई सूरत बनाने की कोशिश नही करना।'

व्यक्ति को जिस ढंग से अब तक हमने शिक्षित किया है और सुसंस्कृत किया है और सारी सभ्यता दिखाई है वह सारी की सारी सभ्यता सारी शिक्षा उसे सिर्फ चालाक बनाती है। चालाक इस अर्थ में कि वह शिक्षित आदमी दूसरे को कैसे साधन बना सके। और वही आदमी शिक्षित है जो अधिकतम लोगों को साधन बना ले और वह आदमी अशिक्षित है जो गंवार है, बेपढ़ा है, जो बेचारा किसी को साधन न बना पाये। तो इस दुनिया में जो जितना अधिक लोगों को साधन बना ले, उतना बड़ा आदमी हो जाता है। वही सफल राजनैतिक है उतने बड़े पदों पर है, क्योंकि वह अधिक लोगों को अपना साधन बना लेता है और उनके ऊपर उनकी छाती पर उनके सिर पर सवार हो जाता है। अब तक की सारी शिक्षा चालाकी की शिक्षा है और अब तक की सारी शिक्षा महत्वाकांक्षा की शिक्षा है। अब यह ध्यान रहे कि महत्वाकांक्षा से भरा हुआ आदमी कभी भी प्रेमपूर्ण नही हो सकता क्योंकि जो आदमी महत्वाकांक्षी है वह दूसरे को साधन बनाकर अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करना चाहेगा। प्रेम करने वाला महत्वाकांक्षी हो ही नहीं सकता क्योंकि इस जगत में वह किसी को भी साधन नही बना सकता। हमारा तो मजा इतना गहरा है कि हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, आदमियों को तो दूर परमात्मा तक को साधन बनाती है। एक आदमी मंदिर में खड़ा है भगवान से कह रहा है कि मेरे लड़के को नौकरी दिला दो तो मैं एक नारियल चढ़ाऊँगा। वह भगवान को भी अपनी चाकरी में, नौकरी में लगा रहा है और साथ में प्रलोभन शर्त भी बांध रहा है कि तब वह एक नारियल चढ़ायेगा जब उसके लड़के की नौकरी लग जाये।

यह जो हमारी इस भांति से सारा धर्म, सारी शिक्षा हमें अब तक सिखा ही यही रही है कि तुम प्रेम मत करो क्योंकि प्रेम करने से असफल हो सकते हो। सफल होना है तो सावधान रहना है। और सफल होना है, तो उसी सीमा तक प्रेम का व्योहार और अभिनय करना है जिस सीमा तक तुम आदमी का शोषण कर सको।

तो तथाकथित शिक्षा ने आदमी को अब तक प्रेमपूर्ण होने से रोका है। इस बात की बहुत सम्भावना है कि अशिक्षित आदिवासी प्राचीन संस्कृति खो गयी, वह संस्कृति शायद हमसे ज्यादा प्रेमपूर्ण रही है लेकिन जितनी शिक्षा जितनी संस्कृति जितनी सभ्यता बढ़ी है

उतनी मनुष्य की चालाकी महत्वाकांक्षा सफल होने की कामना बढ़ी है। इस सब तीव्रता ने मनुष्य को प्रेमपूर्ण होने से रोका ही है तो निश्चित ही इससे उल्टी तरह की शिक्षा होनी चाहिए उस शिक्षा में हम मनुष्य को महत्वाकांक्षा नही सिखायेंगे क्योंकि महत्वाकांक्षी व्यक्ति प्रेमपूर्ण हो ही नहीं सकता महत्वाकांक्षी घृणा ही कर सकता है और महत्वाकांक्षी अपने को केन्द्र मानता है और प्रत्येक को साधन मानता है और कोई व्यक्ति को वह इतना मूल्य नहीं देता कि उसे साध्य माने। अगर तुम उसके लिए सीढ़ी बना सकते हो तो ठीक है अन्यथा वह लात मार देगा और सीढ़ी पर चढ़ जाने के बाद भी लात मार देगा, कि इस सीढ़ी से कोई और न चढ़ आवे।

तो महत्वाकांक्षा गहरे में हिंसा है असल में एम्बीशन ही वायलेंस है जहाँ मन पूर्ण रूप से अहिंसा है, प्रेम तो टोटल नान वायलेंस है जहाँ मन पूर्ण रूप से अहिंसक हो जाता है, जहाँ महत्वाकांक्षा न सिखाई जाती हो, जहाँ बजाय महत्वाकांक्षा की बजाय व्यक्ति को व्यक्तित्व देना सिखाते हों। उसे उन साधानाओं से गुजारते हों जहाँ उसके भीतर आनन्द के झरने प्रगट होने लगें। ध्यान से योग से हम उसे उन प्रक्रियाओं में ले जाते हैं जहाँ से वह अपने भीतर आनन्द के श्रोत खोज ले और हम धीरे-धीरे उसे इतना गैर महत्वाकांक्षी नान एम्बीसस माइन्ड को उसके भीतर पैदा करते हैं कि वह दूसरे को साधन बनाने का ख्याल ही छोड़ दे। और वह जब अपने भीतर आनन्द की एक सी भी किरण पाले तो फिर उसके जीवन में प्रेम शुरू होता है फिर वह प्रेम देगा और वह प्रेम बेशर्त होगा। और ऐसे व्यक्ति पैदा न हो सके तो दुनिया से युद्ध नहीं मिटेगे यह जो अब तक मनुष्य के युद्धों का, हिंसा का, घृणा का इतिहास है यह इस बात का सबूत है कि हमारी शिक्षा मनुष्य को युद्ध, घृणा और हिंसा सिखा रही है वह उसे प्रेम नही सिखा रही है।

महत्वाकांक्षी मन भय और हीनता की गृंथियों से भरा होता है:

महत्वाकांक्षी मन भय से भरा हुआ है और हीनता भी उसके भीतर है इनफिरियाट्री आदि भी उसके भीतर है तो जिस शिक्षा की मै बात कर रहा हूँ वह प्रत्येक व्यक्ति के भीतर से हीनता का भाव मिटाने की कोशिश करेगी। अभी वह प्रत्येक व्यक्ति को हीनता का भाव, दबाने

और सुपीरियारिटी काम्पलेक्स को पकड़ने की शिक्षा है। वह प्रत्येक व्यक्ति को सिखाती है कि तुम हीनता का भाव भूल जाओ और तुम भी कुछ हो तो पद पर पहुंचो धन इकट्ठा करो तुम सिद्ध कर दो कि तुम भी कुछ हो। तो उल्टी स्थिति बनती है इनफिरियारिटी कामप्लेक्स भीतर बना रहता है और सुपीरियारिटी की दौड़ शुरू हो जाती है श्रेष्ठता ऊपर से और आदमी भीतर हीन बना रहता है।

वास्तविक शिक्षा जिसे प्रेम की शिक्षा कहें वह व्यक्ति के भीतर श्रेष्ठता का भाव पैदा नहीं करेगी सिर्फ हीनता का भाव कैसे विसर्जित हो, यह सिखायेगी। अभी तो हम हीनता का भाव पैदा करवाते हैं। क्योंकि अगर हम पैदा न करवायें तो श्रेष्ठता की दौड़ शुरू नही होती। और श्रेष्ठता की दौड़ शुरू न हो तो महत्वाकांक्षी आदमी बनेगा कैसे? अभी तो हम कहते हैं इस 'अ' नाम के लड़के को कि तुम 'ब' नाम के लड़के से आगे बढ़ देख तू ब नाम के लड़के से कितना पीछे है। तू ब के सामने कुछ नहीं है। ब कितने सर्टीफिकेट ला रहा है कितने गोल्ड मैडिल ला रहा है तू तो कुछ भी नहीं है। तो हम तुलना करके प्रत्येक बच्चे में हीनता का भाव पैदा करवाते हैं और डर पैदा करवाते है। कि अगर तू हीन रह गया तो तू नो बडी हो जायेगा तू फिर कभी नहीं कुछ हो पायेगा। तो हम एक फीवर एक ज्वर पैदा करते हैं, बुखार जिसमें कि वह दौड़े, हीन होने के डर से घबड़ा जाये और महत्वाकांक्षी बने।

जिस शिक्षा की मैं बात कर रहा हूँ वह कम्परीजन नही सिखायेगी वह शिक्षा यह नहीं कहेगी कि तुम तुम हो और तुम्हारे जैसा कोई आदमी कभी न हुआ है न कभी पैदा होगा। वह यह सिखायेगी कि प्रत्येक व्यक्ति बेजोड़, अद्वितीय, यूनिक व्यक्ति हो सकता है। इसलिए इसकी तुलना करना कि तुम किसके आगे हो और किसके पीछे हो बेमानी है, तुलना तो तब की जा सकती है जब एक जैसे लोग हों।

प्रेम की अवस्था पैदा हो सके इसके लिए हीनता को दबाना नहीं हैं न हीनता को पैदा करना है न श्रेष्ठता की ज्वर ग्रस्त दौड़ पैदा करनी है हीनता को पोंछ डालना है। हीनता अज्ञान से पैदा हो गयी है नासमझी से पैदा हो गयी है। हीन कोई है ही नहीं। एक व्यक्ति अकेला

है इसलिए तुलना का कम्परीजन का उपाय नहीं है अब तक की सारी शिक्षा कम्परीजन पर, तुलना पर खड़ी है तुलना हीनता पैदा करेगी श्रेष्ठता पैदा करेगी आगे दौड़ने, पीछे दौड़ने का भाव पैदा करेगी। तुलना से बचना होगा, तुलना से मुक्त होना पड़ेगा जिस शिक्षा की मैं बात कर रहा हूँ वहां तुलना की कोई गुंजाइश नहीं होगी, तुलना नही होगी।

हम एक-एक व्यक्ति को इस भाव दशा में ऐसे वातावरण में ऐसे शिक्षकों में ऐसे मित्रों में स्कूल में पालने की कोशिश करेगें जहाँ भूलकर भी कोई तुलना न करता हो। एक-एक व्यक्ति जैसा है वैसा स्वीकृत हो। और वह जैसा है, उसे हम कैसे विकास मान करें उसके लिए भूमि वातावरण तैयार किया जाता है। जहाँ शिक्षक सहयोगी है हम जो हैं, वही बनाने में जहाँ शिक्षक इसके लिए चेष्ठारत नहीं है, कि हम जो हैं, हैं नहीं कोई और जैसे बनना।

जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को जो वह कर सकता है जो उसकी फेटेंशिलटी है जो उसके भीतर दिया हैं उसको प्रकट करने के लिए सहयोग दिया जा रहा है तब हीनता मिटेगी और तब श्रेष्ठता की दौड़ भी मिट जायेगी और तब महत्वाकांक्षा नही रहेगी और ऐसे चित्त में हीनता नहीं है, श्रेष्ठता नहीं है, तुलना नहीं है, प्रेम का उद्भव हो सकता है।

जैसा मैंने ओशो को अध्ययन के माध्यम से समझा है कि वे चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्तित्व स्वतंत्र है। लेकिन समाज आज वही जटिलताओं में जी रहा है और वह हमें इस बात की अनुमति नही देगा कि हम स्वतंत्र जीवन व्यतीत करें और प्रेम के लिए मुक्त प्रेम करें और सरल जीवन जीने दें।

ओशो ने कहा है समाज ऐसा है कि, इस सत्य को स्वीकार करके ही कुछ किया जा सकता है। अगर किसी व्यक्ति को यह दिखाई पड़ता है कि एक सरल, एक प्रेमपूर्ण आनन्द पूर्ण, स्वच्छ जीवन के अतिरिक्त कोई जीवन ही नहीं है जिस व्यक्ति को यह दिखाई पड़ जाये कि प्रेम पूर्ण हुए बिना जीवन के आनन्द से मैं वंचित हो जाऊँगा अगर एक व्यक्ति को यह दिखाई पड़ जाय कि सरल हुए बिना सत्य को पाने का कोई उपाय ही नहीं है तब फिर इसकी फिक्र वह छोड़ देगा कि समाज कैसा है क्योंकि समाज उसे दे क्या सकता है? एक बार उसे समझ आ जाये कि और दिशा में जो समाज देता ही नहीं इसलिए

बाधा बनता है। मेरे जीवन के आनन्दों का द्वार यह है, तो वह व्यक्ति उसके सामने चलना शुरू कर देगा।

धर्म की प्रमुखता का विश्लेषण

मनुष्य के इतिहास में सभी जीवंत धर्मो का सूत्रपात हुआ एक प्रेम मनुष्यता के अवतरण हेतु, लेकिन समय के अन्तराल के साथ सभी धर्म, संम्प्रदायों में परिवर्तित होते गये एवं खण्ड-खण्ड मनुष्यता का कारण बने। उस पर लादे गये कर्मकांड। ईश्वर की व्यक्तिवादी परिकल्पना, एवं पण्डित पुरोहित। ओशो ने सदा एक नये प्रेमपूर्ण मनुष्य का अवतरित करने का उपाय बताया है, ध्यान एक मात्र तकनीक है।

धर्म कितनी जल्दी कर्म कांड बन जाता है। अभी पैदा ही नहीं हुआ कि उसके आस-पास आचरण की बागुड़ बनने लगती है यम नियम की दीवारें खड़ी होने लगती हैं। एक बार किसी ने ओशो से पूंछा था पृथ्वी पर इतने बुद्ध पुरूष हुए लेकिन मनुष्य के जीवन के अंधेरे दूर क्यों नही हुए? आत्मक्रांति घटित क्यों नहीं हुई?

ओशो ने कहा, "इसलिए क्योंकि हमने उनके बाहय आचरण को पकड़ लिया। महावीर के उपवास को पकड़ लिया उनके भीतर केशून्य को नही समझा। बुद्ध के बुद्धत्व से चूक गये उनके शरीरिक तप को पकड़ लिया।"1

मनुष्य की यह सबसे बड़ी कमजोरी है वह बाह्य से चिपका रहता है उसकी आँखे भीतर मुड़ती ही नहीं और जो बाहर है वह भीतर का प्रतिविम्ब मात्र है छाया है, छाया के साथ क्या किया जा सकता है? वह जिसकी अनुगामिथी है, उस मूल आकृति को देखना जरूरी है।

बुद्ध कहते रहे अप्प दीपो भव, और हम बाहर दिये जलाते रहे। लेकिन हम ओशो के साथ यह नही होने देंगे उनका आना पृथ्वी पर रहना क्रांति की अग्नि को प्रज्वलित करना मात्र पानी पर खिंची लकीर न रह जाये इसका उत्तरदायित्व सभी वास्तविक धर्मियों पर हैं जहाँ-जहाँ हम देखें कि हम क्रियाकांड में उलझते जा रहे हैं वहाँ-वहाँ से अपनी मूर्छा को झकझोर कर जगाना है, हर कृत्य की गहराई में उतर कर देखना है, कि इसका मूल उद्देश्य क्या है, और इसमें आडम्बर कितना जुड़ गया है।

1 ओशो टाइम्स जून 1999 - संकलनकर्ता आनन्द सत्यार्थी पेज नं. - 34

मसलन सन्यास, स्यंम से पूंछे कि हमारे सन्यास में समारोह महत्वपूर्ण है या ऊर्जा का सम्यक आरोहण? सन्यास लिया नहीं जाता सन्यस्त हुआ जाता है। सन्यास है अकेले होने का साहस। मने को रूपान्तरित करने का संकल्प क्या कपड़ों का रंग बदल कर हम मन को बदल सकते हैं सन्यास जो परम असुरक्षा में जीने का नाम है उसमें कई लोग नई सुरक्षा ढूढ़ते हैं।

अगर हमें अहसास हो कि ओशों का सन्यास एक अवसर है जो उन्होंने हमे दिया है, आत्मविकास का अवसर उनका उपयोग करें तो ही वह सार्थक होगा जीवंत होगा। अवसर एक बीज की भाँति है, अंकुरित भी हो सकता है विशाल वृक्ष बन सकता है या सारी सम्भावनओं को मिट्टी में दफनाकर बीज ही बना रह सकता है।

बाहर जो भी है वह सब प्रतीक है उसका सत्य तो भीतर है लेकिन वह रेडीमेड उपलब्ध नहीं है, उसका निर्माण करना होगा, और उसके निर्माण करने के लिए हमें स्वयं प्रतिपल जागरण की आग से गुजरना होगा।

अब इक्कीसवीं सदी में मनुष्य चेतना कुछ और टेक्नालॉजी के संग जी रहा है। आधुनिक मनुष्य अब जिस धर्म की ओर उन्मुख होगा उसका चेहरा कुछ और ही होगा। धर्म की आवश्यकता तो सदा ही रहेगी। धर्म अर्थात अस्तित्व को धारण करने की शक्ति। यह शक्ति ही जीवन का आधार है, उसके बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। लेकिन यह धर्म नये मनुष्य को आत्मनिर्भर बनायेगा स्वाधीन बनायेगा।

प्राचीन धर्मों का विश्लेषण करते हुए ओशो ने कहा है (दि लॉस्ट टेस्टामेंट) समय घूमता है तब हर 25 सौ साल बाद उसमें एक नया मोड़ आता है, जैसे बुद्ध से पहले आदिनाथ हुए उन्होंने ईश्वर को इन्कार किया और धर्म के जगत में क्रांति लाई। बुद्ध ने भी आत्मा का इन्कार किया और संघ की स्थापना की। इसलिए उनका धर्म क्रियाकांड में संलग्न हो गया। अब मै कहता हूँ सिर्फ ध्यान ही धर्म का आधार हो।

आज तक सारे धर्म गुरू मनुष्य की कमजोरियों का शोषण करते रहें हैं। अब हमें किसी मार्ग दर्शक की जरूरत नही है। सत्य के साथ खड़े होने का साहस पारदर्शी प्रज्ञा

विनोद बुद्धि सहजता जोरबा और बुद्ध का युगपत अंगीकार कर हमें द्वार बनाना है नये युग का नई पीढ़ी का, नई शिक्षा का, हमसे गुजरकर ही नवीनता आयेगी हम स्यंम को झाकं कर देखें क्या हमारे आस-पास पुराने की पर्तें चिपकी हुई हैं।

दुनिया में सच्चे धर्म का जन्म तभी होगा, जब मनुष्य को उसकी कमजोरी से मुक्त करने में लगें, नाकि उसकी कमजोरियों का शोषण चलने दें। मनुष्य को उसकी कमजोरी से मुक्त करना है। मनुष्य को अभय, अलोभ स्वतन्त्रत विचार यह सब देने है ताकि वह हर शोषण के विरोधि में उसके भीतर एक बगावत एक विद्रोह खड़ा हो सके। ऐसे लोग एक धार्मिक दुनिया की शुरूआत बनेंगे। ये डरे हुए भयभीत लोग नहीं, ये घुटने टेककर जमीन पर बैठे लोग नहीं, ये बच्चे मांगते, बीमारी खत्म कराते हुए लोग नहीं, ये नरक से बचने की कोशिश में लगे लोग नहीं, ये मंदिर बनाकर स्वर्ग में अपना रिजर्वेशन कराते लोग नहीं, इन लोगों से दुनिया धार्मिक नहीं होती, इनसे ईश्वर का अवतरण जमीन पर नहीं हो सकता जोकि सच्चा ईश्वर है उसके लिए चाहिए समस्त कमजोरियों से मुक्त मनुष्य।

दुनिया में किसी धर्मग्रन्थ के साथ सबसे बुरा काम जो हो सकता है वह उसका पाठ है निरन्तर उसका पाठ सबसे खतरनाक बात है। क्योंकि निरन्तर उसके पाठ का अर्थ यही होगा कि आपमें उसके प्रति जो भी सजीवता है जो भी सजगता है, जो भी स्फुर्ति है, वह धीरे-धीरे खो देगें इसलिए दुनिया में उन कौमों को जिनके पास अद्‌भुत ग्रंथ है अद्‌भुत विचार हैं और ग्रंथ स्मर्ण हो जाते हैं और उनकी जो जीवित चोट है, वह समाप्त हो जाती है।

"धर्म हमेशा क्रांति से उपलब्ध होता है धर्म धीरे-धीरे नही उपलब्ध होता जो सोचते हैं हम धीरे-धीरे धार्मिक हो जायेंगे वे गलती में हैं। घृणा करने वाला सोचता हो कि मैं धीरे- धीरे प्रेम में भर जाऊँ तो वह गलती में है। और जब प्रेम जागृत होता है, तो घृणा एक क्षण में विलीन हो जाती है।"1

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है वह एक ही क्षण में घटित होता है क्रमशः घटित नही

1 **क्या ईश्वर मर गया है – सम्पादक : नरेन्द्र बोधिसत्व** **पृष्ठ 45**

होता। जो भी क्रमशः घटित होता है वह व्यर्थ और क्षुद्र है। एक ही साथ जो क्रांति घटित होती है, वही मूल्यवान, वही सार्थक, वही अर्थपूर्ण है, और वही व्यक्ति को परमात्मा से नही जुड़ सकता। जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध होता है तो एक ही छलांग में एक क्रांति में एक विस्फोट में और एक ही साथ सब कुछ परिवर्तित हो जाता है।

जैसे हम किसी सोते हुए व्यक्ति को जगायें तो क्या वह धीरे-धीरे उठता है? नींद धीरे-धीरे टूटती है? जैसे हम किसी को उठा दें एक क्रांति हो जाती है सपने टूट जाते हैं और जागरण सामने आ जाता है धर्म का जीवन क्रांति का जीवन है इसलिए जो लोग धीरे-धीरे का ख्याल कराते हैं। हमारे आलस्य का ईजाद है। बुद्ध ने कहा है कोई अगर आग में घिर जाय और हम उससे कहें कि आग के बाहर आ जाओ और वह कहे कि मै धीरे-धीरे बाहर जाऊँगा। आपकी बात का विचार करूंगा बाहर आने का अभ्यास करूंगा फिर बाहर आऊँगा जैसे ही दिखाई पड़ेगी आग वह बाहर आ जायेगा। यह तत्कालिक तीव्र क्रांति से ही होगा।

ओशो ने कहा है इस दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति को अगर वास्तविक विकाश करना हो तो अपना ही विकाश करना होता है किसी दूसरे को विकाश काम में नहीं आ सकता। किसी दूसरे का किया गया भोजन आपको तृप्त नहीं कर सकता किसी दूसरे का प्राप्त किया गया सत्य आपका सत्य नहीं हो सकता। इस जगत में कोई भी मनुष्य किसी दूसरे उधार सत्य को नहीं पा सकता। लेकिन हम सब उधार सत्यों को स्वीकार कर लें। हमें निरन्तर समझाया जाता है कि हम दूसरे के सत्यों को मान लें।

हमें सन्देह से बचने को कहा जाता है और विश्वास करने को कहा जाता है।

मैं आपसे सन्देह करने को कहता हूं जिसे भी सत्य जानना हो उसे सन्देह करने का साहस करना होता है, और सन्देह इस जगत में सबसे बड़ा साहस है। स्मरण रखें अगर ओशो ने सन्देह करने को कहा है तो परोक्ष रूप में उन्होंने यह कहा है कि अविश्वास करें। अविश्वास भी विश्वास का एक स्वरूप है जो आदमी कहता है कि मैं ईश्वर को नहीं मानता यह भी एक विश्वास है, जो आदमी कहता है आत्मा है, यह भी एक विश्वास

है जो आदमी कहता है आत्मा नहीं है यह भी विश्वास है ये दोनों ही विश्वास है, आस्था और अनास्था, श्रद्धा और अश्रद्धा, सब श्रद्धा के रूपान्तर हैं दोनों ही रूपों में हम दूसरों को मान लेते हैं खुद खोज नहीं करते हैं। सन्देह का अर्थ है न श्रद्धा, न अश्रद्धा, न स्वीकार न, अस्वीकार। सन्देह का अर्थ है जिज्ञासा, सन्देह का अर्थ है मैं जानना चाहता हूं सत्य क्या है?

इसलिए श्रद्धा नहीं जिज्ञासा धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है, और जहां श्रद्धा पहला लक्षण होगा वहां आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। और ऐसे ही श्रद्धा वाले धार्मिकों ने सारी दुनिया को नष्ट किया है उनका पूरा इतिहास खून खराबा बेइमानी अत्याचार आक्रमण और हिंसा से भरा हुआ है क्योंकि श्रद्धा हमेशा किसी के विराध में खड़ा कर देती है। एक मुसलमान की श्रद्धा ईसाई के विराध में खड़ा कर देती है। लेकिन ख्याल रहे जिज्ञासा किसी को किसी के विरोध में खड़ा नहीं करती है। इसलिए श्रद्धा किसी भी धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं हो सकता जिज्ञासा किसी को किसी के विरोध में खड़ा नहीं करती यही वजह है, कि सांइस जो कि श्रद्धा पर खड़ी नहीं है, जिज्ञासा पर खड़ी है एक है, पच्चीस तरह की सांइसेज नहीं है, हिन्दुओं की अलग गणित, कंमैस्ट्री, मुसलमानों की अलग कैमेस्ट्री नहीं है। सांइस एक है क्योंकि सांइस श्रद्धा पर नहीं जिज्ञासा पर खड़ी है।

"धर्म भी दुनिया में एक होगा अगर वह श्रद्धा पर नहीं जिज्ञासा पर खड़ा हो और जब तक धर्म अनेक हैं, तब तक धर्म के नाम पर फूट चलती रहेगी।"1

1 पूरब के पार – ओशो टाइम्स 1 मार्च 1994 पृष्ठ 15

अध्याय चतुर्थ

"ओशो की शैक्षिक विचारधारा"

अध्याय - 4

(क) ओशो की शैक्षिक विचार धारा

(क) शिक्षा का अर्थ एवं स्वरूप -

अर्थ - शिक्षा एक व्यापक शब्द है। यह जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है तथा प्रत्येक सभ्यता और संस्कृति की जननी है बच्चा संसार में कुछ पाशवीय प्रवृत्तियां लेकर पैदा होता है। उसकी इन प्रवृत्तियों में नियन्त्रण रखकर उसके अन्दर निहित आन्तरिक शक्तियों का एवं प्रतिभा का सर्वांगीण विकास करना ही शिक्षा है।1

''शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्षु' धातु से निकला है जिसका अर्थ होता है सीखना या सिखाना।''

शिक्षा विदों ने -

''विद्या शब्द का उद्‌गम भी संस्कृत की 'विद्' धातु से माना है जिसका अर्थ होता है जानना, पता लगाना, अथवा सीखना, विद् के अन्य अर्थ वेन्ति, विद्यते, विन्दति, वास्तविकता, उपलब्धि, विचारण और श्रेष्ठ भावनाऐं।''2

कुछ विद्धानों के अनुसार -

''शिक्षा अंग्रेजी भाषा के 'एजूकेशन' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। एजूकेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के एजूकेटम शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ है अन्दर से बाहर की ओर निकालने की कला। 'ई' का अर्थ है अन्दर से 'ड्यूको' का अर्थ है आगे बढ़ाना अर्थात शिक्षा का अर्थ है बालक की अन्तरनिर्हित योग्यताओं को बाह्य की ओर अग्रसर करना। अमेरिकन शब्दकोष में 'एजूकेयर' शब्द का अर्थ है शिक्षित करना, ऊपर उठाना एवं अग्रसर करना।'' 3

''शिक्षा प्रकाश का वह स्रोत है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ प्रदर्शक है।''

1. शिक्षा दर्शन, डॉ. रामशकल पाण्डेय पृष्ठ - 26

2. शिक्षा दर्शन, डॉ. रामशकल पाण्डेय पृष्ठ - 26

3. आधुनिक परिवेश में महामना मदनमोहन मालवीय के शैक्षिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन शिक्षा का अर्थ पृष्ठ 134

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा द्वारा हमारे संशयों का उन्मूलन एवं कठिनाइयों का निवारण होता है तथा विश्व को समझने की क्षमता प्राप्त होती है। 'ज्ञान' तृतीयां मनुजस्य नेत्रम् समस्त तत्वार्थ बिलोक दक्षम् दो नेत्रों के देखने से जो अपूर्व रह जाता है वह विद्यारूपी नेत्र से देखा जा सकता है। बिना विद्या के मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं होता है। विद्या विहीनः पशुभिः समानः' अर्थात् विद्या से ही मानवता के गुणों का विकास सम्भव है नहीं तो पशु का पशु ही रह जायेगा। जिसका उद्देश्य मात्र उदरपूर्ति होता है।"1

भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा वह है जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करें -

"सा विद्या या विमुक्तये"

अर्थात प्राचीन काल में -

"शिक्षा को पवित्र प्रक्रिया माना गया है गीता में श्री कृष्ण ने ज्ञान को पवित्रम् घोषित किया है, 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' महाभारत में कहा गया है 'नास्ति विद्या समं चक्षुः अर्थात् विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं होता, भारतीय दर्शन में अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश माना गया है शिक्षा एक प्रकाश है अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाना शिक्षा का प्रमुख कार्य है।"2

"मानव के नाते भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति किसी भी अर्थ व्यवस्था का न्यूनतम स्तर है रोटी कपड़ा और मकान मोटे रूप में इन आवश्यकताओं की अभिव्यजना करते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति को समाज के प्रति कर्तव्यों का निर्वाह करने में सक्षम बनाना भी समाज का आधारभूत दायित्व है"। 3

इसलिए कहा गया है कि -

"माता शत्रुः पिता बैरी येन वालो न पाठितः
न शोभते समा मध्ये हंस मध्ये वको यथा।"

1. आधुनिक भारतीय शिक्षा - डॉ. वी. वी. अशकल — पृष्ठ - 2
2. भारतीय शिक्षा के मूलतत्व - लज्जा राम तोमर — पृष्ठ - 63
3. दीन दयाल उपाध्याय — पृष्ठ 64

जो माता-पिता अपने पुत्र को शिक्षा नहीं दिलाते वे शत्रु और बैरी की तरह होते हैं क्योकि उनका पुत्र हंसों के बीच बगुले की तरह शोभायमान नहीं होता।

सत्यार्थ प्रकाश में बच्चे को शिक्षा दिलाना माता पिता आचार्य और सम्बन्धियों का कर्तव्य बताया गया है। जिससे वह शिक्षा प्राप्त कर सांसारिक दुःखी व्यक्तियों के दुःखों को दूर करता हुआ परमानन्द को प्राप्त करें -

"सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुण कर्म स्वभाव रूप आभूषणों को धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियो का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान प्रदर्शित होता है मनुष्य की आत्मा सुशोभित कभी नहीं हो सकती।"

'जिन पुरूषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता है सुन्दर शील स्वभाव युक्त सत्य भाषण आदि नियम पालन युक्त और जो अभिमान अपवित्रता से रहित अन्य मलीनता के नाशक सत्योपदेश वेदाविहित कर्मो से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिए सभी लड़की और लड़कों को शाला में भेज देवें।"1

हमारे यहां विद्या विहीन पुरूष को सुगन्ध रहित फूल की तरह ही व्यर्थ माना गया है चाहे वह कितना भी सुन्दर बलशाली और धनाड्य परिवार में क्यों न उत्पन्न हुआ हो-

"रूप यौवन सम्पन्ना विशाल कुल सम्भवाः।
विद्या हीनः न शोभते निर्गन्धा इव किशुकाः।"

शिक्षा का स्वरूप प्रतिस्पर्धात्मक नहीं होना चाहिए। शिक्षा का यह वर्तमान ढाँचा कही गलत तो नही है निश्चित ही यह ढांचा गलत होना चाहिए क्योंकि परिणाम गलत है और परिणाम ही परीक्षा देते हैं परिणाम ही बताते हैं कि जो हम कर रहे हैं वह ठीक है या गलत ये बच्चे जो शिक्षित होकर निकलते हैं। ये विक्रत मनुष्य होकर निकलते हैं और पीछे भी बुनियादी रूप से शिक्षा ठीक नही है अन्यथा यह गलत शिक्षा पैदा ही नही होती क्योंकि ठीक से गलत कभी पैदा नहीं होता। गलत से ही गलत पैदा होता है पीछे भी गलत था आज

1. **सत्यार्थ प्रकाश - स्वामी दयानन्द सरस्वती - पृष्ठ - 26**

भी गलत है।

यह हमारी पूरी की पूरी शिक्षा जिस केन्द्र पर घूमती है वह केन्द्र ही गलत है उस केन्द्र के कारण सारी तकलीफ पैदा होती है वह केन्द्र है एम्बीशन हमारी यह सारी शिक्षा एम्बीशन पर घूमती है महत्वाकांक्षा पर घूमती है।" [1]

हमें सिखाई जाती है महत्वाकांक्षा हमें सिखाई जाती है एक दौड़ कि आगे हो जाओ छोटा सा बच्चा के.जी. में पढ़ने जाता है उसे भी हम एन्ज्राइट पैदा कर देते है प्रथम होने की एंग्जायटी। इससे बड़ी कोई एंग्जायटी (चिन्ता) नही है दुनिया में। सारी दुनिया में एक ही चिन्ता है कि मै दूसरे से आगे कैसे हो जाँऊ और दूसरे को कैसे पीछे छोड़ दूँ।"1

छोटा सा बच्चा छोटे से स्कूल में पढ़ने जाता है उसके मन मे भी हम चिन्ता का भूत भर देते हैं उसे भी आगे होना है वह भी पुरस्कृत होगा अगर आगे आयेगा सफल होगा तो सम्मानित होगा शिक्षक आदर करेंगे घर में आदर मिलेगा और अगर असफल रहा तो अपमानित होगा और प्रतियोगितायें एक प्रकार का ज्वर बन जाती है एक तरह का बुखार बन जाती हैं और अगर आप बुखार में हैं तो आप ज्यादा तेजी से दौड़ सकते हैं आप अधिक तेजी से गालियाँ वक सकते हैं अगर आप बुखार में है तो आप ऐसी बातें कर सकते हैं जो सामान्य तथा नहीं कर सकते बुखार में एक त्वरा आ जाती है एक शक्ति आ जाती है और ऐसी शिक्षा का परिणाम यह निकलता है कि व्यक्ति जब पढ़ लिखकर बाहर आता है तो उसे सब जगह एक प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है बड़ा मकान बनाना है दुकान बड़ी होना चाहिए उससे आगे रहना चाहिए।

अतः शिक्षा के स्वरूप को प्रतिस्पर्धा से मुक्त रखकर ही विद्यार्थी में उत्तम संस्कार की संरचना सम्भव है।" 2

1. शिक्षा और विद्रोह – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व **पृष्ठ – 21**

2. तथैव **पृष्ठ 43**

स्वरूप

मानव सभ्यता के ऊषाकाल में विद्यालय नही थे परिवार समुदाय और धार्मिक संस्थाऐंही विद्यालय का काम करती थीं। मानवता का अनुभव भी उस समय सीमित था। सृष्टि का ज्ञान भी सीमित था। अनेकानेक विद्वानों के मत भी नहीं थे जीवन बड़ा सरल था ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती गयी जीवन बड़ा कठिन होता गया मनुष्य के अनुभव बढ़ते गए, ऐसी स्थिति में मनुष्य के अनुभवों को विभिन्न श्रेणियों मे विभक्त करके तथा छात्र की आयु और योग्यता की जाँच करके उसके अनुसार ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना आवश्यक हो जाता है।1

इस प्रकार वर्तमान समय तक शिक्षा के निम्नलिखित विभिन्न स्वरूप निर्मित हुए। नियमित अनियमित प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष वैयक्तिक और सामूहिक सामान्य और विशिष्ट निरोपचारिक।

शिक्षा के स्वरूपों की विवेचना करते हुए कहा गया है कि ''शिक्षा एक जटिल आवधारणा है। यह औपचारिक विद्यालयीकरण या अनुभव से सीखने की जीवन पर्यन्त प्रक्रिया को अभिव्यक्त करती है। इसको विभिन्न रूपों में ज्ञान के संग्रह संस्कृति के हस्तांतरण सर्वोत्तम क्षमता प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रस्तुत किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय आयोग 1917 ने शिक्षा के विभिन्न रूपों को अभिवयक्त करते हुए अपने प्रतिवेदन में लिखा है –[2]

1. ओशो – शिक्षा और विद्रोह : नरेन्द्र बोधिसत्व — पृष्ठ – 42
2. तथैव — पृष्ठ 42

''शिक्षा स्वयं में एक विश्व भी है और विशाल विश्व का प्रतिबिम्व भी अपने उद्‌दश्यों में योगदान करती हुई वह समाज के अधीन होती है और विशेष रूप से वह यह सुनिश्चित करके कि अपेक्षित मानव संसाधनों का विकास होता है। समाज को अपनी उत्पादक शक्तियों के जुटाने में सहायता पहुंचती है। शिक्षा का उन पर्यावरणात्मक स्थितियों पर जिनके अधीन वह होती है आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है भले ही यह प्रभाव केवल उन व्यक्तियों के ज्ञान के द्वारा हो जिनका निर्माण वह करती है इस प्रकार शिक्षा अपने स्वयं के रूपान्तरण तथा प्रगति की वस्तुनिष्ठ स्थ्थितियों के निर्माण में योगदान करती है।''1

''शालेय शिक्षा अकेली ही मनुष्य का निर्माण कर सकती। संस्कार और अध्यापन का बहुत सा ऐसा क्षेत्र है जो शालेय क्षेत्र के बाहर है यदि इन दोनों क्षेत्रों में विरोध रहा तो विद्यार्थी के जीवन में एक अन्तर्द्वन्द उपस्थित हो जाता है। एक समन्वित एकीकृत सर्वांगपूर्ण अखण्ड व्यक्तित्व का विकास होने के स्थान पर उसकी प्रकृति में विभिन्न निष्ठाओं का समावेश हो जाता है समाज और उसके बीच एक खाई पड़ जाती है।

शिक्षा ज्ञान देने तक सीमित नहीं कही जा सकती शिक्षा जब तक जीवन के मूल्यों, आदेश्रो एवं मान्यताओं का परिचय नहीं देती तब तक वह शिक्षा नहीं कहीं जा सकती ऐसे विचार ही डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भी वयक्त किये हैं।

''शिक्षा सूचना प्रदान करने एवं कौशलों का प्रशिक्षण देने तक सीमित नहीं है।

इसे शिक्षित व्यक्ति के मूल्यों का विचार भी प्रदान करता है वैज्ञानिक एवं तकनीकी व्यक्ति भी नागरिक है। अत: जिस समुदाय में रहते हैं उस समुदाय के प्रति उनका भी सामाजिक उत्तरदायित्व है।''

अत: केवल औपचारिक शिक्षा अर्थात् विद्यालयी शिक्षा के द्वारा वांछित परिणामों को प्राप्त करना असंभव है-

''औपचारिक शिक्षा तो संस्कार व स्वाध्याय के बीच की कड़ी है। परिवार, हाट बाजार, खेत, खलिहान ये सब विद्यालय हैं।''

1. शिक्षा – डॉ. महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ 307,308

शिक्षा की वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक अवधारणा

मनुष्य का विकास जीवन के निम्न स्तरों से हुआ है। प्राणी को अपना जीवन बनाए रखने के लिए वातावरण से निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है इस जीवन संघर्ष में शक्तिशाली प्राणी जीवित रह जाते हैं और निर्बल नष्ट होते हैं। अतः शिक्षा की वैज्ञानिक अवधारणा से यह अभिप्राय है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति को जीवन संघर्ष के लिए तैयार कर सके।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि -

''प्राणी में अपने आपको, आदतों को और अपने शारीरिक ढ़ांचे को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की शक्ति होती है।''1

अतः शिक्षा की वैज्ञानिक अवधारणा का तात्पर्य है ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति को वातावरण के अनुकूल ढलने की क्षमता उत्पन्न करे। आत्म सुरक्षा और आत्म संतोष भी प्राणियों का आवश्यक गुण है अतः शिक्षा की सहायता से मनुष्य के अन्दर आत्म सुरक्षा एवं आत्म संतुष्टि की भावना जागृत होनी चाहिए।

इस प्रकार शिक्षा को वैज्ञनिक दृष्टिकोण से देखने वाले वैज्ञानिक शिक्षाविद् हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है -

''शिक्षा को हमें पूर्ण जीवन के नियमों तथा ढंगों से परिचित कराना चाहिए।''

शिक्षा का सबसे महत्वपर्ण कार्य बताते हुए उन्होंने कहा है कि -

''शिक्षा मनुष्य को ऐसा तैयार करे कि वह उचित प्रकार का व्यवहार कर सके और शारीरिक मस्तिष्क तथा आत्मा का सदुपयोग कर सके।''

प्रत्येक बालक को सांस्कृतिक विरासत उस समाज से प्राप्त होती हे जिसमें वह जन्म लेता है जहां उसका पालन पोषण होता है और जिस समाज में उसकों शिक्षा दीक्षा प्राप्त होती है। मनुष्य समाज का अंग होता है वह समाज से कटकर नहीं रह सकता वह अपने समाज

1. शिक्षा - डॉ. महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ 307,308

को संगठित करके उसे मजबूत और समृद्धिशाली बनाता है एक निश्चित व्यवस्था को विकसित और स्थापित करता है। इसी निश्चित और सम्पूर्ण व्यवस्था को 'संस्कृति' कहते हैं। 'संस्कृति' के अन्तर्गत समाज के रीति रिवाज, परम्पराएं,नैतिकता, कला, विज्ञान, धर्म, विश्वास, पूजा, पद्धति, आचार, विचार तथा आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था समाहित रहती है।1

सदरलैण्ड व बुडवर्ड ने संस्कृति की परिभाषा देते हुए कहा है -

''संस्कृति में कोई भी बात आ सकती है जिसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जा सकता है किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उसकी 'सामाजिक विरासत' है।

रोसेक ने कहा है 'किसी विशेष समय और स्थान में निवास करने वाले विशेष व्यक्तियों के जीवन व्यतीत करने की विधि को संस्कृति कहते हैं।'

किसी भी देश की सजीव शिक्षा व्यवस्था में वहां की संस्कृति समाहित रहती है संस्कृति के अभाव में शिक्षा निस्सार निष्प्रयोज्य और निर्जीव बनकर रह जाती है। शिक्षा और संस्कृति का अटूट सम्बन्ध होता है ब्रामेल्ड के अनुसार -

''संस्कृति की सामग्री से ही शिक्षा का प्रत्यक्ष रूप से निर्माण होता है और यही सामग्री शिक्षा का न केवल स्वयं के उपकरण वरन् उसके अस्तित्व का कारण भी प्रदान करती है।''
यदि किसी समाज की शिक्षा में कोई विशेषता होती है तो उसका एक ही कारण होता है - उसकी संस्कृति प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति के अनुकूल ही शिक्षा की व्यवस्था करता है शिक्षा भी अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संस्कृति की सेवा और सहायता करती है तथा सहयोग प्राप्त करती है। इस प्रकार शिक्षा सदैवमान संस्कृति का अभिन्न अंग होती है।

''व्यक्ति जन्म लेता है समाज द्वारा उसे शिक्षित और संस्कारित किया जाता है।

1 शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त - पाठक एवं त्यागी **पृष्ठ - 150**

धीरे-धीरे व्यक्ति गुणवान बनता है .... समाज उसकी देखभाल करता है। व्यक्ति को बुद्धिमान, धैर्यवान, पराक्रमी, शक्तिवान और धनवान बनाने का काम समाज ही करता है इस प्रकार समाज से सब कुछ पाकर जब व्यक्ति सक्षम हो जाता है वह............. अपने गुण और शक्ति का उपयोग समाज भी व्यक्ति के योगक्षेम की चिन्ता करता है। वैसे व्यक्ति अपने गुणों और शक्ति से समाज की दो चार आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर पाता है किन्तु समाज उसके बदले उसे कई चीजें लौटाता है। शिक्षा, वस्त्र, मकान सुरक्षा ही नहीं तो सुख की अनेकानेक अनुभूतियों और दुःख में धैर्य भावना आदि कितनी ही बातें समाज से व्यक्ति को मिलती है।''1

अतः समष्टि के बिना जब व्यष्टि का कोई मूल्य ही नहीं है तो इसी बात को ध्यान में रखकर ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए जो बालक के अन्दर सामाजिक भावना का अधिकाधिक विकास कर सके यही पण्डित जी का सिद्धान्त था।

मनुष्य को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वह अपने समाज का सर्वस्व सर्मपण करने के लिए तैयार रह सकें। उन्होंने कहा है -

''वैसे तो मनुष्य का जीवन नाशवान है फिर भी भगत सिंह को सब याद करते हैं एक लम्बी परम्परा है जिनका स्मरण होता है इन सब बलिदानी महापुरूषों ने अपने शरीर की परवाह नहीं की। यह 'हम' ही था जिनने 'मैं' को इतना ऊँचा उठाने की प्रेरणा दी हंसते-हंसते बलिदान हो गए, कहा कि शरीर नश्वर है समाज अमर है समाज को जीवित रखने के लिए व्यक्ति ने बलिदान दिए। समाज ने उन्हें अपनी स्मृतियों में संजोकर अमर बना दिया।''2

'संस्कृति सांस्कृतिक समृद्धता का सिद्धान्त -

ज.एफ. ब्राउन के अनुसार -

''संस्कृति किसी समुदाय के सम्पूर्ण व्यवहार का एक ढ़ांचा है जो अंशतः भौतिक

1. वैज्ञानिक यथार्थवादी शिक्षा की विशेषताएं - तथैव - पृष्ठ - 204

2. वैज्ञानिक यथार्थवादी शिक्षा की विशेषताएं - तथैव - पृष्ठ - 205

पर्यावरण से अनुकूलित रहता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार का हो सकता है किन्तु प्रमख रूप से यह ढ़ांचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा अनुकूलित होता है जिसका विकास समूह द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता है।''1

''मानवीय चेतना एवं कर्म का कोई अन्याय संस्कृति के बाहर नहीं है।''

''संस्कृति ही किसी राष्ट्रीय समाज की पहचान का आधार होती है।''

''आज राष्ट्रीय और मानवीय दृष्टियों से आवश्यक हो गया है कि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों का विचार करके चलें।''2

अतः शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा राष्ट्रीय संस्कृति की अभिव्यक्ति हो सकें तथा उसका संरक्षण और संवर्धन करके नवनिमार्ण की दिशा में बढ़ा जा सकें।

''हमारी जीवन पद्धति हमारा मार्गदर्शन करने के लिए विद्यमान है यह सही है कि हम हजारों वर्षों के इतिहास को जैसा का जैसा लेकर नहीं चल सकते तथापि हमारी जीवन पद्धति के जो मूलतत्व हैं उन्हें भुलाकर भी हम नहीं चल सकते। नूतन सूझबूझा और पुरातन गुण गरिमा का मणिकांचन संयोग उपस्थित करके चलना होगा। आधुनिक कार्य योजना और पुरातन सन्दर्भ लेकर नवनिर्माण के चरण बढ़ाने होंगे।''3

1. एकात्म मानव वाद — पृष्ठ – 18
2. शिक्षा के दार्शनिक सिद्वान्त, शिक्षा और संस्कृति — पृष्ठ – 426
3. तथैव – — पृष्ठ 426

(ख) शिक्षा और पाठ्यक्रम -

स्वतन्त्रता के पश्चात् जितनी गम्भीरता के साथ देश के लए यथेष्ट दिशा की खोज की जानी चाहिए थी उतनी गम्भीरतापूर्वक इस दिशा में विचार नहीं किया गया। अंग्रेजी शासन समाप्त होने के तुरन्त बाद हमार देश की राजनीति, समाज व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था में स्वदेशीपन का भाव जाग्रत होना चाहिए था तथा विदेशियत के प्रभाव को समाप्त हो जाना चाहिए था लेकिन स्वतन्त्रता के बाद हमें विदेशियत के प्रभाव का समाप्त हो जाना चाहिए था लेकिन स्वतन्त्रता के बाद हमें विदेशियत की ललक ने परतन्त्रता के काल खण्ड से भी ज्यादा पागल बना दिया, विदेशियों की वेश-भूषा, रीतिरिवाज, नीति व्यवस्था, राज्य व्यवस्था हमारे जीवनादर्श बन गए। विदेशियत ने भारत के मानस का ऐसा दबोचा कि उसे अपना बोध नहीं रहा। राज्य व्यवस्था के लिए यूरोप, समाज व्यवस्था के लिए रूस, विज्ञान व्यवस्था के लिए अमेरिका और जर्मनी की ओर ललचाई निगाहों से देखने लगे। विदेशी शिक्षा दृष्टि में भारत को वैचारिक शून्यता की स्थिति पर ला खड़ा किया। उस शिक्षा ने, जिस शिक्षा के जन्मदाता लार्ड मैकाले ने कहा था कि -

''हमें भारत में एक ऐसा वर्ग निर्माण करना है जो रक्त और वर्ण से भारतीय हों किन्तु रूचियों विचारों नैतिक आदर्शो तथा बुद्धि में अंग्रेज हो।'' 1

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का पंगु कर दिया। वेद, उपनिषद, स्मृति गीता, रामायण, महाभरत, वाल्मीकि व्यास, याज्ञवल्क, पाराशर, मनु, चाणक्य, तुलसी अरविन्द और गांधी सब व्यर्थ सिद्ध हुए। मिल्स एडमस्मिथ, मार्क्स एनिजल्य के वचन प्रमाण माने जाने लगे। 2

स्वतन्त्रता भारत ने परतन्त्रता के ढांचे का ही स्वीकार कर लिया इतना ही नहीं अपने मन और मस्तिष्क को भी उसी में रमा दिया। स्वतन्त्रता के पूर्व दासता के काल खण्ड में हम दास बने विदेशी भावना से सिर से पैर तक सराबोर हो गए ।

१. मैकाले का विवरण पत्र १८३५

2 राष्ट्रजीवन की दिशा पृष्ठ - 25

दूसरे राष्ट्र भी हैं जिन्होंने पिछले एक हजार वर्ष में अभूतपूर्व उन्नति की है , हमारा सम्पूर्ण ध्यान तो अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ने तथा अपनी रक्षा के प्रयत्नों में ही लगा रहा है। विश्व की इस प्रगति में हम सहभागी नहीं हो सके। अब जब हम स्वतन्त्र हो गए है तो क्या हमारा कर्तव्य नहीं हो जाता कि हम अपनी इस कमी को शीघ्रतिशीघ्र पूरा करके विश्व के इन प्रगतिशील देशों के साथ खड़े हो जाए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति कर लेना ही हमारा ध्येय नहीं था। स्वतन्त्रता के बाद हमें मानव की प्रगति में योगदान करने के योग्य बनना चाहिए था।

''हमको विचार करना होगा कि अंग्रेजों के चले जाने मात्र से तो हमारे ध्येय की सिद्धि नहीं हो गयी वह तो हमारे मार्ग कें एक बाधा थी और आज वह दूर हो गयी है। किन्तु अभी भी मानव प्रगति में हमें सहायता करनी है।'' 1

'' हमारी आत्मा ने अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोह केवल इसलिए नहीं किया था कि दिल्ली में बैठकर राज्य करने वाला एक अंग्रेज था अपितु इसलिए भी कि हमारे दिन प्रति दिन के जीवन में हमारे जीवन की गति में विदेशी पद्धतियों और रीति रिवाज विदेश दृष्टिकोण और आदर्श अडगा लगा रहे थे। हमारे सम्पूर्ण वातावरण को दूषित कर रहे थे।'' 2

डा0 महेश चन्द्र शर्मा ने उपरोक्त मानवीय समस्याओं को चार भागों में विभाजित करते हुये कहा है-

''सार रूप से इन प्रश्नों को चार भागों में बांट सकते हैं-

1 प्रकृति जन्य विरोधाभासों में सामज्जस्य की समस्या।

2 समाजशास्त्रीय विकृतियों से मुक्त मानवीय व्यवस्था के सुनिश्चिति की समस्या

3 भारतीय परिस्थिति में अन्तर्निहित विरोधाभासों की समस्या।

4 'विश्व राज्य' व 'मानव धर्म' के स्थापना की समस्या।

1. शिक्षा के सिद्वान्त, शिक्षा व संस्कृति, पाठक एवं त्यागी — पृष्ठ – 335

2. दार्शनिक अभिधरणाएं 'संस्कृति', डॉ. महेश चन्द्र शर्मा — पृष्ठ – 335

शिक्षा की दृष्टी से पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। पाठ्यक्रम के अभाव में शिक्षा उद्देश्यहीन एवं अव्यवस्थित ही रहती है। अत: शिक्षा के द्वारा निर्दिष्ट मानवीय मूल्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम को अति आवश्यक माध्यम के रूप में महत्व प्राप्त है।

''पाठ्यक्रम की आधुनिक धारणा विस्तृत है इसके अन्दर कक्षा के अन्दर जो भी अनुभव छात्र प्राप्त करता है वह तो सम्मिलित है ही साथ ही कक्षा के बाहर का अनुभव भी शामिल है। सभी बौद्धिक विषय विविध कौशल अनेकानेक कार्य पढ़ना, लिखना,शिल्प, खेलकूद आदि क्रियाकलाप पाठ्यक्रम के क्षेत्र के अन्तर्गत हैं।......... कक्षा पुस्तकालय प्रयोगशाला क्रीड़ा क्षेत्र और विद्यालय प्रागंण में प्राप्त किये जाने वाले समस्त अनुभवों को अपने आंचल समेट लेता है और वैयक्तिक तथा सामाजिक क्षेत्रों क सभी उद्योगों व्यवसायों कौशलों एवं अभिवृत्तियों को अपनी परिधि मे समेट लेता है।......... इसी माध्यम से हम जीवनादर्शों की प्राप्ति का प्रयास करते हैं।'' माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पाठयक्रम की परिभाषा करते हुए लिखा है।

''पाठयक्रम का अर्थ न केवल उन सैद्धानितक उन विषयों है जो स्कूल मे पराम्परागत रूप से पढ़ाये जाते हैं वरन् इसमें अनुभवों की वह सम्पूर्णता भी सम्मिलित हैं जिनकों बालक स्कूल कक्षा प्रयोगशाला कार्यशाला तथा खेल के मैदान में एवं शिक्षकों और छात्रों के अनगिनत औपचारिक सम्पर्को से प्राप्त करता हे और इस प्रकार स्कूल का सम्पूर्ण जीवन पाठयक्रम बन जाता है जो छात्रों के सभी पक्षों का प्रभावित कर सकता है तथा विकास में सहयता दे सकता है।''

पाठयक्रम की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध विद्धान मुनरो ने कहा है -

''पाठयक्रम मे वे समस्त अनुभव निहित हैं जिनको विद्यालय द्वारा शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है।''

तथा फ्रावेल के अनुसार -

''पाठयक्रम को मानव जाति के सम्पूर्ण ज्ञान तथा अनुभव का सार समझना चाहिए।''

आज हमारे जीवन में अनेकानेक विकृतियां दुष्टिगोचर हो रही हैं। जीवन के प्रति अतिशत अर्थवादी दुष्टिकोण के कारण यह विकृतियां विकराल रूप धारण करती जा रही हैं और समाज जीवन जर्जर होता चला जा रहा है। ''सर्वेगुणा: काञ्चनमाश्रन्ति'' का भाव सर्वत्र व्याप्त है। पैसा ही प्रतिष्ठा का आधार बन गया है। उत्तम चरित्र नैतिकता एवं योग्यता व्यक्ति की प्रतिष्ठा के आधार नहीं रहे। शिक्षा भी अर्थोत्पादक दृष्टिकोण व्यापार का साधन बनती जा रही है। अत: इस प्रकार के दृष्टिकोण को बदलने की महती आवश्यकता है और इस दृष्टिकोण का परिवर्तन भारतीय संस्कृति के आधार पर ही संभव है।

''पश्चिम का उपभोक्तावाद तो सम्पूर्ण मानव मात्र के अस्तित्व के लिए ही चुनौती है अर्थ प्रधान चिन्तन व जीवन ने भारतीय समाज को जर्जर कर डाला है हमारी राजकीय प्रणाली आर्थिक नीतियां सामाजिक विद्वेषमूलक तनाव शिक्षा के नाम पर चलने वाला व्यापार न्याय के आस्तीन में पलने वाले अन्याय व शोषण के विषधर आदि अब मिलकर हमारे भविष्य पर ही प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं।

अंग्रेजों की कुटिल नीति के कारण अंग्रेजियत के मोह में फंसे हुए युवकों में अपने ध र्म, संस्कृति एवं जीवन मूल्यों के प्रति तिरस्कार की भावना भर गयी है। वे अपनी चाल में सफल हुए हैं। अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारत में बहुत बड़ी संख्या में अपने मानस पुत्रों का निर्माण करके हमरी भारतीय संस्कृति को चिढ़ा रहे हैं। परिणाम स्वरूप भारतीय जनमानस विनाश के कगार पर आ खड़ा हुआ है। कुछ विद्धानों के अनुसार वर्तमान शिक्षा न 'भारतीय है न शिक्षा'। प्रत्येक राष्ट्र का भविष्य उसकी शिक्षा व्यवस्था पर निर्भर है।

अत: आज सभी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं। गैर सरकारी क्षेत्रों जैसे 'विद्या भारती' आदि संगठनों ने इस दिशा में प्रयास प्रारम्भ किए हैं। वर्तमान में प्रचलित शिक्षा प्रद्धति के विकल्प के रूप में भारतीय शिक्षा पद्धति के विकास हेतु देश में चिन्तन चल पड़ा है।

अत: शोधकर्ता का मत है कि शिक्षण को ही बदलना होगा क्योंकि पुराना आदमी जैसा है वह पुरानी शिक्षा की वजह से है नया आदमी जैसा होगा वह नई शिक्षा वजह से होगा।

क्योंकि यह पाजटिव शिक्षा हुई हम तुमसे कहते हैं गीता सत्य ग्रंथ है हम कहते हैं बाइबल ही असली ग्रंथ है। हम तुम्हें जो देते हैं उसे श्रद्धा पूर्वक मान लो।

हमें यह चाहिए कि बच्चे को सोचने की क्षमता का अवसर प्रदान करें उसे स्यमं चिन्तन करने दें ऐसी शिक्षा जो सिद्धान्त न देती हो।

मेरा मानना है कि निषेध सिखाओं और विधेय पर उसे खुद पहुंचने दो।

प्रज्ञा और समाधि

मनुष्य बहु आयामी है हम उसके एक आयाम को स्वीकार कर सकते है और दूसरे आयामों को इनकार कर सकते हैं सच तो यह है कि यह तर्क के अनुकूल पड़ता है क्योंकि उसके खण्ड एक दूसरे के विपरीत मालूम पड़ते हैं। जैसे मस्तिष्क है वह तर्क से जाना जाता है और हृदय है वह भाव से, जिन्होने मस्तिष्क को स्वीकार किया उन्हें अनवार्य रूपेण उनके ही तर्क की नियति के अनुसार भाव को अस्वीकार कर देना पड़ेगा।

लेकिन मनुष्य अगर केवल मस्तिष्क ही रह जाये जिसमें महक के फूल न खिलते हों केवल गणित और केवल भाव और केवल हिसाब ही लगता हो तो वैसा मनुष्य यंत्र वत होगा। वैसे मनुष्य के हृदय में नृत्य नहीं हो सकता। तो वैसा मनुष्य धन कमायेगा पद प्रतिष्ठा कमायेगा बहुत कुशल होगा क्योंकि भाव से उसकी कुशलता में बाधा पैदा हो सकती थी वह बाधा नहीं पड़ेगी लेकिन उसकी आंखे सूखी होगी उसकी आंखों में कभी आहलाद का या विसाद का कोई भाव प्रगट नहीं होगा और उसका हृदय एक मरूस्थल होगा। जिसमें कोई हरियाली नहीं, पक्षी गीत नहीं गायेगें। और ऐसे व्यक्ति की दृष्टि बड़ी संकुचित होगी वह पदार्थ के अतिरिक्त कुछ स्वीकार नहीं करेगा। क्योकि पदार्थ के अलावा उसकी पकड़ में कुछ नहीं आयेगा। मस्तिष्क के तराजू में जो तौला जाता है उसका नाम ही पदार्थ है।''

वह वाह्य को देख लेगा लेकिन अन्दर झांकने की क्षमता को खो देगा। और अपने को जानने की बात भूल जायेगा। उसकी गति ऐसी होगी जैसी पंचतंत्र की कहानियों में होती है। 1

दस अन्धों ने नदी पार की नदी पूरे पर थी सोचा गिनती कर लें कोई नदी में बह न गया हो और उन्होंने गिनती की और फिर वे दसों रोने लगे क्योंकि गिनती नौ तक जाती और खत्म हो जाती प्रत्येक गिनने वाला अपने को छोड़ देता।

मस्तिष्क की वही भूल है वह सब को गिन लेता है अपने को छोड़ देता हैं। जैसे चशमा सबको देख लेता है अपने को नहीं देख पाता ।

1 **शिक्षा और जागरण   सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व   पृष्ठ 6**

आँख सबको देखेती है पर अपने का नही देख पाती आँख को देखने के लिए दर्पण चाहिए जो अपने को देख सके उसी दर्पण का नाम प्रज्ञा है।

प्रज्ञा तुम्हें अपनी झलक दिखाती है, प्रज्ञा अपनी सुगन्ध देती है, प्रज्ञा तुम्हारे अपने भीटर का अतिरेक है भाव की तरंग है प्रज्ञा अपना साक्षात्कार है जैसे काव्य से रहित मनुष्य ठीक अर्थों मे मनुष्य नहीं है उसकी मनुष्य होने की सम्भावना थी मगर वह चूक गया। और आज यह दुर्भाग्य गहन हो गया है, क्योंकि विज्ञान की शिक्षा तो हम देते हैं। हम प्रत्येक व्यक्ति को सन्देह में कुशल बनाते हैं सोच और विचार में निष्णात करते हैं। स्कूल से लेकर विश्व विद्यालय तक पच्चीस वर्ष जीवन का एक तिहाई हिस्सा हम गणित, तर्क, के शिक्षण में व्यतीत करवाते हैं। स्वभावतः फिर अगर पदार्थ के सिवाय कुछ न दिखता हो तो आश्चर्य नहीं है, फिर देह ही दिखाई पड़ती है आत्मा का दर्शन नही होता संसार दिखाई पड़ता है। और परमात्मा की कोई प्रतीत दिखाई नहीं पड़ती फिर लगता है परमात्मा कोई पागलों की बात है या छोटे बच्चों की कल्पना है या कि सपना है लेकिन सत्य नहीं।'' 1

इसी तरह समाधि के बिना तुम्हारे जीवन में वह जो दृश्य और अदृश्य के बीच का सेतु है निर्मित नहीं होगा समाधि से मेरा अर्थ है दृश्य और अदृश्य के बीच एक सेतु एक इन्द्रधनुष जो पृथ्वी से आकाश को जोड़ देता है।

जो द्वंद को गिरा देता है जो दो किनारों को नही रहने देता एक कर देता है। और काव्य से मेरा अर्थ इतना ही नहीं है जितना साधारणतया समझा जाता है, काव्य में भी वह सब सम्मलित है जो तर्क से नहीं जन्मता फिर चाहे संगीत हो या फिर चाहे नृत्य हो चाहे मूर्तिकला हो जो भी तर्क के अनुसार नही पैदा होता वही काव्य है वही प्रज्ञा है वही समाधि है।'' 2

चेतना की सूक्ष्म वाणी सबके पास है, लेकिन हम व्यवस्थित रूप से बहरे बन गये हैं। दूसरे के अनुगमन से प्रत्येक व्यक्ति स्यमं को इतना दीन बना देता है कि वह स्यमं का ही सुनने जानने और मानने में असमर्थ हो जाता है। और फिर स्वभावतः उस ऐसे नकली और थोथे

1 शिक्षा और विद्रोह सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ - 182

2 तथैव पृष्ठ - 183

जीवन को जन्म देता है, जो कि मृत्यु से भी ज्यादा मृत होता है कंठ हमारा और वाणी दूसरे की, बुद्धि हमारी और विचार दूसरे के, समाज व्यक्ति को सब भांति नष्ट करता है और प्रत्येक की आत्मा पर कब्जा करना चाहती है। इसलिए क्रमशः भीतर डूबने का नाम समाधि है शान्ति के क्षणों में अपने आप को सुनने का नाम समाधि है और स्यमं को पा लेना प्रभु के मंदिर को पा लेना है। बच्चों को ध्यान की दीक्षा मिलनी चाहिए। कैसे मौन हों, कैसे शान्त सकते हैं, चौबीस घण्टे में एक घण्टा अगर बच्चों को मोन में ले जाने की व्यवस्था हो, निश्चित ही वह मौन में तभी ले जाये जा सकेंगे जब आप भी उनके साथ मौन में बैठें हर घर में मौन का एक घण्टा अनवार्य होना चाहिए एक दिन खाना न मिले घर में तो चल सकता है लेकिन एक घण्टे का मौन चौहद वर्षों में वह दरवाजें तोड़ देना जिसका नाम ध्यान है। जिस ध्यान से मनुष्य को समय हीनता, टाइमलेसनेस अहंकार, सयंम का अनुभव होता है जहां से आत्मा की झलक मिलती है। वह झलक सेक्स के अनुभव से पहले ही मिल जानी चाहिए अगर वह झलक मिल जाये तो सेक्स के प्रति अतिसय दौड़ समाप्त हो जायेगी। ऊर्जा अन्य मार्ग से बहने लगेगी यह समाधि का ही एक चरण है। बृम्हचर्य की साधना में सेक्स के ऊपर उठने की साधना में सेक्स की ऊर्जा के ट्रासफार्मेसन के लिए पहला चरण है ध्यान और दूसरा चरण है प्रेम।''

एक वैज्ञानिक दृष्टि

विज्ञान पैदा होता है चिन्तना से चिन्तना पैदा होती है, संदेह से संदेह पैदा होता है जिज्ञासा की शिक्षा से।

तो जिज्ञासा की शिक्षा चाहिए कि बच्चे पूंछ सकें बच्चें पूंछते हैं, क्योंकि हर बच्चा सन्देह लेकर पैदा होता है। सन्देह परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है। हर बच्चे में परमात्मा सन्देह का बीज रोपता है क्योंकि सन्देह के बीज से ही ज्ञान का वृक्ष विकसित होता है।

लेकिन समाज ज्ञान नहीं चाहता समाज अज्ञानी लोगों की भीड़ चाहता है पुरोहित, धर्मगुरू, राजनेता सब तरह के शोषक वे सब चाहते हैं कि भीड़ अज्ञानी हो, क्योंकि जिस दिन ज्ञान विस्तीर्ण होगा उसी दिन बगावत शुरू हो जायेगी। भगवान तो हर आदमी में सन्देह उत्पन्न करता है बच्चा तो जन्म से ही संदेह करने लगता है। वह पूंछता है ऐसा क्यों है? यह वृक्ष हरा क्यों होता हैं? यह सब दुनिया कहाँ से आई? चाँद कितना दूर है, चाँद को हम हाँथ में ले सकते हैं कि नहीं ले सकते और बाप डांट-डांट कर कहता है चुप रहों बकवास बंद करों हम जानते हैं तुम अभी कुछ नही जानते हम जो कहते है वही ठीक है बच्चे की जिज्ञासा की हत्या की जाती है फिर विज्ञान कैसे पैदा होगा। फिर विज्ञान पैदा नहीं होगा, बच्चे की जिज्ञासा बढ़ाई जानी चाहिए लेकिन धर्म गुरू सदैव से ज्ञान के दुश्मन रहे हैं।

हिन्दुस्तान में कितने हजारों साल से शूद्र रहे हैं। करोड़ो शूद्र हैं लेकिन कोई बगावत नही हो सकी। क्योंकि हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों ने बड़ी होशियारी से ज्ञान से शूद्रों कों वंचित कर दिया। जहां ज्ञान वंचित हुआ वहाँ बगावत नष्ट हो जाती है। शूद्र कोई वगावत नही कर सके उनको मूढ़ता में रखा गया।''

उन्हें पढ़ने का हक नहीं, पढ़ना तो दूर उन्हे धर्मशास्त्र सुनने का भी हक नहीं। गाँधी जी जिस रामराज्य के आने की चर्चा करते थे कहानी यह कहती है उन राम ने ही एक शूद्र के कान में सीसा पिघलवाकर डलवा दिया, क्योंकि उसने एक मकान के पास से

निकलते हुए देखा कि ऋषि वेद पढ़ रहे थे। उसने खड़े होकर वेद के वचन सुन लिए थे। यह पाप हैं। शूद्रों को ज्ञान का हक नहीं है। शूद्रों को ज्ञान का हक क्यों नहीं है। इसलिए नहीं है कि जिस दिन शूद्र को ज्ञान मिला उसी दिन उपद्रव हो जायेगा।''

उपद्रव शुरू हो गया है अग्रेजों ने शूद्रों को शिक्षा दी उपद्रव शुरू हो गया। डा0 अम्बेडकर भारत के पूरे हजारों साल के इतिहास में पहला शूद्र है जो ठीक से शिक्षित हुआ कोई शूद्र शिक्षित नहीं हो सका इसलिए शूद्रों की लम्बी कथा में कोई नाम नहीं हैं। वैज्ञानिक चिन्तन सारे जीवन के पहलुओं को बदल देगा। लेकिन वैज्ञानिक चिन्तन पैदा नहीं हो पाता और पैदा इसलिए नहीं हो पाता कि हमने उसकी मूल जड़ को ही काट दिया है, और हिन्तुस्तान में यह जड़ कभी थी भी। ऐसा आदमी नहीं मिलता जो सन्देह करता हो ओशो बताते हैं कि मेरी बातें सुनकर विश्वास आ गया, हम तो आपकी बात मानेंगें मुझे कहते हैं आप हमारे गुरू हो जाइये हद्द हो गयीं जो आदमी हमको विचार करने को कहे हम कहेगें चलो ठीक है तुम्हारी बात ही सही हम तुम्हारे प्रति अन्धे हुए जाते हैं। हम तुम्ही को मानेगें अगर हमें कोई सन्देह की बात भी सिखा दे तो हम उस पर भी विश्वास कर लेगें ऐसा लगता है कि सन्देह की कल्पना ही हमारे चित से जड़ से उखड़ गयी है।''

यह वैज्ञानिक चिन्तन पैदा करने में कौन बाधा देता है? सब तरह के स्वार्थ बाधा देते हैं। सब तरह के स्वार्थों का यही हित है कि मनुष्य कम से कम ज्ञानी हो, कम से कम शिक्षित, बिलकुल न जाने अन्जाना रहे। अनजाने आदमी पर सब तरह का शोषण है राजनैतिक शोषण है शिक्षा का शोषण है, गुरूओं का शोषण है, ज्ञानियों का शोषण है।

दुनिया के सब धर्म सिखाते हैं कि किसी दूसरे की बात मत सुनो ज्ञान कभी डरता नहीं है। अज्ञान सदा डरता है सोना कभी नहीं कहता कि मैं आग के अन्दर से नहीं निकलूगां क्योंकि मै जल जाऊंगा, लेकिन सोने के साथ जो कचरा लगा है, वह कहता है नहीं नहीं आग से मत गुजरना आग में बड़ी मुश्किल होती है, सब जल जाता है सोना तो निकल जाता है आग से कचरा जल जाता है। सोना निखर कर वाहर आ जाता है। सत्य को कोई सन्देह नहीं मिटा सकता।

सत्य के लिए विश्वास की कोई शिक्षा नहीं है सत्य के लिए शिक्षा है सन्देह की, और विज्ञान सत्य की तरफ जाने का मार्ग है और भगवान रजनीश कहते हैं धर्म भी विज्ञान है, धर्म अन्तः विज्ञान है वह 'साइंस आफ दि इनर' है वह जो भीतर है उसका विज्ञान है और हम जिसको विज्ञान कहते है वह वाहर का विज्ञान है। 'साइंस आफ द आउटर' जो बाहर फैला हुआ जगत है वह एक ही विज्ञान के दो पहलू हैं अगर बाहर कोई सन्देह पर खोज करेगा तो, जिसको हम साइंस कहते हैं उसका जन्म होता है। और अगर भीतर कोई सन्देह करेगा खोज करेगा तो जिसे मैं धर्म कहता हूँ उसका जन्म होता है।

आप तो उसे धर्म कहते हैं जिसे अंधा होकर मानना पड़ता है जिसकी खोज महावीर पहले कर चुके हैं। जिसकी खोज पहले बुद्ध कर चुके हैं उसको मान लेना पड़ता है ऐसा धर्म अवैज्ञानिक है और ऐसे धर्म के लिए विश्वास की शिक्षा जरूरी है इसलिए धार्मिक मुल्क वैज्ञानिक नही हो पाते हैं। मेरी दृष्टि में तो वे वैज्ञानिक नहीं है, वे धार्मिक नहीं हैं, झूठा है उनका धर्म।'' 1

भारत जैसा देश वैज्ञानिक नही हो पाता क्योंकि भारत जैसे देश के मन में झूठे धर्म की प्रतिष्ठा है। विज्ञान का जन्म कैसे होगा झूठे धर्म को जानना पड़ेगा विज्ञान आयेगा और विज्ञान के साथ धर्म भी आयेगा। जो धर्म विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता हो वह धर्म कैसे सच्चा हो सकता है, कसौटी सदा वैज्ञानिक तर्क है, कसौटी तो सदा वैज्ञानिक चिन्तन है, कसौटी सदा तर्क है, कसौटी सदा सन्देह की अग्नि है।'' 2

ऐसा नही है कि पश्चिम में सब वैज्ञानिक है पश्चिम में भी थोड़े से लोगों ने मिलकर विज्ञान को जन्म दिया है। अधिकतर जनता वहाँ भी उतनी ही अवैज्ञानिक है जितनी यहाँ है। इसीलिए तो यहाँ के योगी महाराजों के पीछे वहाँ पागल इकट्ठे हो जाते हैं। नही तो कहाँ से इकट्ठे हो जाते हैं। वह भीड़ किन लोगों की है? वह किन्हीं वैज्ञानिको की भीड़ नहीं है लेकिन सफेद चमड़ी का असर बहुत है दो चार सफेद चमड़ी के पागलों को लेकर इस मुल्क में आ जाओं तो महायोगी बनने में देर नहीं लगती। असल में सफेद चमड़ी के हम इतने दिन गुलाम रहे हैं कि हमने सफेद चमड़ी में भी कोई सुपीरियारिटी स्वीकार कर ली

1. ओशो टाइम्स – दिसम्बर 2001 – सम्पादक – आनन्द मैत्रेय पृष्ठ 12

2. तथैव पृष्ठ 13

है। सफेद चमड़ी होना भी कोई बात है तो अगर चार पश्चिम के पगले किसी आदमी के पीछे चले आये तो मुझे मेरे मित्र सुझाव देते है कि आप यहाँ मेहनत न करें, पहले आप पश्चिम चले जाइये वहाँ से पच्चीस आपके साथ आयें कि यहाँ अच्छा परिणाम होगा।'' 1

भारत के मानस में वह क्रांति पैदा नहीं हो पाई जिससे विज्ञान जन्में पश्चिम में थोड़े से मनुष्य वैज्ञानिक हुए हैं। और उन थोड़े से लोगों ने जिन्होंने पश्चिम में विज्ञान को जन्म दिया बहुत तकलीफ उठानी पड़ी। हिन्दुस्तान में कोई तकलीफ उठाने को तैयार नहीं हैं। हिन्दुस्तान की इतनी पुरानी व्यवस्था हो गयी है, जिसमें अगर कोई सुख और शान्ती से जीता हो तो बिना किसी बात को छेड़े जो कहा गया हो उसे ठीक कहने से बड़ा आराम होता है।'' 2

इस मुल्क के शिक्षक को जरा भी क्रांति की ओर लें जाने को कहें तो वह क्रोध से भर जाता है।

ऐसा ही पश्चिम में भी हुआ। तीन सौ साल में पश्चिम के थोड़े से लोगों ने जितनी तपस्या की हमारे हिन्दुस्तान के सारे ऋषि मुनियों ने मिलकर नहीं की। वे थोड़े से लोग वे नहीं है जो झाड़ी के नीचे बैठे हैं। वे थोड़े से लोग हैं जिन्होंने पश्चिम की हजारों साल की मानसिक गुलामी को वैज्ञानिक चिंतन से तोड़ने की कोशिश की। तीन सौ वर्षों में उन लोगों ने जो तप किया वह तप का फल सारी दुनिया भोग रही है। सारी दुनिया को उससे सुख मिल रहा है। लेकिन कुछ लोगों ने बहुत दुख भोगा है। गैलिलियो ने जब पहली बार कहा कि पृथ्वी चक्कर लगाती है सूरज का, सूरज नहीं लगाता है तो सारा पश्चिम पागल हो गया और गैलिलियो को हथकड़ी डाल कर ले गये कि तुम क्षमा मांगों तुमने गलत बात कही है। क्योंकि बाइबिल में तो लिखा है कि पृथ्वी का चक्कर तो सूरज लगाता है तुम लिखित मांफी मांगो। वह बूढ़ा आदमी हंसा और उसने कागज पर लिखा कि तुम कहते हो तो मान लेता हूं कि सूरज भी चक्कर लगाता होगा लेकिन मैं क्या करूं, जब पृथ्वी ही चक्कर लगाती है।''

यह तीन सौ वर्षों में थोड़े से लोगों को हिम्मत किस बात की करनी पड़ी आदर छोड़ने

1. **ओशो टाइम्स – दिसम्बर 2001 – सम्पादक – आनन्द मत्रेय** **पृष्ठ 14**
2. **ओशो टाइम्स – दिसम्बर 2001 – सम्पादक – आनन्द मैत्रेय** **पृष्ठ 15**

की भारत के विचारक आदर छोड़ने की हिम्मत कर पाते। मकान छोड़ना आसान है, हिन्दुस्तान में बेवकूफियों को मान लेने से आदर मिलता है। हिन्दुस्तान ने एक व्यवस्था कर रखी है जो तुम्हारी बेवकूफी को माने उसे आदर दो। और जो तुम्हारी बेवकूफियों को इन्कार कर दे उसे आदर देना छोड़ दो और हिन्दुस्तान में इतने हिम्मतवर विचारक नहीं है जो आदर की चिन्ता न करें। चाहे अनादर मिले चाहे फांसी की सजा।''

असत्य के लिए तो सभी बलिदान हो चुके मुसलमानों के लिए बलिदान हो चुके हिन्दुओं के लिए बलिदान हो चुके यह सब असत्य के लिए बलिदान थे। सत्य के लिए बलिदान मुश्किल से होते हैं। और सत्य के लिए बलिदान अगर न हो सका, तो विज्ञान का जन्म नहीं हो सकेगा। कुछ लोगों को हिम्मत जुटानी पड़ेगी। कुछ लोगों को सारे सम्मान सारे आदर की चिंता छोड़नी पड़ेगी, अपमानित होने के लिए तैयार होना पड़ेगा और अगर यह नहीं होता तो कैसे विज्ञान का जन्म होगा। बच्चों को सन्देह की शिक्षा देनी पड़ेगी।

ये एक हवा पैदा करनी पड़ेगी जिसमें हर बच्चा कह सके कि मैं जानता हूं, यह मैं नहीं जानता हूं। वह भी अभी तक जितना ज्ञान है मेरा उस हिसाब से कहता हूं कि कल ज्ञान बदल जायेगा बढ़ जायेगा तो मैं जो जानता हूं उसका दावा नहीं करूंगा।

अतः विचार करने की बात है कि हम अपनी नासमझी को बढ़ावा न दें जब तक किसी बात को ठीक से समझ सकें। तब तक उस बात को स्वीकार न करें, तो ही विज्ञान का जन्म हो सकता है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।''

1. सम्भोग से समाधि तक – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ – 75–78

शिक्षा और जागरण

"वृतं यत्नेत् संरक्षेत् वित्तमायाति याति च

अक्षीणों वित्ततः क्षीणो, वृतस्तस्तु हतो हतः।।"

भारतीय संस्कृति के अनुसार चरित्र की रक्षा यत्नपूर्वक की जानी चाहिए। धन तो आता है और चला जाता है जिसका धन नष्ट हो जाता है उसका कुछ भी नष्ट नहीं होता लेकिन जिसका चरित्र नष्ट हो जाता वह मरे हुए के समान हो जाता है।

पाश्चात्य संस्कृति में भी सच्चचरित्रता का समर्थन करते हुए कहा है कि शिक्षा के द्वारा मनुष्य का चरित्र निर्माण किया जाना चाहिए। प्लेटो ने कहा है कि -

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो अच्छी आदतों के द्वारा बच्चों में अच्छी नैतिकता का विकास करती है।"

स्वामी विवेकानन्द ने चारित्रिक विकास को ही शिक्षा का मुख्य कार्य स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है -

"हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।

"जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवनसंग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र बल, परमहित भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है वही शिक्षा है।"1

गाँधी जी ने अपने एक भाषण में कहा था -

"मैं अनुभव करता हूं कि सारे जीवन में अनुभव किया है कि संसार के सभी देशों को केवल चरित्र की आवश्यकता है और चरित्र से कम किसी वस्तु की आवश्कता नहीं।"

चारित्रिक विकास पर जोर देते हुए भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन ने कहा है-

1. नये भारत की खोज सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ – 43

"चरित्र भाग्य है। चरित्र वह वस्तु है, जिसपर राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है। तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।"1

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए हरबर्ट ने 'चरित्र निर्माण' को शिक्षा के ध्यये के रूप में स्वीकार किया उसने केंद्रीय विषय में इतिहास का प्रतिपादन किया। इतिहास में महापुरूषों की कथाओं के द्वारा हरबर्ट विद्यार्थियों में चरित्र का निर्माण करना चाहता है।

चरित्र है क्या? इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक 'शापर हावर' ने कहा है कि–

" जिस आचरण को समाज मान्यता प्रदान करे तथा जिस पर किसी का प्रतिबन्ध न हो उसे शुद्धाचरण या चरित्र कहा जाएगा।"

चरित्र के दो अंग हैं सदाचार और नैतिकता। सदाचार का संबंध सामाजिक आचार विचार से है। नैतिकता का संबंध आध्यात्मिकता से है। दोनों में से किसी एक की उपेक्षा करने से चरित्र एकागी हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द ने चरित्र को पारिभाषित करते हुए कहा है कि–

"मनुष्य का चरित्र उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों का समूह है, उसके मन के समस्त झुकावों का योग है हमारा प्रत्येक कार्य हमारे शरीर की गतिविधियों हमारा प्रत्येक विचार मन पर एक संस्कार छोड़ देता है, ये संस्कार ऊपरी दृष्टि से अस्पष्ट होते हुए भी अज्ञात रूप से भीतर ही भीतर कार्य करने में विशेष रूप से प्रबल होते हैं हमारी प्रत्येक क्रिया इन संस्कारों द्वारा नियमित होती है। मन के इन संस्कारों का समूह चरित्र है।"2

चरित्र के दो पक्ष बताए गये हैं व्यक्तिगत चरित्र एवं समाजिक या राष्ट्रीय चरित्र,

व्यक्तिगत रूप से अपने अंदर गुण सम्पादन करना व्यक्तिगत चरित्र की श्रेणी में आयेगा। मेरे किसी कार्य से समाज या राष्ट्र को हानि न पहुंचे मेरे काम राष्ट्र की समृद्धि करने

1. नये भारत की खोज – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व – पृष्ठ – 43
2. नये भारत की खोज – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व – पृष्ठ – 48

वाले हों - राष्ट्रीय चरित्र की श्रेणी में आएगा।

मुझे सुख मिले समाज चाहे दुःखी हो मैं भोग भोगूं, अन्यों को चाहे प्राणों की आहूति देनी पड़े, मेरा घर भरे दूसरे चाहे अन्नाभाव या वस्त्राभाव से तड़पते फिरें, यह राष्ट्रीय चरित्र का अभाव प्रदर्शित करता है। व्यक्तिगत चरित्र और राष्ट्रीय चरित्र दोनों एक दूसरे पर परस्पर आधारित होते हैं।

चरित्र के संबंध में पश्चिम का और भारतवर्ष का जो दृष्टिकोण है दोनों में महान अंतर है। पाश्चात्य दृष्टिकोण चरित्र के सामाजिक पक्ष पर ही बल देता है। समाज के लोगों के साथ सम्पर्क में अर्थात बाह्याचार में व्यक्ति का चरित्र अच्छा होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप से चाहे वह कुछ भी करे अर्थात मनुष्य के सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन में अंतर हो सकता है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन दोनों शुद्ध और पवित्र होना चाहिए। हम यह मानते हैं कि "चरित्र व्यक्ति की वह सम्पूर्ण आंतरिक शक्ति का तेज है जो उसके सारे व्यक्तित्व को प्रकाशित किये रहता है। इसमें व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों ही क्षेत्र आ जाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय दृष्टिकोण अधिक व्यापक है जबकि पाश्चात्य दृष्टिकोण संकुचित है। भारतीय संस्कृति के उपासक पण्डित दीनदयाल भी इसी मत से सहमत हैं। उन्होंने कहा है-

"सामूहिक जीवन के इन संस्कारों को मजबूत करना ही प्रगति का मार्ग है। प्रत्येक व्यक्ति 'मैं' और 'मेरा' विचार त्याग कर 'हम' और 'हमारा' विचार करें। अन्यथा कई बार देखा जाता है कि व्यक्ति कहता है कि राष्ट्र के लिए जान हाजिर है और जीवन में सब कार्य व्यक्ति का विचार करना ही करता रहता है। इसमें न व्यक्ति का भ्ला न समष्टि का। वास्तव में समष्टि के लिए कार्य करना याने धर्माचरण की भी शिक्षा होती है। उसमें भी संस्कार डालने होते हैं। इन संस्कारों को प्रदान करना ही राष्ट्र का संगठन करना है।"

"धीः विद्या सत्यम क्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्"

"बच्चे को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्म से मानव पशुवत पैदा होता है। शिक्षा और संस्कार से वह समाज का अभिन्न घटक बनता है।"

"शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। इन मूल्यों को बांध रखने के बाद लोकेच्छा की नहीं कभी अपने तटों का अतिक्रमण कर संकट का कारण नहीं बनेगी।"

"आज भारत जिस रोग से बुरी तरह ग्रस्त है वह है 'चरित्र का संकट' हमारे युवक आदर्शों को छोड़ते जा रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे एक तरह से शून्य में जी रहे हैं यही कारण है कि वे अज्ञात मंजिल की ओर उद्देश्यहीन एवं हिंसात्मक होकर घिसटते चले जा रहे हैं।"

विभिन्न आयोगों एवं समितियों ने भी 'चरित्र की शिक्षा' की चर्चा की है। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने धार्मिक नैतिक शिक्षा की अपेक्षा 'चरित्र की शिक्षा' पर बल दिया तथा सलाह दी कि-

"चरित्र निर्माण का कार्य एक प्रकार की प्रायोजना है जिसमें विद्यालय के हर शिक्षक को तथा विद्यालय के हर कार्यक्रम को बुद्धिमत्तापूर्ण सहयोग देना चाहिए चरित्र की शिक्षा का कार्यक्रम तब पूरा हो सकेगा जब घर, समाज तथा विद्यालय तीनों का वातावरण उपयुक्त होगा। तीनों को परस्पर एक दूसरे का सहयोग प्राप्त होगा।"

श्री प्रकाश समिति (1959) ने सुझाव दिया कि -

"शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर चरित्र निर्माण उदान्त संस्कार समाज सेवा की भावना तथा स्वदेश प्रेम उत्पन्न करने वाले कार्य तथा अध्ययन होते रहना चाहिए।"

भावात्मक एकता समिति 1962 में गठित हुई डा. सम्पूर्णानन्द इसके अध्यक्ष इस समिति ने भावात्मक एकता के विकास के लिए विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण आवश्यक माना और इसके लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक मानी भारतीय संस्कृति के मूल्यों का आंकलन

1. भगवान श्री रजनीश – नये भारत की खोज – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व – पृष्ठ – 50-51

2. तथैव

भी आवश्यक माना।

शिक्षा आयोग ने इस सन्दर्भ में लिखा है –

"आधुनिकीकरण का यह तात्पर्य नहीं है कि हमारे जीवन में नैतिक आध्यात्मिक एवं आत्मानुशासन में मूल्यों के निर्माण के महत्व को पहचानने से इंकार कर दिया जाए।"

शिक्षा के आधुनिकीकरण के कारण उसमें अनेकानेक दोष उत्पन्न हो गये हैं तथा 'चरित्र का संकट' तो एक महान दोष है इस शिक्षा को मात्र 'पुस्तकीय बोझ' की संज्ञा देते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है–

"शिक्षा का मतलब यह नहीं कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें ठूंस दी जाएं कि अन्तर्द्वन्द होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामान्जस्य कर सकें। वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पांच ही भावों को पचाकर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक जिसने एक पूरे पुस्तकालय को कंठस्थ कर रखा है। कहा भी है–

"यथा खरश्चन्दन भारवा ही भारस्यवेत्ता नतु चन्दनस्य।" अर्थात वह गधा जिसके ऊपर लकड़ियों का बोझ लाद दिया गया हो, बोझ ही जान सकता है चन्दन के मूल्य को नहीं। यदि इस तरह की जानकारियों का संग्रह करना ही शिक्षा है तब तो ये पुस्तकालय संसार में सर्वश्रेष्ठ मुनि हैं और विश्वकोष ही ऋषि।"1

अतः तमाम ढेर सारी पुस्तकों को पढ़कर परीक्षायें पास करके कोई विद्वान तो हो सकता है लेकिन चरित्रवान, प0वित्र, धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता है।

"उस वेदों के विद्वान से जिसका जीवन पवित्र नहीं है वह व्यक्ति कहीं अच्छा है जो सच्चरित्र है परन्तु वेदों का ज्ञान कम रखता है।"2

प्राचीन काल की शिक्षा व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य चरित्र निर्माण ही था चरित्रवान वयक्ति विद्वान की अपेछाकृत अधिक सम्मान का पात्र था वर्तमान समय में भी शिक्षा व्यवस्था का

1. **भगवान श्री रजनीश – नये भारत की खोज –**
   सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व **पृष्ठ – 52-53**
2. **तदैव** **पृष्ठ – 52-53**

ऐसा गठन होना चाहिए। "इस प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए। जिसके द्वारा ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण हो सके जो हिन्दुत्व निष्ठ एवं राष्ट्र भक्ति से ओत प्रोत हो। शारीरिक, प्राणिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण विकसित हो तथा जो जीवन की वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सके और उसका जीवन ग्रामीण वनवासी, गिरिकन्दराओं और झुग्गी झोपड़ियों में निवास करने वाने दीन दुःखी अभाव ग्रस्त अपने बान्धवों को सामाजिक कुरीतियों शोषण एवं अन्याय से मुक्त कराकर राष्ट्र जीवन को समरस, सुसम्पन्न एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए समर्पित हो।"1

"चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को कोई गड़ा खजाना खोदकर नहीं थमाया था वरन् ऐसा संकल्प बल उपलब्ध कराया था जिसके सहारे आक्रमणकारियों का मुंह तोड़कर चक्रवर्ती कहला सके थे।........... गांधी जी ने अपने प्रिय पात्र विनोबा जी को महान प्रयोजनों के लिए मर मिटने की भाव संवेदना प्रदान की थी। उनके सम्पर्क में आने वाले अन्य लोंगो ने भी जुझारू प्रतिभा पाई और अपने चरित्र तथा कर्तत्व से जनमानस में गहरी छाप छोड़ने में सफल हो सके।"

भगवान रजनीश तो जीवन में श्रेष्ठतर मूल्यों के बोध को ही शिक्षा मानते हैं इस परिभाषा के अंतर्गत वे गैर पढ़े लिखे लेकिन चरित्रवान् व्यक्ति को 'विद्यमान्' शिक्षित मानते हैं। उन्होंने कहा है-

"जिसे जीवन में श्रेष्ठतर मूल्यों का बोध हो जो निम्न मूल्यों को श्रेष्ठ मूल्यों के लिए समर्पित कर सके वही विद्यावान है................ क्या हम आज के लोगों को शिक्षित कह सकते हैं जिनकी सारी शिक्षा श्रेष्ठतर मूल्यों की हत्या करती हो और निम्नतर मूल्यों को आगे रखती हो? जो क्षुद्र के लिए विराट् को खो देने के लिए सदा तैयार हों? जो शरीर के लिए आत्मा बेच सकते हों? जिनके लिए धन के अतिरिक्त और कोई मूल्य नहीं है जिनके जीवन में पद के अतिरिक्त और कोई यात्रा नहीं है, जिनके जीवन में जिनके चित्त में व्यर्थ के अतिरिक्त सार्थक का कोई ध्यान नहीं उन सारे लोगों को विद्यावान कहा जा सकता है?"2

1. **भगवान श्री रजनीश – नये भारत की खोज**
   सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व **पृष्ठ – 55**
2. **तथैव – पृष्ठ – 55**

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी चन्द्रगुप्त पुस्तक में 'महापद्मानन्द' के लिए कहा है कि व्यसनी व्यक्ति राष्ट्र को भी बेंच देता है उसके लिए उसका अपना सुख वैभव, पद, प्रतिष्ठा ही सब कुछ है राष्ट्र कुछ नहीं वह अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए विराद् (राष्ट्र) को भी खो देने लिए तैयार रहता है। भारत भूमि में जन्म लेने वाले बालक की उत्तम शिक्षा व्यवस्था वही है जो चरित्र का निर्माण कर सके। ज्ञान संस्कृति और चरित्र के संगम से ही शिक्षा तीर्थराज प्रयाग बनती है। हमारे यहां पुस्तकीय ज्ञान को वास्तविक ज्ञान नहीं माना गया है। शास्त्रों का ज्ञान होने के बाद भी उसे शिक्षित या ज्ञानी नहीं माना गया है। अनुभूत ज्ञान को ही ज्ञान माना गया है।

''ज्ञान जब दैनंदिनी जीवन में आचरण का सहज स्वाभाविक ढंग से अभिन्न अंग बन जाता है उसे चरित्र कहते हैं। कथनी व करनी का भेद उज्जवल चरित्र सम्पन्न व्यक्ति में लुप्त हो जाता है।''

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा था-

''शिक्षे तुम्हारा नाश हो, जो नौकरी के हित बनी।'' अतः शिक्षा का अर्थ केवल रोजी रोटी कमाना नहीं तो श्रेष्ठ चरित्रवान व्यक्तियों का निर्माण होना चाहिए।

लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा के विकास के साथ चरित्र का ह्रास हो रहा है इसका मतलब यह हुआ कि हमारी शिक्षा में कहीं न कहीं कोई कमी अवश्य है।

इस संबंध में ओशो रजनीश का कहना है-

''विद्या पीठ बढ़ते हैं, पुस्तकें बढ़ती हैं, मैं सुनता हूँ कि कोई पांच हजार ग्रन्थ प्रति सप्ताह छप जाते हैं....... पांच हजार ग्रन्थ जिस दुनिया में प्रति सप्ताह छप जाते हों, रोज-रोज विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती चली जाती हो लेकिन वह दुनिया तो नीचे गिरती चली जाती हो.......... वहां युद्ध और घातक से घातक हुए चले जाते हों वहां घृणा तो और व्यापक हुई चली जाती हो, ईर्ष्या-जलन और तीव्र हुई चली जाती तो जरूर कहीं कोई बुनियाद में खराबी है और इस तरह खराबी का जिम्मा और किसी पर इतना ज्यादा नहीं है जितना उन

पर जिनका शिक्षा से संबंध है-चाहे वे शिक्षक हों, चाहे शिक्षार्थी हों।''

वर्तमान समय में हमें कैसी शिक्षा व्यवस्था समाज को देनी चाहिए जिसके द्वारा चरित्र निर्माण का कार्य किया जा सके? इस प्रश्न के उत्तर में महान विचारक श्री विनायक वासुदेव ने कहा है-

''शिक्षा का व्यापक प्रसार स्वागत करने योग्य है, किन्तु शिक्षा को केवल पेट पालने की विद्या का जो स्वरूप प्राप्त हो गया है, उसके कारण हमारे सामाजिक जीवन में कई समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। चरित्रवान्, तेजस्वी, धर्मज्ञ और जीवन में आत्म विश्वास के साथ पर्दापण करने वाला युवा वर्ग इन दिनों कहीं नहीं दिखाई देता।....... इस दृष्टि से पुरानी भारतीय शिक्षा प्रणाली की बाह्य बातें खोजकर आज की निर्जीव शिक्षा प्रणाली में प्राण फूंकने का प्रयास अपेक्षित है। संस्कृति भौतिकवाद और आध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करना चाहते हैं।''

हमारे देश के कुछ लोगों का यह कहना है कि भारत वर्ष तो आध्यात्मिक संस्कृति का देश है यहां भौतिकवाद को कभी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में ओशो रजनीश के कुछ विचार उल्लेखनीय हैं-

''भारत के इतिहास की बुनियादी भूल यह है कि हमने भौतिक को इंकार किया है और हमने सोंचा कि आध्यात्म कुछ भौतिक का विरोधी है। यह भूल ऐसी ही है जैसे कोई कहे जड़ें फूलों की विरोधी हैं – माना कि जड़ों के लिए आज तक किसी ने गीत नहीं गाया और यह भी माना कि जड़ों की आज तक किसी ने प्रशंसा नहीं की लेकिन ध्यान रहे, जड़ों के बिना इस जगत में एक भी फूल नहीं खिल सकता।........ फूलों को प्रेम करना ही फूलों को बचाने के लिए पर्याप्त नहीं है जड़ों को भी प्रेम करना पड़ता है।.............. मेरा कहना है भौतिकवाद जीवन का आधार बने आध्यात्म जीवन का शिखर न तो शिखर को इंकार करना उचित है न दुनिया को इंकार करना उचित है जीवन इकट्ठा है।

ओशो ने अपने अनेक भाषणों में कहा है कि जीवन के लिए आध्यात्म और भौतिकता दोनों आवश्यक है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है वह सम्पूर्ण जीवन का सम्पूर्ण सृष्टि का

संकलित विचार करती है। हमारे यहाँ कहा भी गया है कि-

''जो लोग केवल भौतिकवाद का विचार लेकर चलते हैं वे अंधकार को प्राप्त होते हैं जो केवल आध्यात्म को लेकर चलते हैं वे घोर अंधकार को प्राप्त होते हैं। पहले अर्थात् (भौतिकवाद) से मृत्यु को जीतना चाहिए और दूसरे (आध्यात्मवाद) से अमरता प्राप्त करनी चाहिए। शरीर के लिए भौतिक सुख तथा जीवन की सार्थकता के लिए आध्यात्मिक सुख चाहिए। वास्तव में भौतिक व आत्मिक सुख अलग नहीं है। कपड़े के ताने-बाने के समान परिगुम्फित हैं।

दीनदयाल जी ने भी भारतीय संस्कृति को भी उतना ही स्वीकार किया है जितना जीवन के विकास के लिए हितकर है रूढ़िवादिता या अंधविश्वास को नकारा है तथा भौतिकवाद को भी जीवन में आवश्यकताओं की पूर्ति भर के लिए स्वीकार किया है। किसी को भी सर्वस्व नहीं माना जैसा कि उनके विचारों से पता चलता है -

''हमने अपनी प्राचीन संस्कृति का विचार किया है लेकिन हम कोई पुरातत्ववेत्ता नहीं हैं। हम किसी पुरातत्व संग्रहालय के संरक्षक बनकर नहीं बैठना चाहते। हमारा ध्येय संस्कृति का संरक्षण नहीं है अपितु उसको गति देकर सजीव व सक्षम बनाना है। हमें अनेक रूढ़ियां समाप्त करनी होंगी, बहुत से सुधार करने होंगे।''

अतः प्राचीन भारतीय संस्कृति के नाम पर आंख बंद करके चलते जाना ओशो के जीवन में नहीं था और भौतिकवाद के नाम पर विलासिता के पूर्ण रूपेण विरोधी थे। जैसे उनका कहना था कि-

''जितनी भौतिक आवश्यकताएं हैं उनकी पूर्ति का महत्व हमने स्वीकार किया है परन्तु उन्हें सर्वस्व नहीं माना।''

भारतीय संस्कृति और हिन्दुत्व की पताका पूरे विश्व में फहराने के बाद शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन से वापस लौटकर स्वामी विवेकानन्द जी ने भारत में पुर्नजागरण का मंत्र फूंका। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों में कहा कि भारत की उन्नति के लिए हमें भारतीय

संस्कृति और पाश्चात्य भौतिकवाद का समन्वय करना पड़ेगा।

भारत भ्रमण करते हुए स्वामी जी ने भारत की संस्कृति समृद्धिता आध्यात्मिक समृद्धिता का साक्षात्कार किया था। अतः उनकी इच्छा थी कि यदि भारतीय संस्कृति और भौतिकवाद का समन्वय भारत में हो जाए तो निश्चित ही यह कार्य सोने में सुगन्ध जैसा सिद्ध होगा उन्होंने अपनी पुस्तक, शिक्षा और क्रांति में लिखा है कि-

''भारतीय धर्म के आधार पर क्या तुम यूरोप जैसा समाज बना सकते हो? मुझे विश्वास है कि यह सम्भव है और यह होना भी चाहिए।''

भारतीय संस्कृति और भौतिकवाद के समन्वय के लिए भारतीय जनता का आव्हान करते हुए उन्होंने कहा है-

''हमें निर्भीक होकर घर के सब दरवाजे खोल देने चाहिए ताकि संसार के चारों ओर से प्रकाश की किरणें आएं, पाश्चात्यों का तीव्र प्रकाश भी आए जो दुर्बल है दोषयुक्त है, उसका नाश होगा ही यदि वह चला जाता है तो जाए उसे रखकर क्या लाभ।''

उन्होंने कहा -

''इस दृष्टि से हमें अनेक रूढ़ियां समाप्त करनी होगी, बहुत से सुधार करने होंगे जो हमारे 'मानव' का विकास और राष्ट्र की एकात्मता की वृद्धि में पोषक हो वह हम करेंगे और जो बाधक होगा उसे हटाएंगे।''

''हम पश्चिम के चिन्तन का लाभ उठा सकते किंतु न तो हम उससे अभिभूत हों, न उसे ध्रुव सत्य मान कर चलें। यह देश और काल दोनों ही दृष्टियों से ठीक नहीं होगा।''

''हमें ज्ञान का आदान प्रदान विश्व के प्रत्येक देश से करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए पर ऐसा करते समय हमें अपने जीवन मूल्यों को स्मरण रखना होगा। विश्व का ज्ञान और आज तक की अपनी सम्पूर्ण परम्परा के आधार पर हम ऐसे भारत का निर्माण करेंगे जो हमारे पूर्वजों के भारत से अधिक गौरवशाली है।''

उपरोक्त अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि ओशो ने अपने विचारों के द्वारा शिक्षक के जागरण की बात करते हुए कहा है कि शिक्षक को निद्रा से जागना ही होगा उसके अतिरिक्त और कोई भागीरथ नहीं है कि जो विद्रोह की गंगा को भारत ला सके लेकिन शिक्षक बड़े भ्रमों में हैं। समाज उसे मार डाले वह उसके प्रति आदर खूब दिखाता है। शिक्षक को सदा से ही आदर और सम्मान दिया गया है वह गुरू है, सम्मानीय है ऐसे उसके अहंकार को पोषित किया जाता है और उसे भ्रम में डाल जाता है। और फिर उसके द्वारा नई पीढ़ियों को पुराने ढांचे में ढालने का प्रयास किया जाता है ऐसे आदर पूर्ण शिक्षक का शोषण होता है। समाज शिक्षक को व्यर्थ आदर नहीं देता इस आदर के बदले में सस्ते में वह बहुत मंहगा काम उससे लेता है ओशो कहते हैं क्या शिक्षकों को इसका बोध है पंडित दीन दयाल उपाध्याय, पाठक एवं त्यागी, मुरली मनोहर जोशी आदि विचारकों ने भी भारत की एक गौरवपूर्ण शिक्षा, की दिशा का मार्ग अपनाने की सलाह दी है तभी भारत का समग्र कल्याण संभव है अन्यथा कोई रास्ता नहीं है।

धार्मिकता और धर्म में अन्तर -

धर्म ओशो का केंद्र बिन्दु है। परंतु धर्म से उनका तात्पर्य हिन्दू, मुस्लिम, सिख या ईसाई आदि सम्प्रदायों से नहीं है वे किसी संगठित धर्म की बात नहीं कहते उनके अनुसार धर्म व्यक्ति का स्वभाव है। उसके अपने स्वरूप का ज्ञान है वे धर्म को शास्वत मानते हुए यह बतलाते हैं कि इसकी उत्पत्ति किसी वैदिक ऊहापोह से नहीं बल्कि आनंद की अपीप्सा से हुई है। व्यक्ति मूलतः आनन्द स्वरूप है इसलिए आनंद प्राप्ति की कामना उसमें सदा विद्यमान रहती है यह आनन्द उसके अपने स्वरूप के ज्ञान से मिल सकता है अज्ञातवास में वह इधर-उधर भटकता रहता है और अपने को बंधन ग्रस्त समझता है परन्तु ज्यों-ज्यों उसे अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। ओशो ने धर्म नहीं अंधी रूढ़ियों का खण्डन किया है उन्होंने धर्म नहीं इस पर जमीं काई को उखाड़ फेंका हैं। उन्होंने रजनीशिज्म को भी उसी निर्दयता से उखाड़ फेंका जिस निर्दयता से अन्य संप्रदायों की रूढ़ियों को नष्ट कर दिया।

धार्मिकता और धर्म

ओशो ने परम्परागत बेड़ियों में जकड़े मन को आजाद किया है और अब उनके उदय के साथ हमें एक नवीन धर्म उपलब्ध हुआ है जो निरर्थक साज समाज से भिन्न है।

समस्त धर्मों के साथ ऐसी ही खोजबीन करनी जरूरी है, क्योंकि वे सभी कमोबेश रूप से इसी भांति के कार्य-कलापों में संलग्न है। संभवतः कैथोलिक चर्च उनके कारनामों का सर्वोत्तम उदाहरण है, क्योंकि वह विश्व का सर्वाधिक संगठित धर्म है,और इसके अनुयायियों की संख्या भी बहुत ज्यादा है-लगभग सत्तर करोड़ कैथोलिक हैं इस पृथ्वी पर।

इस धर्म ने वे सभी अपराध किए हैं, जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इसने हजारों स्त्रियों को जिंदा जला डाला- एक भ्रामक धारणा की आड़ में- उन्हें डायनों का खिताब देकर। न कहीं कोई शैतान है, और न कोई डायन है कहीं: किन्तु ये स्त्रियां कैथोलिक

संप्रदाय की प्रतियोगी थीं, इसलिए उन्हें चुन-चुनकर नष्ट किया गया। जब पृथ्वी पर धर्म न थे, और यह दुनिया 'पगान' थी-तब से चली आ रही अत्यंत पुरातन और प्राचीनतम परंपराओं की पोषक थीं वे स्त्रियां। वे प्रकृति को पूजती थीं, और कैथोलिक धर्म की नजरों में यह बुरे से बुरा अपराध है, क्योंकि इसका मतलब हुआ कि प्रकृति पर्याप्त है, फिर ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर बचावनहार के रूप में ईसा मसीह की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि भव-सागर में कोई डूब ही नहीं रहा है। न कैथोलिक पादरियों की जरूरत बचती है, और न उसके सामने प्रायश्चित करने वालों की-क्योंकि प्रकृति जानती है कि कुछ भी पाप नहीं है।

वे स्त्रियां जीवित जलाई गईं, क्योंकि वे 'पगान' थीं, प्रकृति पूजक थीं। लेकिन उन्हें सिर्फ इस कारण जला देना कि वे पगान हैं, यह बहाना पर्याप्त नजर नहीं आता था,इसलिए उन्हें इतना निदिंत करना जरूरी हो गया, कि उन्हें जिंदा जलाना बौद्धिक रूप से समर्थित हो सके। पहले उन्हें कई-कई दिनों तक परेशान किया जाता था। उन्हें सताने के लिए विशेष तरकीबों की ईजाद की गई। हफ्ते या दो हफ्ते तक भूखे रखना, सब तरह से प्रताड़ित करना, मारना, पीटना, सोने नहीं देना.... अंततः स्वयं को असहाय और दयनीय स्थिति में पाकर बेचारी स्त्रियों को स्वीकार करना ही पड़ता था कि वे डायनें हैं, क्योंकि जब तक वे स्वीकार न कर लेंतीं, उन्हें सताना जारी रखा जाता। और उनके पलायन का भी कोई उपाय न था, इसलिए विरोध और अस्वीकृत का कुछ प्रयोजन न था, कुछ तुक न था।

चर्च अत्यंत शक्तिसंपन्न था, सिर्फ धर्म ही नहीं, शासन की बागडोर भी उसी के हाथों में थी। धार्मिक और राजनैतिक दोनों तरह की शक्तियों पर चर्च का प्रभुत्व था। तो जो भी सवाल पूछे जाते, उन स्त्रियों को मजबूरन स्वीकृत देनी पड़ती.... जबर्दस्ती मंजूर करना पड़ता।

चर्च का प्रभुत्व तो कायम रहा, हां, उसकी हुकुमत सिकुड़कर आठ वर्ग मील क्षेत्रफल के वेटिकन में सीमित जरूर हो गई। लेकिन वेटिकन अभी भी एक साम्राज्य है, राजनैतिक रूप से स्वतंत्र राष्ट्र का प्रधान भी है।

आजकल वेटिकन बैंक का मैनेजर छिपा हुआ है, क्योंकि खोजबीन करने पर उसके

बड़े-बड़े अपराध प्रकाश में आये हैं, और इटली सरकार के पास उसकी गिरफ्तारी का वारंट है। लेकिन वे गिरफ्तार करने के लिए वेटिकन में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि वेटिकन एक स्वतंत्र देश है।

दुनिया का सबसे बड़ा अपराधी गिरोह 'माफिया' संभवतः पोप ही चला रहा हैं और नशीली दवाओं के व्यापार से आये सारे अवैध पैसों को वेटिकन के पोप का बैंक वैद्य में बदल रहा है, काले धन को सफेद धन में बदल रहा है। इटली सरकार बैंक के प्रमुख अधिकारी की तलाश में है। इटालियन पुलिस, बगैर जमानत वाला गिरफतारी का वारंट लिए वेटिकन के ईर्द-गिर्द उसका इंतजार कर रही है। और पोप ने उस बैंक मैनेजर को पुरस्कृत करके पदोन्नत कर दिया,बिशप से कार्डिनल बना दिया है।

विश्व भ्रमण के लिए यह पोप जितना पैसा खर्च कर रहा है, उतना किसी पोप ने कभी न किया था। हाल ही में कुछ माह पूर्व आस्ट्रेलिया की यात्रा में उसने इतने पैसे खर्च किए, जितने इंग्लैड़ की महारानी जब आस्ट्रेलिया गई थीं, तब उन्होंने भी खर्च न किए थे। वह प्रतिवर्ष तकरीबन नौ करोड़ डालर अपनी विश्वव्यापी यात्राओं में व्यय करता है। यह सारा धन हेरोइन तथा अन्य मादक द्रव्यों के माध्यम से आता है।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि मनुष्यता कितनी अंधी है। ये ही लोग बड़ी अच्छी-अच्छी बातों की चर्चा करते फिरते हैं- वे नशीले पदार्थों के विरोध में हैं, और उनका पूरा साम्राज्य उन्हीं नशीले पदार्थों पर टिका हुआ है। वे जितनी चीजों की निंदा करते हैं, वे सब चीजें उन्हीं पर लागू होती हैं। वे समलैंगिकता की आलोचना करते हैं, और लगभग पचास प्रतिशत कैथोलिक साधु समलैंगिक हैं। यह पचास प्रतिशत का हिसाब तो बहुत कंजर्वेटिव एस्टीमेट है, पक्ष में सोचने वालों का अंदाज है। असलियत में और भी अधिक प्रतिशत का आंकड़ा सही होगा। आश्रमों में रहने वाले साधुओं की क्या बात करें- वर्तमान पोप के पहले जो व्यक्ति पोप था, वह स्वयं ही होमोसेक्सुअल था। वहां उसका एक ब्यायफ्रेंड था, और इन दोनों के सम्बंध शहर में चर्चित थे। पोप बनने के पश्चात् उसने जो प्रथम कार्य किया, वह था अपने ब्यायफ्रेंड को बुलाकर उसे सचिव पद पर नियुक्त करना।

पूरी दुनिया जानती थी कि वह होमोसैक्सुअलिटि के खिलाफ हैं और चर्च का सबसे प्रमुख प्रतिनिधि खुद होमोसेक्सुअल जीवन जीता है। गजब की बेईमानी है, अद्‌भुत पाखंड।

ईश्वर और धर्म के नाम पर, तथाकथित धर्मयुद्धों और जिहादों में करोड़ों-करोड़ों लोगों की हत्यायें की गई हैं। हत्याओं, उग्रवादी घटनाओं, मादक द्रव्यों के व्यापार, बड़ी-बड़ी धनराशियों की हेराफेरी एवं गबन, संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, इटली और पोलेंड में राजनैतिक हस्तक्षेपों तथा अन्य अवैधानिक गतिविधियों में रोमन कैथोलिक चर्च द्वारा निभायी जाने वाली स्पष्ट भूमिकाओं का पर्दाफाश करने में इस किताब का महत्वपूर्ण योगदान है।

अभी कुछ ही दिनों पहले पोप ने घोषणा की थी कि चर्च को किसी भी तरह की राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, तथा ईसाई पादरी, बिशप, कार्डिनल व साधुओं को राजनीति से दूर रहना चाहिए। और जिन दिनों वह यह वक्तव्य दे रहा था, उन्हीं दिनों वह पोलैंड की एक राजनैतिक पार्टी को साम्यवादी पार्टी के खिलाफ चुनाव लड़ने के लिए करोड़ों डालर भेज रहा था। हिसाब लगाया है कि लगभग एक अरब डालर, यानी पंद्रह अरब रूपये उसने चुनाव प्रचार हेतु दिए। इन लोगों के इतने मुखौटे हैं, इतने झूठे चेहरे हैं। यदि तुम्हें राजनीति में हिस्सा नहीं लेना है, तो फिर पोलैंड में साम्यवादी दल सत्ता में न रहे, इसमें तुम्हारी उत्सुकता और रूचि क्यों है और विपक्षी दल को सहयोग करने के लिए ये पंद्रह अरब रूपये तुम्हारे पास आए कहां से- मादक द्रव्यों से।

पर यह कोई नई बात नहीं है। ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाने के बाद से ही यह सब गोरखधंधा होता आ रहा है। यदि उस बेचारे बढ़ई के बेटे को यह मालूम होता कि उसकी शिक्षाओं और उपदेशों का अंततः ऐसा परिणाम होने वाला है, तो उसे सूली पर चढ़ाने की आवश्यकता न पड़ती, वह स्वयं ही अपनी आत्महत्या कर लेता।

जिस प्रकार कैथोलिक चर्च के संबध में खोजबीन करके, इस पुस्तक में तथ्यों को प्रकाश में लाया गया है, ठीक उसी प्रकार अन्य सभी धर्मों के विषय में किया जाना चाहिये-

उनके क्रियाकलापों की भी गहरी जांच-पड़ताल होनी चाहिए- और वे कैथोलिक ईसाइयों से कम अपराधी न पाये जाएंगे।

प्रत्येक धर्म की ओर गौर से देखना होगा, खोजबीन करनी होगी, और जनता को पूरी तरह सच्चाई से अवगत कराना होगा कि ये लोग मानवता के साथ क्या-क्या अपराध करते रहे हैं। उनकी धार्मिक-भावनाओं को चोटें लगती हैं, इन बेवकूफों भरी बातों पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। वे मनुष्यता पर कहर ढाते रहे, अपराध करते रहे... और सच बात बोलो तो उनकी धार्मिक भावनाएं चोट खा जाती हैं। 1

अब समय आ गया है कि निर्दयतापूर्वक उन सबकी पोल खुलनी चाहिए, क्योंकि तभी एक नए मनुष्य के जन्म के लिए भूमि तैयार होगी, जिसे मैं विद्रोही, रिबेल कहता हूं। उसी से इन सारी कुरूप संस्थाओं और संप्रदायों के विरूद्ध एक महाविद्रोह पैदा होगा, और पूरी मानवता एक प्रेमपूण संबध में जुड़ सकेगी-राष्ट्रों के बगैर, धर्मों के बगैर, पर एक गहन धार्मिकता में डूबी हुई, जीवन के प्रति समादरपूर्ण और इस अस्तित्व के प्रति समादरपूर्ण और इस अस्तित्व के प्रति अहोभाव से ओत-प्रोत।

सिर्फ एक व्यापक विद्रोह की, बगावत की जरूरत है, खास तौर से युवा पीढ़ी में, क्योंकि भविष्य उन्हीं का है-- और अतीत की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।

सत्य पीड़ा पहुंचाता है क्योंकि हम हमेशा झूठ में रहते हैं। हमारा सारा जीवन झूठ से निर्मित है। फ्रेड्रिक नित्जे ने कहा है। झूठ को मनुष्य से मत छीनों, नहीं तो उसके लिए जीना असंभव हो जायेगा, सिगमंड फायड ने भी ठीक यही कहा है: उसे झूठों की आवश्यता है- धार्मिक, अतिन्द्रिय, दार्शनिक, राजनैतिक। केवल अपने ही को देखो- तुम्हें अपने को सहारा देने के लिये कितने झूठों की आवश्यकता होती है, अपने अहंकार को पोषित करते चले जाने के लिए।

मनुष्य को इतने झूठों की क्यों आवश्यकता होती है-क्योंकि मुख्य झूठ तो अहंकार है, और अहंकार तभी रह सकता है जब उसको सहारा देने के लिए कई झूठ उसके ईर्द-गिर्द

1 शब्द समीक्षा - संपादक - स्वामी आनन्द ध्रुव पेज नं. 60

इकटठे हों। सत्य पीड़ा पहुंचाता है क्योंकि वह कुछ झूठों को छीन लेता है, कुछ सहारों को, और तुम्हारा अहंकार नीचे गिरने लगता है। और यही सब कुछ है जो तुम अपने बारे में जानते हो। तुम नहीं जानते कि तुम कुछ और भी हो जो तुम्हारे अहंकार से परे है।

कोई तुमसे कहता है, 'तुम कितने सुंदर हो।' और तुम इसे बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर लेते हो। मैंने यह बहुत लोगों से कहा, किसी ने कभी आपत्ति नहीं की। मैं कभी भी ऐसे व्यक्ति के संपर्क में नहीं आया जिसने आपत्ति की हो, 'नहीं, तुम गलत हो क्योंकि मैं अपना चेहरा जानता हूं। मैं इसे दर्पण में रोज देखता हूं।' तुम इसे किसी से भी कहो, यहां तक कि कुरूप से कुरूप से भी। ऊंट से कहो, और वह अपना सिर स्वीकृत में हिलायेगा। वह कहेगा, 'ठीक, मैं इसे हमेशा से जानता था। तुम पहले बुद्धिमान व्यक्ति हो जिसने इसे पहचाना।' यहां तक कि कुरूप से कुरूप आदमी भी कहीं गहरे में सोचता है, कि वह सुंदर है। वह विश्वास करता है, नहीं तो जीना मुश्किल हो जायेगा। सबसे मूर्ख सोचता है कि यह बहुत बुद्धिमान है। इसलिए तुम एक-दूसरे की प्रशंसा किये चले जाते हो। सारी प्रशंसाएं झूठ हैं-और प्रत्येक विश्वास करने के लिए तैयार है। यह सामान्य जीवन में ही नहीं होता। जब तुम भीतर की यात्रा में प्रवेश करते हो, वहां भी तुम पहचान चाहते हो............

याद रखो, कभी भी कोई सोच पीड़ा पहुंचाती है तो उस पर ध्यान करो। उसमें कुछ न कुछ सत्यता होगी, कुछ सत्य। यदि कुछ भी पीड़ा पहुंचाती है, इसका सम्मान करो, इसमें गहरे जाओ। पता करो यह पीड़ा क्यों पहुंचती है, और तुम अपने आपको पुरस्कृत पाओगे। तुम इसके द्वारा विकसित होओगे।

झूठ मधुर हैं: वे पीड़ा नहीं पहुंचाते। इसलिए मधुर झूठों से सावधान रहो। जब कुछ पीड़ा नहीं पहुंचाता तो तुम विकसित होने के लिए कोई प्रोत्साहित नहीं हो: तो यह तुम पर निर्भर है। मानता हूँ जिनके बीच अभी कड़ियां नहीं जुड़ पाई हैं।

ध्यान रहे, नींद और ध्यान एक अर्थ में भिन्न हैं। नींद का मतलब है: आप अकेले हैं, लेकिन सो गए हैं। ध्यान का मतलब है: आप अकेले हैं। लेकिन जाग गये हैं। बस इतना ही फर्क हैं अगर आप अपने अकेलेपन में और अपने भीतर जाग सकतें हैं अपने प्रति....

एक आदमी बुद्ध के सामने बैठा है एक दिन और अपने पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने कहा कि अंगूठा क्यों हिलाते हो?

उस आदमी ने कहा, छोड़िए ! ऐसे ही हिलता था, मुझे कुछ पता न था। बुद्ध ने कहा, तुम्हारा अंगूठा हिले और तुम्हें पता न हो ! अंगूठा किसका है यह? तुम्हारा ही है?

उसने कहा, मेरा ही है। लेकिन आप भी कहां की बातें कर रहे हैं! आप जो बात करते थे, जारी रखिए।

बुद्ध ने कहा, वह मैं नहीं करूंगा अब, क्योंकि जिस आदमी से मैं बात कर रहा हूं, वह बेहोश है। पता नहीं तुम मेरा सुन भी रहे हो कि नहीं......

उसने कहा कि आप भी कैसी बातें कर रहे हैं! अंगूठा हिल रहा है......

बुद्ध ने कहा, तो अपने अंगूठे के हिलने का आगे से होश रखो। तो उससे दोहरा होश . ... जो होश में है अंगूठे के प्रति, उसका होश भी पैदा हो जाएगा।

अवेयरनेस इज़ आलवेज डबल एरोड। अगर हम उसका प्रयोग करें तो उसका एक तीर तो बाहर की तरफ रह जाएगा और दूसरा तीर भीतर की तरफ हो जाएगा।

तो ध्यान का पहला अर्थ है कि हम अपने शरीर और स्वयं के प्रति जागना शुरू करें। यह जागरण अगर बढ़ सके तो आपका मृत्यु -भय क्षीण हो जाता है। और जो चिकित्सा -शास्त्र मनुष्य को मृत्यु के भय से मुक्त नहीं कर सकता, वह चिकित्सा -शास्त्र मनुष्य नाम की बीमारी को कभी भी स्वथ्य नहीं कर सकता। हां, चिकित्सा-शास्त्र कोशिश करता हैं वह कोशिश करता है उम्र लंबी करने से सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा होती है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। और लंबी प्रतिक्षा से छोटी प्रतिक्षा अच्छी है। उम्र लंबी करने से मौत और भी दुखदायी होती चली जाती है।

क्या आपको अंदाज है कि जिन मुल्कों में चिकित्साशास्त्र ने लोगों की उम्र ज्यादा बढ़ा दी है वहां नया आन्दोलन चल रहा है, वह है, होगी। अभय तो सिर्फ एक ही स्थिति में, फियरलेसनेस एक ही स्थिति में आती है कि मुझे भीतर पता चल जाये कि कुछ है जो मरता

ही नहीं। उसके बिना कभी नहीं हो सकता।

तो ध्यान उस अमरत्व का बोध है। वह जो मेरे भीतर है, वह कभी नहीं मरता है। और जो मेरे बाहर है, मरता ही है। इसलिए जो बाहर है, उसकी चिकित्सा करों कि वह जितने दिन जीये, सुख से जीये। वह जो भीतर है, उसका स्मरण करो कि मृत्यु भी द्वार पर खड़ी हो जाये तो भय न कंपा दें।

भीतर ध्यान, बाहर चिकित्सा, चिकित्सा शास्त्र को परिपूर्ण शास्त्र बना सकते हैं। तो मेडिसिन और मेडिटेशन को में एक ही शास्त्र के दो छोर मानता हूँ, जिनके बीच अभी कड़िया नही जुड़ पायी हैं। लेकिन धीरे-धीरे बात करीब आ रही है। आज तो अमेरिका के सभी विकसित अस्पतालों में एक हिप्नोटिस्ट का होना जरूरी हो गया है। लेकिन हिप्नोटिस्ट मेडिटेशन नहीं है। पर यह अच्छा कदम है। यह इस बात की स्वीकृति है कि आदमी की चेतना के साथ सीधा कुछ करने की जरूरत है सिर्फ शरीर के साथ करना पर्याप्त नही है। आज हिप्नोटिस्ट आयेगा, मैं मानता हूँ कल अस्पताल में मंदिर भी आयेगा। वह पीछे आयेगा, थोड़ा वक्त लगेगा। हिप्नोटिस्ट के बाद एक डिपार्टमेंट योगी का भी हर अस्पताल में आ ही जायेगा। आ ही जाना चाहिये। तब हम पूरे व्यक्ति को ट्रीट कर पायेगे। शरीर की चिकित्सक फिक्र कर ले। उसके चित्त की साइकोलॉजिस्ट, साइकियाट्रिस्ट फिक्र कर लें। उसकी आत्मा की फिक्र योग कर ले। जिस दिन अस्पताल इस तरह पूरे मुनष्य के व्यक्तित्व को ऐज़ ए होल, ऐज ए टोटेलिटी स्वीकार करके चिकित्सा करेगा, मै मानता हूँ वह मनुष्य के जीवन में बड़े मंगल का क्षण होगा। ऐसा मंगल का क्षण करीब आए, इस दिशा में आपसे सोचने की प्रार्थना करता हूँ।

गाँधी पर पुनः विचार

गाँधी जी के संबंध में मेरी जो दृष्टि है, उस पर हम विचार करेंगे।

जिंदा आदमी को मार डालो और मरे हुए आदमी की पूजा करो ये दो तरकीबें हैं। ये छूटने के रास्ते हैं, ये बचने के रास्ते हैं। फिर पूजा भी हम उसी की करते हैं, जिसे हमने बहुत सताया है। पूजा मानसिक रूप से पश्चाताप है। वह प्रायश्चित है। जिन लोंगो को हम जीते जी सताते हैं, उनके मरने के बाद पूरा समाज उनकी पूजा करता है, ऐसे प्रायश्चित करता है। वह जो पीड़ा दी है, वह जो अपराध किया है, वह जो पाप है भीतर, उस पाप का प्रायश्चित चलता है, तो हजारों साल तक पूजा चलती है। यह पूजा किये गये अपराध का प्रायश्चित है। लेकिन वह भी अपराध का ही दूसरा हिस्सा है।

गांधी को जिंदा रहते सतायेंगे, उनकी नहीं सुनेंगे, लेकिन मर जाने पर हम हजारों साल तक पूजा करेंगे। यह 'गिल्टी कांशस', यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा। और फिर इस पूजा के कारण हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होंगे। पहले भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं होते। गांधी जिंदा हैं तो हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम गालियां देते रहे। पत्थर मारकर, गोली मारकर दीवार खड़ी करेंगे कि अभी बातें सोचनी न पड़े। फिर जब वे मर जायेंगे, तब भी हम सोचने-विचारने को राजी नहीं हैं। तब हम पूजा की दीवारें खड़ी करेंगे, और कहेंगे, अब सोचना-विचारना उचित नहीं है, अब तो पूजा करनी काफी है।

ओशो कहते हैं महापुरूषों को या तो गोली मारते हैं या फूल चढ़ाते हैं, लेकिन महापुरूषों पर सोचते कभी भी नहीं हैं। मेरा गांधी से कोई विरोध नहीं है। बहुत प्रेम है। और इसलिए रोज-रोज वे मेरे रास्ते में आ जाते हैं। मुझे उनकी बात करनी अत्यंत जरूरी मालूम पड़ती है, क्योंकि इन वर्षो में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे ज्यादा चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ। उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यंत आवश्यक है। लेकिन जहां मेरा उनसे विचार-भेद है, वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं। दो-तीन बिंदुओं को समझाना चाहूंगा।

पहली बात- गांधी का विचार वैज्ञानिक नहीं है, अवैज्ञानिक है।

गांधी का विचार नैतिक तो है, लेकिन वैज्ञानिक नहीं है, साइंटिफिक नहीं है। गांधी के व्यक्तित्व में चीजों को समझने की जो प्रतिभा थी, वह प्रतिभा ही वैज्ञानिक नहीं थी।

गांधी जिन दिनों शिक्षा के लिए इंगलैंड गये, तो यूरोप की हवाओं में बड़ी क्रांति की बातें थीं। डार्विन का 'ओरीजन आफ स्पेसीज' किताब छप गयी थी। सारे पश्चिम के जगत में डार्विन की चर्चा थी, विकासवाद की चर्चा थी। विकासवाद ने एक भारी धक्का पहुंचा दिया था दुनिया के पुराने विचार को। अब दुनिया का विचार कभी भी वही नहीं हो सकता था, जो डार्विन के पहले था। लेकिन गांधी पर डार्विन के विचार का कोई परिणाम नहीं हुआ। मार्क्स की 'दास कैपिटल' छप चुकी थी। एक नयी क्रांति,समाज व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था में, हवा में आ गयी थी। समाजवाद की न मालूम कितने रूपों में, वहां खबर थी- साइमन, पूरिए, आंबेन, बर्नार्ड शा, इन सबकी चर्चा थी। लेकिन गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

धर्म के विरोध में पश्चिम विज्ञान नयी क्रांति कर रहा था। पुराने धर्म की सारी परंपरा क्षीण होकर गिर रही थी, चर्च, मंदिर टूट रहा था। एक नया तर्कयुक्त, एक नया विचारपूर्ण भविष्य पैदा हो रहा था। गांधी पर उसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ। गांधी पर प्रभाव किस बात का हुआ, आपको पता है? वैजिटेरियनिज्म का। गांधी पश्चिम की क्रांति के उस वातावरण में कौन से विचार से प्रभावित हुए? वैजिटेरियनिज्म से, शाकाहारवाद से। गांधी का चित्त वैज्ञानिकता से जरा भी, कभी भी, संबधित नहीं हो सका। जीवन भर उनका चिंतन नैतिक तो रहा, लेकिन वैज्ञानिक नहीं रहा। और गांधी नैतिक विचारक हैं, वैज्ञानिक नहीं। हिंदुस्तान हजारों साल से अवैज्ञानिक होने की आदत में दीक्षित रहा है। हिंदुस्तान ने हजारों साल से कभी वैज्ञानिक ढंग से नहीं सोचा। अत: हिंदुस्तान में इसीलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया।

हिंदुस्तान के पास प्रतिभा की कमी नहीं है। हिंदुस्तान के पास बुद्ध, दिमान, नागार्जुन और शंकर जैसे अदभुत प्रतिभाशाली लोग हुए हैं, लेकिन हिंदुस्तान के पास एक भी डार्विन

नहीं पैदा हुआ। भारत की प्रतिभा ही सौ पीढ़ियों से अवैज्ञानिक रही है। तीन हजार वर्षों के लम्बे इतिहास में भारत ने वैज्ञानिक प्रतिभा का कोई प्रमाण नहीं दिया है। भारत का सारा सोचना गैर-सांइटिफिक, बल्कि एंटी-सांइटिफिक, विज्ञान-विरोधी रहा है। इस चिंतन की लंबी परंपरा के कारण ही गांधी की अवैज्ञानिक विचारधारा को भी महत्व मिलना शुरू हुआ। गांधी ने कभी भी तर्कयुक्त ढंग से नहीं सोचा।

बिहार में भूंकप हुआ था तो गांधी के अवैज्ञानिक चिंतन ने क्या कहा था? कहा था कि बिहार में इसलिए भूकंप हुआ कि वहां के हरिजनों के साथ जो अत्याचार हुआ है, उसका फल मिल रहा है। बड़ी अजीब-सी बात उन्होंने कही। बिहार के हरजनों के साथ किये गये अत्याचार का फल मिल रहा है बिहार के लोगों को। और हिंदुस्तान भर में अत्याचार नहीं हो रहा है हरिजनों के साथ! और अगर हरिजनों के अत्याचार के कारण भूंकप आए, अकाल पड़े तो हिंदुस्तान में अन्न का एक भी दाना कभी पैदा नहीं होना चाहिए, इतना अत्याचार हो चुका है। लेकिन यह सिर्फ बिहार में क्यों हुआ? बिहार में ही अत्याचार हो रहा है हरिजनों के साथ? 1

नहीं, लेकिन अवैज्ञानिक चिंतन का कोई हिसाब नहीं है। गांधी को कोई बात ठीक लगे तो वह कहेंगे, मेरी अंतर्वाणी कह रही हैं अंतर्वाणी आपकी कुछ भी कह सकती है। आपकी अंतर्वाणी यह कह रही है। अंतर्वाणी किसी चीज के सही होने का सबूत नहीं है। और अगर इस तरह हर आदमी की अतंर्वाणी सबूत बन जाए तो मुल्क एक पागलखाना हो जायेगा। मैं भी कहूंगा, मेरी अतंर्वाणी यह कह रही है, और आप कहेंगे, मेरी अतंर्वाणी यह कह रही है। अतंर्वाणी के कहने से कोई चीज सत्य नहीं होती। सत्य होने के लिए उसे तथ्यगत और वैज्ञानिक होना पड़ेगा। सत्य होने के लिए उसे सबके तर्क की अपील हो सके, सबके तर्क और बुद्धि की समझ में आ सके, ऐसा होना पड़ेगा। लेकिन गांधी को इतना काफी है। उन्हें कोई बात ठीक लगती है, वे कहेगे मुझे ईश्वर की वाणी कह रही है।

ईश्वर की वाणी किसी से कुछ भी नहीं कहती। हमेशा अपने ही अचेतन चित की

1 नयी क्रांति की रूपरेखा - लेखक आनन्द मैत्रिय पृष्ठ - 9 से 10

आवाज सुनायी पड़ती है। हमारा भीतर का मन हमसे कुछ कहता हैं लेकिन मेरे भीतर का मन कुछ कहे, इस कारण वह सत्य नहीं हो जाता है कि मेरे भीतर के मन ने कहा है। और मेरे लिए सत्य हो भी सकता है, लेकिन दूसरे के लिए सत्य कहने का हकदार मैं नहीं हूँ। लेकिन गांधी जीवन भर यह कहेंगे कि मेरी अतंर्वाणी यह कह रही है और उनकी अतंर्वाणी कहेगी और अगर वे उपवास करेंगे और अनशन करेंगे, तो पूरे मुल्क को भी मानना पड़ेगा कि वे जो कह रहे हैं, वह ठीक कह रहे है।

गांधी के इस अतंर्वाणी के सिद्धान्त ने भारत के चित को बहुत नुकसान पहुंचाया है, क्योंकि इससे अवैज्ञानिकता बढ़ती है। एक आदमी की अतंर्वाणी कहती है कि आंध्र प्रदेश अलग होना चाहिए और वह अनशन कर देता है और अतंर्वाणी को मानना ही पड़ेगा और अगर हम अतंर्वाणियों को इस तरह मानकर चलें तो हिंदुस्तान की क्या गति होगी? लेकिन गांधी जैसे बड़े व्यक्ति ने अतंर्वाणी को इतना बल दिया- तर्क को नहीं, विचार को नही, सोच-विचार को नहीं, डायलाग को नहीं, कि हम विचार करें और तय करें। नहीं, उनकी अतंर्वाणी जो कहती है, वह उन्हें सत्य मालूम पड़ता है।

फिर उस सत्य के लिए वे दबाव डालते हैं, और उस दबाव को हम समझते हैं, वह अहिंसा हैं दबाव किसी भी स्थिति में अहिंसा कभी नहीं होता।

चाहे दबाव किसी भी रूप का हो, दबाव हमेशा हिंसा है।

मैं आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाऊं तो यह भी हिंसा है और मै आपके दरवाजे पर अनशन करके बैठ जाऊं तो यह भी हिंसा है। मैं आपको हर हालत में दबा रहा हूँ और कई बार छुरे का भय उतना नहीं होता, जितना कोई आदमी द्वार पर आकर मर जाए उसका भय होता हैं और गांधी जैसा भला आदमी अगर मरने लगे तो हम गलत न भी होंगे तो भी झुक जायेंगे कि चलो ठीक है। इस आदमी को मरने नहीं देना चाहिए, इतना बहुमूल्य आदमी है। लेकिन गांधी की अवैज्ञानिकता के कारण उनको यह भी नहीं सूझता है कि दबाव, सभी तरह की हिंसा होती हैं चाहे वह दबाव किसी तरह का हो, दबाव मात्र हिंसा है। चाहे आप छुरे से दबाओ किसी को और चाहे आप मरने की धमकी देकर दबायें।

मरने की धमकी देकर दबाना और भी खतरनाक है, क्योंकि दूसरा आदमी बिल्कुल निहत्था हो जाता है, वह उत्तर भी नहीं दे सकता। जब तक कि वह भी यही पागलपन न करें कि वह भी अनशन लेकर बैठ जाए और कहे कि मैं भी मर जाऊँगा। 1

मैंने सुना है, एक मजाक मैंने सुना है। एक युवक एक लड़की के पीछे दीवाना है। और उसके घर के सामने जाकर उसने अनशन कर दिया और कहा कि मेरी अंतर्वाणी कहती है कि मै तुमसे ही प्रेम करता हूँ और तुमसे ही विवाह करूँगा। और अगर मुझसे विवाह नहीं करोगी तो मैं मर जाऊँगा अनशन करके। सारे गांव के अच्छे लोगों का समर्थन उस युवक को मिलना शुरू हुआ, क्योंकि उसने यह अहिंसात्मक आंदोलन शुरू किया था। प्रेम के लिए यह पहली घटना थी। गांव के लोगों ने कहा, यह तो अहिंसात्मक बात है। यह आदमी धमकी तो नहीं दे रहा है। यह तो अपने को स्वयं न्यौछावर कर रहा है, यह तो शहीद हो रहा है। घर के लोग बहुत घबरा गये। अगर वह छुरे से धमकी देता तो उससे लड़ा भी जा सकता था। सारे गांव की नेतिक बुद्धि उसके पक्ष में थी। वे बहुत परेशान हुए। फिर उन्होंने गांव के एक पुराने अहिंसात्मक आंदोलन करने वाले बूढ़े से सलाह ली कि क्या किया जा सकता है? उसने कहा, घबराओं मत, रात हम इंतजाम कर देंगे। रात वह एक बूढ़ी औरत को लेकर आया। ओर उस लड़के से उस बूढ़ी औरत ने आकर कहा कि मेरी अतंर्वाणी कहती हे कि मैं तुमसे विवाह करूँ। और मैं अनशन शुरू करती हूँ। रात में ही वह लड़का अपना बिस्तर वगैरह लेकर भाग गया। अब कोई उपाय नहीं था।

अतंर्वाणियों पर तय नहीं किया जा सकता है कुछ। अंतर्वाणियां खतरनाक हैं और देश को गड्ढे में ले जाने वाली हैं और कौन है हकदार यह कहने का कि मेरी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है?

मुहम्मद कहते हैं कि मेरी अतंर्वाणी ईश्वर की आवाज है, वेद की आवाज है, ऋषि कहते हैं कि हमारी अतंर्वाणी ईश्वर की आवाज है। सारी दुनिया के लोग यही दावा करते है कि हमारी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है। फिर झगड़े का कोई कारण नहीं रह जाता। सत्य तो निर्णीत हो गया। अब सत्य को निर्णय नहीं करना है। तर्क की कसौटी पर प्रयोग की शाला

1 नयी क्रांति की रूपरेखा – लेखक : आनन्द मैत्रिय पृष्ठ – 10

में, दस आदमियों के बीच अब सत्य का निर्णय नहीं होना है। सत्य पहले से ही निर्णीत हो गया। मेरी अंतर्वाणी ईश्वर की आवाज है; यह बहुत खतरनाक बात है। यह बात अवैज्ञानिक बात है। और अगर यह फैल जाए तो मनुष्य के हितकर नही हो सकती। और फिर इस तरह की अंतर्वाणी के लिए दबाव डालना और भी खतरनाक है।

किसी भी तरह का दबाव अहिंसात्मक नहीं है। सब दबाव वायलेंस हैं। दबाव हिंसा है। और इसलिए गांधी के सत्याग्रह और अनशन का परिणाम भारत के लिए अच्छा नहीं हुआ। सारा देश आज किसी भी टुच्ची बात पर सत्याग्रह करते हैं, किसी भी बेवकूफी की बात पर अनशन शुरू हो जाते हैं। सारा मुल्क परेशान है। गांधी जो तत्व दे गये हैं, वह मुल्क को भरमा रहा है और भटका रहा है और तकलीफ में डाल रहा है। और अगर वह बढ़ता चला गया तो हिंदुस्तान की नौका कहां डूब जायेगी, किन चट्टानों से टकराकर, कहना मुश्किल है। क्योंकि हिंदुस्तान का विचार और विवेक जाग्रत नहीं हो रहा है। हिंदुस्तान में हर आदमी दावेदार हो गया है कि वह जो कह रहा है। वह सत्य है, और उसको मानना जरूरी है। यह बात हैरानी की मालूम होती है।

लेकिन जितने लोग भी गैर-सांइटिफिक ढंग से सोचते हैं, वे हमेशा अपने भीतर की आवाज को बल देना शुरू कर देते हैं।

ओशो ने कहा है कि बगदाद में एक आदमी ने घोषणा कर दी कि मैं पैगंबर हूँ। अब इसका निणय नहीं हो सकता है कि कौन आदमी पैगंबर है, क्योंकि पैगंबर खुद ही कहता है कि भगवान ने मुझे कहा है कि तुम पैगंबर हो। बगदाद के खलीफा ने उसे पकड़ लिया, क्योंकि बगदाद का खलीफा पैगंबरों के खिलाफ नहीं है, लेकिन मुहम्मद नाम के पैगंबर से बंधा हुआ हैं दूसरे पैगंबर को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता। उसने पकड़ लिया उस पागल को और कहा कि तुम पागल हो। मुहम्मद के बाद अब किसी पैगंबर की दुनिया में जरूरत नहीं है। असली पैगंबर हो चुका है, तुम्हारा दिमाग खराब है। अपना दिमाग ठीक करो, अन्यथा फांसी पर लटकने को तैयार हो जाओ। एक महीने का तुम्हें वक्त देते हैं। उसे जंजीरों से बांधकर कारागृह में डाल दिया।

पंद्रह दिन बाद खलीफा उससे मिलने गया कि शायद अब वह दुरूस्त हो गया होगा। भूखा-प्यासा, जंजीरों में बंधा, उस पर कोड़े रोज पड़ रहे थे। फंदे से बंधा था वह आदमी। खलीफा ने जाकर कहा कि महाशय, बुद्धि दुरूस्त हो गयी हो तो बोलो, अब तो नहीं है यह ख्याल कि तुम पैगंबर हो? उस आदमी ने कहा, अरे पागल खलीफा, यह तो मैं जब भगवान के पास से चलने लगा; उन्होंने जब मुझे पैगंबर बनने का आदेश दिया, तभी उन्होंने कहा था, पैगंबरों को बड़ी तकलीफें झेलनी पड़ती हैं। हमेशा से पैगंबरों को मुसीबतें झेलनी पड़ी है। मुसीबतों ने सिद्ध कर दिया है कि मैं पैगंबर हूँ। और अगर तुम मुझे मार डालोगे तो बिलकुल पक्का सिद्ध हो जायेगा कि मैं पैगंबर हूँ, क्योंकि पैगंबर हमेंशा मारे जाते रहे हैं। लेकिन तभी सीखचों में बंद एक दूसरा अदमी भीतर से चिल्लाया, खलीफा, यह आदमी झूठ बोल रहा है; मैने इसे कभी भी पैगंबर बनाकर नहीं भेजा। खलीफा ने कहा, आप कौन है? वह अदमी दो महीने पहले पकड़ा गया था उसको खुद परमात्मा होने का वहम था। वह कहता था कि मैं परमात्मा हूँ। उसने कहा, यह आदमी बिलकुल झूठ बोल रहा है, मैंने मुहम्मद के बाद किसी को भेजा ही नहीं। इस आदमी को मैंने कभी नहीं भेजा।

अब यह अंतवार्णियों का द्वंद बड़ी मुश्किल बात है। कौन तय करे कि अंतर्वाणी किसकी थी? अंतर्वाणी से समाज संचालित नहीं होते। हां, अगर किसी व्यक्ति को अपनी अंतर्वाणी ठीक मालूम पड़ती है, तो वह अपने जीवन को जिस भांति संचालित करना चाहे करे। लेकिन जैसे ही वह दूसरे व्यक्ति से कोई बात कहता है, वैसे ही तर्क को अंधकार में ढकेल देंगे - अंधे अंधकार में, जहां कि पागलपन पैदा हो जायेगा।

भारत इस तरह की अंतर्वाणी से बहुत दिन से बंधा आ रहा है। इसलिए भारत में विज्ञान, विचार और तर्क से पैदा होता है। गांधीजी ने फिर तर्क को बहुत नुकसान पहुंचा दिया। लेकिन वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। क्योंकि हमारी परंपरा इतनी पुरानी हो गयी है अतर्क की, तर्क-विरोधी कि हमें ख्याल में नहीं आता कि इस देश का सबसे बड़ा संकट क्या है?

इस देश का सबसे बड़ा संकट है, एक वैज्ञानिक प्रतिभा का पैदा न हो पाना। भारत

में कोई वैज्ञानिक चिंतन पैदा ही नहीं हो पाता। हमने कुछ भी ईजाद नही किया। हमने कोई अविष्कार नहीं किया, हमने प्रकृति के कोई छिपे हुए राज नहीं खोले। इसलिए हम दीन, दरिद्र और दुखी होते चले गये। गरीब होते चले गये, गुलाम होते चले गये। और आज भी जमीन पर हमारे पास क्या है? आज जो भी शक्ति हमारे पास दिखायी पड़ती है, वह उधार है। हमारे पास अपनी कोई शक्ति नहीं है। हमारे पास अपनी कोई वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है कि हम अगर दुनिया से टूट गये तो हम आज अपना विज्ञान विकसित कर लें। यह असंभव है। हम अपना विज्ञान विकसित नहीं कर सकते। हम जिन्हें वैज्ञानिक कहते हैं, बड़े इंजीनियर, बड़े डाक्टर, उनकी बुद्धि भी अवैज्ञानिक है, वे भी टैकनीशियंस से ज्यादा नहीं हैं।

मैं कलकते में एक डाक्टर के घर महेमान था। सांझ को जब मीटिग में जाने के लिए वह डाक्टर मुझे लेकर बाहर निकलने लगे तो उनके बच्चे को छींक आ गयी। छींक आते ही डाक्टर ने कहा कि दो मिनट रूक जाइए। मैने उनसे कहा, आप डाक्टर होकर यह कहते हैं कि रूक जाऊं। आपको भली-भाँति पता होना चाहिए कि छींक क्यों आती हैं। डाक्टर को तो जानना चाहिए? और आपकी लड़की को छींक आने से तीन काल में भी मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं क्यों रूकूं आपकी लड़की के छींक आने से? डाक्टर ने कहा, वह तो मैं समझता हूँ लेकिन फिर भी रूक जाने में हर्ज क्या है। दो मिनट बाद चले चलते है। यह अवैज्ञानिक भीतर से बोल रहा है। हर्ज क्या है, यह आदमी कहता है।

हर्ज बहुत बड़ा है। पूरे मुल्क की हत्या हो जायेगी। अगर वैज्ञानिक चिंतन पैदा नहीं होता हैं तो जिंदगी की समस्याओं का सामना करने की हमारी क्षमता विकसित नहीं हो पताी। हम छींकों से डरने वाले लोग हैं। बिल्लियां रास्ता काट जायें और हम बैठ जायेंगे। इस तरह नहीं चलेगा।

ओशो ने कहा है कि, अभी मैं जालंधर था, एक बड़े इंजीनियर मित्र ने एक बड़ी कोठी बनायी। उसका उद्घाटन करने के लिए मुझको ले गये। बड़े इंजीनियर हैं, बड़ी शानदार कोठी बनायी। शायद वैसी कोठी दूसरी न होगी उस नगर मे। जब उनकी कोठी का फीता काट रहा था, तो मैंने देखा सामने ही कोठी के दरवाजे पर एक हंडी लटकी है, हंडी में आदमी का

चेहरा बना है। बाल लटके हैं। मैंने पूछा, यह क्या है? वह इंजीनियर हंसने लगे और कहने लगे, मकान को नजर न लग जाये, इसलिए लटकाना पड़ता है।

इन इंजीनियरों और इन डाक्टरों से क्या देश में वैज्ञानिक प्रतिभा पैदा होगी? इन इंजीनियरों और इन डाक्टरों से देश में वैज्ञानिक पैदा होगा? एक इंजीनियर भी हंडी लटकाता है और सोचता है इससे मकान को नजर नहीं लगेगी। फिर इंजीनियर के सारे प्रमाण-पत्रों को लगा दो आग और घर-घर हंडियां लटका लो और अपनी छातियों पर भी लटका लो, जिससे किसी को नजर न लग जाये। यह सारा मुल्क अवैज्ञानिक ढंग से जी रहा है और चिंतन कर रहा है। असल मे वैज्ञानिक ढ़ग से कोई चिंतन नहीं होता।

गांधी एक समझौतावादी हैं।

हिंदुस्तान हमेशा से समझौतावादी रहा है। समझौतावादी होने से यह हमने सब खो दिया है। अब कब मौका आयेगा कि हिंदुस्तान समझौतावादीपन की पुरानी आदतें छोड़ दे। वह हिम्मत से जो ठीक हो उसकी करने की कोशिश करें। जो सही दिखायी पड़े, जो मुल्क के चिंतन में सही आये, उसके साथ समझौता न करें। क्योंकि समझौता करने वाली कौम धीरे-धीरे इम्पोटेंट, नपुंसक हो जाती है। उसका बल चला जाता है, उसका आग्रह चला जाता है, उसका वीर्य चला जाता है, उसकी लड़ने की क्षमता चली जाती है, उसकी बदलाहट की ताकत खो जाती है। वह सब खो गयी है।

गांधी क्रांतिकारी नहीं है। गांधी की जो बात क्रांतिकारी मालूम पड़ती है, वह बात भी उतनी क्रांतिकारी नहीं है, जितनी घोषणा की जाती है। गांधी कहते हैं कि अहिंसा-और अहिंसा की बात सच में बड़ी क्रांतिकारी है। लेकिन गांधी के अनशन और सत्याग्रह को मैं अहिंसक नहीं मानता हूँ। अगर कोई भी अनशन जाहिर रूप से किया जाये तो हिंसात्मक हो जाता है। अगर मुझे किसी व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन करना है तो मौन से, एकांत में बिना किसी को पता चले, ध्यान में, समाधि में मुझे हृदय-परिवर्तन की प्रार्थना करनी चाहिए। अगर मैं बड़ौदा में घोषणा करके कि मैं फलां आदमी का हृदय-परिवर्तन करूगा, अनशन करता हूं और सारा बड़ौदा मेरे अनशन के पास घूमता है, और अखबारों में खबरें छपती हैं तो मैं

उस आदमी पर दबाव डाल रहा हूं। यह दबाव अहिंसात्मक नहीं है।

सत्याग्रह अहिंसात्मक हो सकता है, लेकिन वह होगा मौन में, एकांत में, अंधेरे में जहां किसी को पता भी न चले। उस आदमी को भी पता न चले, जिसका ह्वदय- परिवर्तन करने की कोशिश कर रहा हूं। और तब उस मौन में भी ह्वदय बदले जाते हैं, उस मौन में भी ह्वदय से ह्वदय तक आवाज पहुंचायी जाती है। वह तो अहिंसात्मक हो सकता है।

लेकिन इस तरह के सत्याग्रह और अनशन अहिंसात्मक नहीं हैं, ये हिंसा के नये रास्ते हैं, नये रूख हैं। यह हिंसा की नयी तरकीब है।

गांधी के द्वारा जो क्रांति हो गयी, वह अहिंसात्मक क्रांति नहीं है। और वह क्रांति संभव हो सकी, वह इसलिए नहीं कि भारत अहिंसात्मक आंदोलन कर रहा था, बल्कि भारत इतना कायर, इतना कमजोर और इतना निर्वीर्य हो गया है कि उसमें लड़ने की कोई हिम्मत नहीं रही। गांधी ने भी आजादी मिलने के बाद यह बात स्वीकार की। गांधी ने यह बात स्वीकार की कि अब मैं समझता हूं, क्योंकि आजादी मिलते ही जो हिंसा का दौर छूटा पूरे मुल्क में, उससे सब बात पता चल गयी कि यह मुल्क कितना अहिंसक है। गांधी ने भी यह बात स्वीकार की कि मैं समझता हूं कि हिंदुस्तान ने कमजोरी की वजह से अहिंसा की बातें मान ली थीं। हिंदुस्तान अहिंसक नहीं है।

कौन-सी अहिंसक क्रांति हो गयी। वह जो क्रांति गांधी के साथ चली थी, वह क्रांति भी बहुत अदभुत थी। वह क्रांति, वह विरोध, वह बगावत अंग्रेजों के तो खिलाफ थी, लेकिन हिंदुस्तान की सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ नहीं थी। जब तक अंग्रेजों की खिलाफत चली तब तो ठीक था। अब आगे नहीं बढ़ना है इसलिए हिंदुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी, हिंदुस्तान आजाद नहीं हुआ। 1

हिंदुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी और हिंदुस्तानी पूंजीपति के हाथ में हुकूमत आ गयी। हिंदुस्तान की गुलामी जारी है। अंग्रेज पूंजीपति की जगह हिंदुस्तानी पूंजीपति आ गया, लेकिन हिंदुस्तान की गुलामी में कोई फर्क नहीं पड़ा है। और इसीलिए हिंदुस्तान का पूंजीपति

1 तथैव पृष्ठ 11

गांधी के आसपास चक्कर लगाता था, क्योंकि गांधी से उनको आशा थी कि इस आदमी के कारण तो जनता हिंसा नहीं कर सकेगी, क्योंकि हिंसा की अगर क्रांति होती तो पूंजीपति भी उस क्रांति में बह जाता, यह निश्चित था।

गांधी के कारण हिंसात्मक क्रांति नहीं हो सकेगी, पूंजीवादी सुरक्षित है।

और गांधी की समाझौतावादी प्रवृत्ति के कारण ही अंग्रेज पूंजीपति से सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी, यह भी हिंदुस्तान की पूंजीवादी व्यवस्था को पता था। इसलिए जैसे ही हिंदुस्तान को आजादी मिल गयी, हिंदुस्तान के पूंजीपतियों और हिंदुस्तान के नेताओं ने गांधी को एक तरफ फेंक दिया। काम खत्म हो गया, वह चली हुई कारतूस सिद्ध हो गये। काम पूरा हो गया था। जो काम होना था, हो चुका था। अब गांधी खतरनाक थे, अब गांधी की कोई जरूरत न थी। इसलिए गांधी ने मरने के कुछ दिन पहले कहा कि मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं। अब मेरी कोई पूंछ नहीं है, अब मुझे कोई नहीं पूछता है? इसलिए नहीं पूछता है, कि जो उन्हें पूंछ रह थे लोग, उनका काम पूरा हो गया है। गांधी का काम पूरा हो गया हैं, अब गांधी की कोई जरूरत नहीं है। और गांधी का मौजूद रहना खतरनाक सिद्ध हुआ है।

यह जो क्रांति हुई, यह क्रांति नहीं थी। यह केवल सत्ता का एक पूंजीपति वर्ग के हाथ में हस्तांतरण था। यह ट्रांस्फर था, यह कोई क्रांति नहीं थी। समाज की जिंदगी वैसी की वैसी है, बल्कि बदतर हो गयी है। बीस सालों में आजादी के बाद हिंदुस्तान का चित्त, हिंदुस्तान की चेतना और आत्मा पतित हुई है, विकसित नहीं हुई है। असल में अपना पूंजीपति और भी खतरनाक सिद्ध हुआ है।

और मैं आपको कहता हूँ, अग्रेंज पूंजीपति तो गांधी के प्रति सदय रहा, भारत के पूंजीपति गांधी के प्रति सदय भी नहीं रह सकता था। और गांधाी की हत्या इसका सबूत है। अंग्रेज हुकूमत के बीच गांधी जिंदा रह सके। अंग्रेज ने गांधी की हत्या नहीं की। मुसलमान ने गांधी को गोली नहीं मारी। एक हिंदू ने और हिंदुस्तान के आजाद होने के बाद गोली मारी, यह आकस्मिक नहीं है, एक्सिडेंटल नहीं है। यह बताता है कि हमारा पूंजीपति, हमारे देश

का सत्ताधारी पश्चिम के सत्ताधारियों से भी खतरनाक सिद्ध हो सकता है। हम ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। वह जो काला पूंजीपति है, वह गोरे पूंजीपति से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो रहा है।

गांधी के एक भक्त हैं। जब हिंदुस्तान आजाद हुआ, तब उन सज्जन के पास केवल तीस करोड़ की पूंजी थी, आज उनके पास तीन सौ करोड़ की पूंजी है। बीस वर्ष में तीन सौ करोड़ के करीब की पूंजी का इकट्ठा हो जाना मिरेकल है, चमत्कार है। लेकिन मानना चहिए कि सत्संग का फायदा होता है। ग्रंथों में लिखा है, सत्संग से बहुत फायदा होता है। उनको भी गांधी के सत्संग से फायदा हुआ है।

नहीं, गांधी कोई क्रांतिकारी विचारद्रष्टा नहीं है, गांधी एक सुधारवादी, चिंतक हैं। और इसलिए मैं गांधी के अवैज्ञानिक चिंतन का, उनकी क्रांति विरोधी दृष्टि का, उनके प्रतिगामी और पीछे लौट चलने वाली प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति का स्पष्ट रूप से विरोध करता हूँ।

लेकिन यह गांधी का विरोध नहीं है। गांधी के व्यक्तित्व के प्रति मुझे समादर है, लेकिन गांधी के विचार अगर गलत हैं तो चाहे कोई भी परिणाम हो, मैं उन विचारों को गलत कहना चाहता हूँ। और मैं इतनी आशा करता हूँ। मुल्क की नयी पीढ़ियों से, मुल्क के विचारशील लोगों की गालियां यह बताती हैं कि मैंने जो भी कहा है, उसका उत्तर दिया जाना चाहिए। मैं उत्तर के लिए तैयार हूँ।

और मेरा दावा नहीं है कि जो मैं कहता हूँ, सही है, क्योंकि मैं तो विचार और तर्क में विश्वास करता हूँ। मैं दावा नहीं करता कि मेरी अन्तर्वाणी जो कहती है, वही होना चाहिए। वह गलत हो सकता है, लेकिन मेरी बातों का उत्तर चाहिए। मुझे गालियां देने से कुछ परिणाम नहीं निकल सकता, और गालियां देकर जनता को बहुत दिन तक गुमराह भी नहीं रखा जा सकता। जनता से मुझे आशा है और इस बात की आशा नयी पीढ़ियों से और भी ज्यादा है कि भविष्य, भारत का भविष्य अब सोचने वाला होगा। हम अंधेरे में बहुत दिन बिना सोचे जी लिये। क्या कभी भगवान वह मौका नहीं देगा कि यह देश भी विचार करे, और यह देश भी जागे और सोचें?

इसी विचार की दिशा में मैं प्रश्न कर रहा हूँ। एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है, जिसके पास न कोई संगठन है, न कोई संस्था है, न कोई साथी है, न कोई सम्पत्ति है? एक अकेले आदमी की आवाज कितनी हो सकती है? लेकिन मैं इस आशा में आवाज दिये ही चला जाऊँगा, जब तक वह मेरी आवाज बिल्कुल बन्द ही न कर दें। मुझे यह ख्याल है कि कुछ लोग यह आवाज सुन लेगें। और यदि आवाज में कोई सत्य होगा तो यह आवाज रूकवाई नहीं जा सकती, यह गांव-गांव , कोने-कोने, एक-एक आदमी तक जरूर पहुंच जायेगी। अगर परमात्मा की यह मर्जी होगी कि भारत सत्य के प्रकाश में आये तो यह होकर रहेगा। इसे कोई रोक नही सकता।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम की रूपरेखा

पाश्चात्य जीवन पद्धति में कहीं न कहीं मौलिक त्रुटि अवश्य है जिसके कारण वहां समृद्धि होते हुए भी 'सुख' नहीं है और वह त्रुटि यह की वे मनुष्य का सम्पूर्ण विचार नहीं कर पाये। चूंकि मनुष्य समस्त क्रियाओं का उद्देश्य सुख की प्राप्ति ही है इसलिए ऐसे पाठयक्रम किया जाना चाहिए जिसके द्वारा मनुष्य 'सुख' को प्राप्त कर सके।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, -

" हमने व्यक्ति के जीवन का पूर्णता के साथ संकलित विचार किया है, उसके शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सभी का विकास करने का उद्देश्य रखा है।

.... इस हेतु चारो पुरूषार्थ का संकलित विचार हुआ है।"

अतः शारीरिक मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक एवं अध्यात्मिक क्रियाओं के साथ परोपकार की भावना उत्पन्न करने वाली क्रिया को पाठयक्रम में रखा जाना चाहिए।

"संघ बनाकर उठना ही प्रगति का रास्ता है संघ बनाकर न रहना अर्थात व्यक्तिशः रहना, व्यक्ति का पृथक-पृथक रहना असंगठित अवस्था है इसी का नाम विनाश है।....... मानवों का अमरत्व संघ भाव से है व्यक्ति बिखरा हुआ रहे तो व्यक्ति का नाश निश्चित है इसलिए व्यक्तियों को गुणवान्, शक्तिवान् बनना चाहिए और व्यक्तिवाद छोड़कर संघ शक्ति की आराधना करना चाहिए। मनुष्य अमरत्व चाहता है वह अमरत्व सम्भूति से ही मिल सकता है।

"संभूत्या अमृतं अश्नुता" संघ से अमरत्व प्राप्त होता है। संघ जीवन सामुदायिक जीवन ही जीना ही अमरत्व प्राप्त करना है। इस दृष्टि से "मैं" के वास्तविक रूप 'हम' को ग्रहण करना चाहिए।"

अतः ऐसा पाठयक्रम सुनिश्चित किया जाये व्यक्तिवादी भावना से ऊपर उठकर संघवादी एवं सामुदायिक जीवन जीने की प्रेरणा दे। अर्थात् सामुदायिक क्रियाओं को

पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

चूंकि 'संस्कृति' ही राष्ट्र के सम्पूर्ण शरीर में प्राणों के समान संचार करती है। और राष्ट्र भक्ति की भावना का निर्माण संस्कृति ही करती है तथा संस्कृति ही राष्ट्र की संकुचित सीमाओं को तोड़कर एकात्मा का अनुभव करती है इसलिए सांस्कृतिक स्वंत्रन्ता अथवा संस्कृति की स्वंत्रन्ता परमावश्यक है। बिना उसके राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही नहीं टिकाऊ ही नहीं रह सकेगी। अतः पाठ्यक्रम में 'संस्कृति' एवं 'सांस्कृतिक क्रियाओं' को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

राष्ट्र एक जीवमान इकाई है और अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'राष्ट्र' 'राज्य' का निर्माण करता है। अतः 'राज्य' 'राष्ट्र' की विभिन्न इकाइयों में से एक है। राष्ट्र सर्वकाल विद्यमान एवं स्थाई सत्य है जबकि राज्य अस्थाई रहता है। जैसे व्यक्ति अनुपयोगी वस्त्रों को बदलकर उपयोगी वस्त्रों को धारण करता है उसी प्रकार राष्ट्र अनुपयुक्त राज्य को बदलकर आवश्यतानुकूल उपयुक्त राज्य का निर्माण करता है। 1

''अतः शोधार्थी का मत है कि राष्ट्र के लिए राज्य है राज्य के लिए राष्ट्र नहीं इसी प्रकार राजनीति के लिए राष्ट्रीयता नहीं राष्ट्रीयता के पोषण के लिए राजनीति होनी चाहिए। वह राजनीति जो राष्ट्र को क्षीण करे अवांछनीय रहेगी।''

यह सिद्धान्त हम सबको स्वीकार करना चाहिए कि सच्चा सामर्थ्य, वास्तविक शक्ति, राष्ट्र में ही निहित होती है। राज्य में नहीं। कुछ लोग राज्य को ही राष्ट्र समझकर समसामायिक राजनीति के अनुसार चलना ही श्रेयष्कर समझते हैं और भूलकर बैठते हैं। इसी कारण से हमारे भी राष्ट्र का स्वाभिमान क्षीण हुआ है। अतः राजनीति से हटकर अस्थायी सत्य को ही वास्तविक न मानकर विशुद्ध राष्ट्रभाव को पुष्ट करने वाला पाठ्यक्रम ही राष्ट्र के पुर्ननिर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

साम्प्रादियकता का हमारे यहां कोई स्थान नहीं है अतः पाठ्यक्रम के अन्तर्गत 'असाम्प्रादयिकता' विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए। लेकिन 'असाम्प्रादयिकता' अर्थात् 'सेक्यूलर' शब्द का अर्थ ठीक-ठीक अवश्य लगाया जाये। हमारे यहां 'मत' को सम्प्रदाय

1 एकात्म मानवदर्शन, एकात्म मानववाद पृष्ठ - 29
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

भी कहते हैं जैसे - शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदाय, खिस्ती सम्प्रदाय आदि। सभी सम्प्रदाय ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताने वाले हैं जैसे अलग-अलग स्थानों से बहती हुई विभिन्न नदियां समुद्र में ही समाहित होती हैं। एक सद्विप्रा वदन्ति। जब प्रत्येक सम्प्रदाय का लक्ष्य एक ही है तो एक दूसरे सम्प्रदाय के प्रति विद्वेष की भावना को जड़-मूल से समाप्त होना चाहिए। राज्य के अन्तर्गत सभी मतो को समान अधिकार प्राप्त होना चाहिए। किसी भी सम्प्रदाय के प्रति पक्षपात या किसी के प्रति घृणा का व्यवहार न करते हुए जीवन की लौकिक और पारलौकिक उन्नति के लिए 'धर्म' को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होना चाहिए। क्योंकि कहा गया है "धारणाद्धर्ममित्याहु:" धर्मो धारयते प्रजा:।"

"धर्म मनुष्य के अन्दर एक ऐसी प्रेरणा प्रवृत्ति एवं विधि व्यवस्था है जिसका लक्ष्य स्पष्ट रूप से भगवान ही है। उनके अनुसार धार्मिक मत व सम्प्रदाय जब धर्म भावना के स्थान पर सम्प्रदाय भावना से कार्य करता है तो स्वयं का ही शत्रु बन जाता है।

" जैसे प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न होती है वैसे ही प्रत्येक राष्ट्र की प्रकृति भी भिन्न होती है। भारत की भी एक अपनी प्रकृति है। हमारे इतिहास का अध्ययन करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि हमारे यहाँ सम्राटो या लक्ष्मी पुत्रों की तुलना में ऋषि महार्षियों को अधिक महत्व दिया गया है। बड़े-बड़े राजा इन महर्षियों के सामने नतमस्तक होते थे। हमारे राष्ट्र की प्रकृति अध्यात्म प्रधान रही है। हम भौतिक समृद्धि के आकर्षक नारों की ओट में से बदल नहीं सकते। यदि हमने मूल प्रकृति की अवहेलना करने की चेष्टा की तो हमारे राष्ट्र जीवन में अनेकों प्रकार की विकृतियां उत्पन्न होंगी।"

अर्थात हमारे यहां भोग की अपेक्षा त्याग को महत्व दिया गया है अशक्ति की जगह निराशक्ति को प्रतिष्ठा दी गयी है।

"चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिए एक विशाल सम्राज्य का निर्माण किया पर स्वयं निस्पृह कर्मयोगी की भाति राज्य से निराशक्त रहे। आज हमारे राजनीतिक जीवन में जो विकृतियां दिखाई दे रही हैं वह अशक्ति के कारण दिखाई दे रही हैं।"

इस प्रकार राष्ट्र की प्रकृति के अनुकूल त्याग और अनाशक्ति की आदर्श तथा पवित्र

भावना उत्पन्न करने वाला पाठ्यक्रम वर्तमान समाज में व्याप्त विकृतियों को समाप्त करने में सहायक होगा।

जनतंत्र में लोकमत सर्वोपरि होता है इसलिए लोकमत परिष्कार की सुदृढ़ व्यवस्था ही समाज और राष्ट्र का संकटों से दूर रख सकती है। अन्यथा

"जो दुर्जन और दुराग्रही व्यक्ति है। वे अपनी बात मनवाकर समाज के अगुवा बन जाते हैं और धीरे-धीरे लोकतंत्र एक विकृत रूप में उपस्थित होकर समाज के लिए कष्टदायक हो जाता है। सम्भवतः इसी संकट का सामना करने के लिए

हमारे यहां शास्त्रकारों ने लोकमत परिष्कार की व्यवस्था की। जिस समाज में यह परिष्कार की व्यवस्था की। जिस समाज में यह परिष्कार का काम चलता रहेगा वहां सहिष्णु एवं स्यमंशील व्यक्तियों का मण्डल निरंतर बढ़ता चला जायेगा।"

समीक्षात्मक विचार

इसलिए लोकमत को निरन्तर परिष्कृत करते रहने की आवश्यकता है। अतः धर्म के तत्वों के अनुसार लौकिक और पारलौकिक उन्नति हेतु संस्कारित एवं परिष्कारित करने वाला पाठ्यक्रम वांच्छनिय है।

राष्ट्र को 'परम वैभव' तक पहुंचाने के लिए धर्मयुक्त संगठित कार्य शक्ति की आवश्यकता है चूंकि –

स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, श्री रविन्द्र नाथ ठाकुर आदि अर्वाचीन महर्षियों ने विभिन्न देशों में जाकर यही संदेश दिया और विश्व ने श्रद्धावनत् होकर इस तृथ्य को स्वीकार किया कि हिन्दु धर्म ही वास्तव में मानव धर्म है इसी के आधार पर विश्व की एकता अथवा मानव कल्याण हो सकता है।"

इसलिए हिन्दू धर्म और संगठनकारी तत्वों का पाठयक्रम में स्थान दिया जाये।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' हमारी कामना है और

"भारत का यदि कोई इतिहास है तो वह समस्त विश्व की मंगलकामना का ही है।

विश्व के विभिन्न देशो में प्राप्त भरतीय इतिहास के अवशेष आज भी इसी तथ्य की घोषणा कर रहें हैं कि भारत ने प्राणी मात्र के कल्याण के लिए ही प्रयत्न किये हैं। इसलिए सत्य तो यह है कि विश्व में परस्पर संघर्ष, विद्वेष प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर प्रकट हो रही पश्चिमी राष्ट्रवाद की विभीषिकाओं से विश्व को बचाना है तो उसके लिए भारत के सशक्त राष्ट्रवाद का ही संगठित और सक्षम बनाकर खड़ा करना होगा।''

इस प्रकार शोधकर्ता के अनुसार ''हिन्दुराष्ट्रवाद'' या ''भारतीय राष्ट्रवाद'' को पाठ्यक्रम का विषय बनाया जाना चाहिए।

''हम व्यक्ति को ही सर्वे सर्वा नहीं मानते इसलिए कहते हैं कि व्यक्ति वादी नहीं है। हम समाज को भी ऐसा नहीं मानते कि वह व्यक्ति की समस्त स्वत्रंतताओं और विभिन्नताओं का अपहरण कर ले मनुष्य को किसी शिकंजे में कसकर मशीन का पुर्जा बनाकर इस्तेमाल करें इसीलिए हम समाज वादी नहीं है। हम दोनों केबीच में समन्वय करना चाहते हैं।''

व्यक्ति अपनी शक्ति और गुणों के द्वारा समाज की आवश्कताओं की पूर्ति करे और समाज भी उसके योगक्षेम की चिन्ता करें। इसलिए शोधकर्ता व्यक्ति और समाज के बीच समन्वय एवं सौहार्द बनाए रखने वाला पाठ्यक्रम निर्धारित किए जाने के पक्ष में है।

शोधकर्ता की दृष्टि में भारत के 'आर्थिक मोर्चों' पर विफल होने का मुख्य कारण है 'परानुकरण' दूसरों के द्वारा दिया गया आर्थिक ढांचा। अत हमें अपने जीवनादर्शों और देश तथा काल की परिस्थितियों के अनुसार अपना आर्थिक कार्यक्रम निश्चित करना होगा।

''अतः आवश्यकता है कि हम अपने जीवनदर्शन का विचार कर भारतीय अर्थव्यवस्था का मौलिक निरूपण करें तथा आज की समस्याओं को यथार्थ कल्काकीर्ण ऊबड़-खाबड़ किन्तु ठोस भूमि पर खड़े होकर सुलझायें। भारत के 'एव' का साक्षात्कार किए बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पायेंगे यदि किसी क्षेत्र में थोड़ी बहुत सफलता मिल भी गई तो उसका परिणाम हमारे लिए हितकर नहीं होगा। इस प्रश्न का अर्न्तमुख होकर विचार करना होगा। यदि उसमें कुछ देर भी लगे तो भी वह स्थायी और सर्वाहित-कर हल होगा।''

व्यायाम तथा शिक्षा

शिक्षा का अर्थ ही है - मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। अर्थात् मनुष्य का बौद्धिक, आत्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, चैरित्रिक एवं शारीरिक विकास। जिसे हम एक पक्षीय या एकांगी विकास न कहकर मनुष्य का सर्वांगीण विकास एवं सन्तुलित विकास कहते हैं। जिसमें शरीर का विकास सम्मिलित है।

प्लेटो के अनुसार,

"शिक्षा द्वारा हमें शरीर आत्मा की पूर्णता के लिए सब कुछ प्राप्त हो सकेगा अगर हममें उसे ग्रहण करने की क्षमता हो।"

कलेनिय के विचार से

"शिक्षा सम्पूर्ण मानव का विकास।"

'महात्मा गांधी' शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य मानव जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास मानते थे। शिक्षा से उनका तात्पर्य है।

'शिशु एवं मानव के शरीर मन एवं आत्मा में निहित सर्वश्रेष्ठ तत्वों का विकास।"

उनका कहना है कि-

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय है बालक और मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में पाए जाने वाले सर्वोत्तम गुणों का चतुर्मुखी विकास।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शारीरिक विकास शिक्षा का विशिष्ठ उद्देश्य है। विभिन्न समाजों कालों में शारीरिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के 'व्यायाम' की व्यवस्था की है। भौतिकवादियों के अनुसार स्वस्थ शरीर के द्वारा ही सुखों की प्राप्ति की जा सकती है तथा आध्यात्मवादियों के अनुसार स्वस्थ शरीर के द्वारा ही उच्च साधना एवं आत्मानुभूति का सुख प्राप्त किया जा सकता है।

वर्तमान समय में बच्चों के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उनकी मांसपेशियों एवं विभिन्न अंगों को मजबूत बनाने और उनकी कामेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को क्रियाशील बनाने

के लिए शिक्षा के साथ-साथ व्यायाम को भी पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त है। आसन, दौड़ खेल-कूद एवं अन्य नये-नये व्यायाम के साधनों की व्यवस्था की जाती है। हमारे यहां कहा भी जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियां शरीर के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। स्वस्थ मनुष्य प्रसन्न एवं कार्यक्षम रहता है इसके विपरीत अस्वस्थ्य मनुष्य चिड़-चिड़ा एवं आलसी रहता है। उसमें किसी प्रकार का उत्साह नहीं रहता है वह अपनी रोटी भी ठीक से कमा नहीं सकता है कुल मिलाकार उसका जीवन ही भार स्वरूप हो जाता है। अतः प्रारम्भ से ही बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए 'व्यायाम' की व्यवस्था की जानी चाहिए और यह जिम्मेदारी उनकी है जो शिक्षा क्षेत्र से जुड़े हुए हैं चाहे वह शिक्षक हों या शिक्षाविद् ।

प्राचीन काल से हामरे यहां शरीर को स्वस्थ रखने के लिए 'व्यायाम' की व्यवस्था रही है। प्राचीन कालीन या वैदिक कालीन शिक्षा की यह प्रमुख विशेषता थी कि शरीर के सुसंगत विकास के लिए विद्यार्थी को नित्य 'व्यायाम' करना पड़ता था।

''शारीरिक श्रम के इतने कार्य हर विद्यार्थी को नित्य करने होते थे कि भरपूर शारीरिक व्यायाम हो जाता था।

सत्यार्थ प्रकाश के अध्याय - 3 में 'व्यायाम' के महत्व का वर्णन करते हुए कहा है कि -

''जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है।................ जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मैल नष्ट होकर शुद्ध हो जाते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मण हो जाते हैं।................ बल पुरुषार्थ, बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है जो कि बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है।''

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'व्यायाम और धर्म' को मनुष्य के लिए आवश्यक माना है उनका कहना है कि -

''व्यायाम'' करने वाला व्यक्ति ही अपने धर्म का पालन करने में सक्षम और समर्थ

होता है। शिक्षा शास्त्री रूसों स्वस्थ्य शरीर में स्वस्थ्य मन का निवास मानते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द को स्वयं भी अपनी किशोरावस्था में टहलने, घूमने, व्यायाम और धार्मिक आचरण का बड़ा शौक था। अपनी आत्मकथा "कल्याण मार्ग का पथिक" के पृष्ठ - 195 में उन्होंने लिखा है मुझे जाड़ों में भी चारों ओर की वायु खोल कर सोने का अभ्यास था।"

व्यायाम के बारे मे उनके अमृत तुल्य शब्द स्मरणीय हैं।

"व्यायाम के अभाव में उनके (श्रद्धानन्द के पिता नानक चन्द्र) रोग ग्रस्त होने का कारण हुआ जिससे भारी शिक्षा मैने ली है और मेरे पाठकों को भी लेनी चाहिए।"

विद्यार्थियों को स्वस्थ्य रखने के उपाय बताते हुए महात्मा गांधी ने कहा -

"बालकों की ऊँचाई, बजन आदि का नियमित लेखा रखा जाना चाहिये साथ ही उन्हें नियमित रूप से खेल तथा व्यायाम कराया जाना चाहिए।"

व्यायाम के महत्व को स्वीकारे हुए विद्याभारती द्वारा यह संकल्प व्यक्त किया गया है कि -

"विद्यालय ऐसा चाहिए जहां शरीर स्वस्थ्य, सुदृढ़, निरोगी तथा कर्म कठोर बन सकें, अभ्यास ऐसा चाहिए जिससे शरीर के अंग प्रत्यंगो में पारस्परिक सहयोग हो, तार तम्य हो, एकाग्रता के आधार पर मानसिक शक्तियों का प्रस्फुटन हो। इसके लिए शारीरिक कार्यक्रमों की रचना ध्यान वे प्रणायाम की नियमित व्यवस्था चाहिए।" 1

वैसे तो 'व्यायाम' का शाब्दिक अर्थ है शारीरिक शिक्षा परन्तु वास्तव में शारीरिक शिक्षा शरीर तक ही सीमित नहीं है। शारीरिक शिक्षा का अर्थ है बालक का शारीरिक प्राणिक, मानसिक, नैतिक एवं आत्मिक विकास यानि कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व का गठन।

"शारीरिक शिक्षा केवल शारीरिक अर्थ है शारीरिक शिक्षा - शिक्षा ही है यह वह शिक्षा है जो शारीरिक क्रियाओं द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व शरीर मन एवं आत्मा के विकास हेतु दी जाती है। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में शारीरिक शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। खेल के मैदान में धरती माता की धूल में ही बालक के व्यक्तित्व का वास्तविक गठन होता है।

1 राष्ट्र जीवन की दिशा पृष्ठ -31

'मैं' और 'हम' पण्ड़ित दीनदयाल उपाध्याय

पाठ्येत्तर क्रियाओं की शिक्षा

"छात्र कल का नहीं आज का नागरिक है। अतः आज के नागरिक के रूप में उसके जीवन का निर्माण करना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। विद्यालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए। जिसमें विद्यार्थी एक आदर्श नागरिक के रूप में वर्तमान जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्रापत कर सके। इस दृष्टि से पाठ्येत्तर क्रियाओं के द्वारा छात्रों के अन्दर उत्तरदायित्व की भावना, कर्तव्य निष्ठा, दूसरों के हितों की रक्षा करने का स्वभाव, प्रेम, सहयोग परस्परवलम्बन की भावना आदि सामाजिक गुणें का विकास किया जाना चाहिए। छात्र परिषद, छात्र बैंक, छात्र न्यायालय, एकाउंटिंग, बुक बैक, एन.सी.सी., एन.एस.एस. बाल सभा, प्रार्थना, पिकनिक एवं शैक्षणिक भ्रमण आदि अनेकानेक पाठ्येत्तर क्रियाओं के माध्यम से छात्रों में वाञ्छनीय सामाजिक भावना तथा कुशलताओं का विकास सम्भव है।"

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार -

"शिक्षा में सुधार का आरम्भ विद्यालय को जीवन से पुनः जोड़ने एवं उनमें घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित्त करने होंगे, जोकि आज परम्परागत औपचारिक शिक्षा के कारण टूट चुका है हमें विद्यालय को वास्तविक सामाजिक जीवन एंव सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बनाना है जहां आदर्श मनुष्य समुदाय के समान सुन्दर और सहज जीवन की प्रेरणा और प्रणाली दिखाई दे।"

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने पुनः इस सम्बन्ध में कहा है कि -

"स्वच्छ आनन्दप्रद तथा सुव्यवस्थित स्कूल भवन मिल जाने के पश्चात् हम चाहेंगे कि स्कूल में विविध प्रकार की संबद्ध क्रियाओं का आयोजन हो जो विद्यार्थियों की विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उसमें मनोरंजक कार्यो क्रियाओं तथा योजनाओं की व्यवस्था करनी होगी जो बच्चों को प्रभावित करे और उनकी विभिन्न रूचियों को विकसित करे।"

सामान्य रूप से छात्रों को केवल बौद्धिक स्तर पर सामाजिक समस्याओं की जानकारी रहती है। प्रत्यक्ष अनुभूति न रहने के कारण उनके अन्दर इन समस्याओं को दूर करने का

विचार तक उत्पन्न नहीं होता।

"इस दृष्टि से हमें अनेक रूढ़िया समाप्त करनी होगी, बहुत से सुधार करने होंगे, जो हमारे 'मानव' का विकास और राष्ट्र की एकात्मता की वृद्धि में पोषक हों वह हम करेंगे और जो बाधक हो उसे हटाएंगे......... आज यदि समाज में छुआ-छूत और भेद -भाव घर कर गए हैं, जिसके कारण लोग मानव को मानव समझ कर नहीं चलते और जो राष्ट्र की एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं हम उनको समाप्त करेंगे।"

शिक्षा के माध्यम से समाज में चेतना जाग्रत हो यह उसका प्रमुख उद्‌देश्य है। अतः हमारी शिक्षा संस्थाओं की गतिविधियें सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करने वाली एवं उसे सही दिशा देने वाली होनी चाहिए। गरीबी, भुखमरी, कुशिक्षा, बेरोजगारी, दहेज, स्वार्थ और घृणा जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करेन में सक्षम पीढ़ी जब शिक्षा संस्थाओं से निकलेगी तथा शिक्षा संस्थाएं अपने उद्‌देश्य में सफल मानी जाएगी।

'संगीत और साहित्य की शिक्षा'

हमारे यहां कहा गया है-

"साहित्य संगीत कला विहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः।"

अर्थात साहित्य संगीत और कला से अनभिज्ञ व्यक्ति भी पूंछ और सींग से रहित पशु है तथा यह भी माना गया है कि साहित्य और संगीत भी ऐसा हो जो मनुष्य के अन्दर मानवता, उदारता, दयालुता, सहिष्णुता, परोपकारिता, भावात्मक एवं रागात्मक एकता तथा राष्ट्रीयता की धवलधार का पुण्य प्रवाह कर सके। यथा -

"जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह ह्रदय नहीं है पत्थर है, जिसमे स्वदेश का प्यार नहीं।।"

इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के लिए प्राय: सभी शिक्षाविदों ने साहित्य संगीत और कला आदि विषयों को पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। प्रमुख शिक्षा शास्त्री श्री लज्जाराम तोमर का कहना है कि-

"विद्यालय आरम्भ होने से पूर्व, प्रात: एवं सायं आकाश काल में मधुर संगीत के स्वरों से वातावरण में पवित्रता एवं दिव्यता घुल जाती है।"

शिक्षा के लिए मन की एकाग्रता परमावश्यकता है। एकाग्रहता की शक्ति जितनी अधिक होगी ज्ञान की प्राप्ति भी उतनी अधिक होगी। मनोविज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार जिस विषय को हम बालक को सिखाना चाहते हैं उसमें उसकी रूचि उत्पन्न कर दें। सीखने का अनुराग तथा उन्नति करने की इच्छा जगा दें तो विषय पर उसका मन एकाग्र हो जाता है। मन को एकाग्र करने में काव्य कला और संगीत का प्रमुख स्थान है बच्चों को काव्य कला और संगीत की शिक्षा देकर उनके संवेगो को ऊँचा उठाया जा सकता है, सन्तुलित किया जा सकता है तथा गहराई प्रदान की जा सकती है।

अपने इस प्रयास के श्री गणेश के लिए इस प्रकार की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत भक्ति प्रधान नाटिका का चयन कर उन्होंने आने वाले प्रकशनों की रूपरेखा रख दी है। मैं विश्वकर्मा जी के इस चयन का अभिनन्दन करता हूँ कि वह उन्हें अपने उद्‌देश्य में सफल बनावें।

सामान्य जन में प्रबुद्ध राजनीतिक चेतना को साहित्य के माध्यम से भावात्मक रूप प्रदान किया जाए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक व्यापक योजना बनाई थी, उन्होंने मई 1879 में "कवि वचन सुधा" में लिखा था - "भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आजकल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने हैं, किन्तु वे जनसाधारण को दृष्टिगोचर नहीं होते उसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बने वे सारे देश गांव-गांव में साधारण लोगों में प्रचार की जाए।"

"संध्या समय लाल सूर्य अस्तांचल की ओर भागा चला जा रहा था मानो पश्चिम की ओर पीठ दिखाकर भागते हुए शत्रु की पीठ पर लगा हुआ रक्त कण हो। चहकते हुए पक्षी

1 दार्शनिक अभिधारणाएं : डॉ. महेश चन्द्र शर्मा पृष्ठ - 377

शत्रु के इस प्रयाण पर आनन्दगान कर रहे थे अचानक आये हुए इस बवण्डर से एक दिन विपाशा (व्यास) का जल प्रवाह क्षुब्ध हो उठा था। आज भी वह शान्त कल-कल ध्वनि से बह रहा था और उसके साथ सम्पूर्ण देश भी संतोष की सांस ले रहा था।''

''राज भक्ति वहीं पुण्य है जहां वह राष्ट्र और देश भक्ति की पोषक हो।'' 1

''आज सम्पूर्ण भारत एक आवाज में बोलता है और एक इशारे पर काम करता है।'' ये सब ऐसे काव्याश हैं जिनके कारण पाठक की रोचकता और कौतूहल और अधिक बढ़ जाता है। और वह पूरी एकाग्रता से इसको पूरा पढ़ लेना चाहता है।

आज तक धर्म के नाम पर सिखाई गयी है उदासी सिखाई गयी है। एक बोझिल गम्भीरता। सिखाया गया है। एक तरह का संतोष एक तरह की चिन्ता। धार्मिक होने में और उदास होने में कोई गहरा सम्बन्ध पिछले पांच हजार वर्षों में स्थापित हो गया इस सम्बन्ध ने इस गलत सम्बन्ध ने परमात्मा का एक द्वार बन्द ही कर दिया। जिस द्वार को पास किये बिना कोई प्रभु तक पहुंच ही नही सकता।

आदमी को छोड़ कर इस जगत में कुछ भी उदास नही है आदमी को छोड़कर जगत में कुछ और बोझिल नहीं है सारा जीवन गीत गाता जीवन है। सारा जीवन रंगों में ध्वनियों में नृत्यों में प्रकट होता है आदमी भर बोझिल है उदास है यह उदासी यह बोझिलता यह दुखभाव यह दवा हुआ पन यह अपने आपको बन्द कर लेना और कही से फूल प्रकट न हो जायें कही से मुस्कराहट न हो प्रकट जाये। यह इतना भयभाव कैसे पैदा हो गया।

धर्मों ने तथा कथित संतो और अन्धे महात्माओं ने क्यों ये उदासी की इनती बात प्रचलित की, सुख के प्रति आनन्द के और संगीत के प्रति, साहित्य के प्रति इतना विरोध क्यों है। जितना चित्त दुखी है परेशान है संताप से घिरे हैं। वे ही अपने दुख संताप से छुटकारा पाने के लिए धर्म की यात्रा करते हैं। सम्भवतः धर्म के जगत की भी हवा वैसी ही हो गयी है जैसी स्प तालों की होती है और वे लोग जो उदासी अंशान्ति से बचने के लिए धर्म की तरफ गये थे वे अंशन्ति उदासी से बच गये - ऐसा नहीं उन्होंने धर्म को भी अंशान्त और

1 राष्ट्र जीवन की दिशा, राष्ट्र प्रकृति और विकृति
पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ - 71-72

उदास कर दिया। स्वस्थ्य चित्त व्यक्ति, आन्नदित व्यक्ति, गीत गाते लोग, नृत्य करते लोग धर्म की तरफ नहीं गये और जब तक वे लोग धर्म की तरफ नहीं जायेगे जब तक तब तक यह पृथ्वी धार्मिक नही हो सकती। जिस दिन हंसते हुए लोग धर्म के मार्ग पर बढ़ेगे। उस दिन वह मार्ग फूलों से भर जायेगा।

"रूग्ण अशांन्त और उदास चित्त खोजता है मार्ग कि मैं कैसे मुक्त हो जाऊं अशांति से उदासी से और वही धर्म की यात्रा करने लगता है मेरी दृष्टि में यह कोंण यह खोज का प्रारम्भिक बिन्दु यह प्रस्थान ही गलत है। अशांति कैसे कम हो दुख कैसे कम हो इस भाव से जो धर्म के पास जायेगा वह धर्म को भी विकृत करता है, प्रखर करता है।" 1

"जाना चाहिए धर्म की खोज में, शान्ति कैसे बढ़े, अहोभाग्य कैसे गहरा हो, अशांति कम हो इस दृष्टि से धर्म के पास यह नकारात्मक दृष्टि लेकर जाना गलत है। शांति कैसे बढ़े कैसे गहरी हो आन्नद कैसे बढ़े दुख, कैसे कम हो यह भाव नहीं। ऊपर से देखने पर यह बातें एक जैसी लगती हैं आप कहेगें दुख कम हो या आनन्द कैसे बढ़े एक ही बात है, नहीं ये दोनों बातें भाषा में एक जैसी लगती हैं ये एक ही नहीं है।" 2

एक आदमी के घर में अंधकार घिरा है वह दो तरह से सोच सकता है अंधकार कैसे कम हो और प्रकाश कैसे बढ़े अगर उसने यह सोचा यह अंधकार कैसे कम हो इस दिशा में उसका चिंतन चलेगा। और स्मरण रहे अंधकार से न कोई लड़ सकता है और न अंधकार से कोई जीत सकता है, क्योंकि अंधकार है ही नहीं अगर अंधकार होता तो उससे लड़ा जा सकता है। जिसने इस बात या इस दिशा पर खोज की वह अटक जायेगा उसने अंधकार को मिटाने के लिए जो सीधा चिंतन शुरू किया है वह गलत है क्योंकि अंधकार की कोई सत्ता नहीं है। इसलिए अंधकार को सीधा कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। 3

सत्ता है प्रकाश की अंधकार सिर्फ प्रकाश का अभाव है अनुपस्थिति है एसेंस के साथ आप कुछ नहीं कर सकते प्रकाश जला लिया जाये तो अंधकार मिट जाता है अंधकार को मिटाना नहीं पड़ता है।

1. राष्ट्रजीवन की दिशा — पृष्ठ – 83
2. राष्ट्रजीवन की दिशा, 'परं वैभवं नेतु मेतत्स्वराष्ट्रम्' — पृष्ठ – 97
3. तथैव

इसलिए अंधकार मिटाने की भाषा में जो सोचते हैं वह अंधकार से ही घिरे रह जाते हैं। वे खुद मिट जाते हैं, जो सोचते है प्रकाश कैसे लाया जाय प्रकाश कैसे जलाया जाय वे पाजिटिव विद्यायक भाषा में बोलते हैं।

आज तक का धर्म नकारात्मक निगेटिव माइंड की वजह से विकृत और गलत है इस भाषा में सोचने वाले जो-जो निगेटिव माइंड वाले लोग हैं उन लोगों ने धर्म के सारे मंदिरों को घेर लिया है। अंधकार उससे नष्ट नहीं हुआ दुख उससे नष्ट नहीं हुआ।

''आनन्द को खोजो अंशाति से बचने की फिक्र छोड़ो अशांति से मुक्त होने का भाव छोड़ो शांति को बढ़ाओ और जगाओ, नकार और विरोध की तरफ ध्यान ही मत दो विधेय को जगाओ और उसे पुकारो उसको चुनौति दो।'' 1

हंसते हुए संत पैदा ही नहीं हुए प्रफुलित लोग पैदा ही नहीं हुए जितना रोता हुआ आदमी हो उतना ही बड़ा संत माना जायेगा जितना उसके जीवन का सारा रस सूख गया हो उतना ही महान मालूम होता है। कैसा है मनुष्य कैसा है पागलपन हंसते हुए लोग पागल मालूम होते है। और उदास लोग महान ऊंचे दिखाई देते हैं।

जिस दिन हम हंसते हुए लोगों को भी महानता की दिशा में अभिमुख करेंगे, जिस दिन हम हंसने का आनन्द को अहोभाग्य का भी ईश्वर का विरोधी मानने की मूढ़ता छोड़ देगें उस दिन असली धार्मिकता का द्वार खुलेगा।

ओशो कहते है मै ऐसे मंदिर चाहता हूँ जो नृत्य के और हंसने के मंदिर हों। ऐसा ध र्म चाहता हूँ मैं जो मुस्कराहटों का प्रफुल्लता का प्रमुदित होने का धर्म है।

हंसते हुए आदमी ने कभी कोई पाप किया है, हंसते हुए आदमी ने कभी किसी की हत्या की है? या कि हंसते हुए आदमी ने किसी को गन्दी गाली दी हो, कि हंसते हुए आदमी ने कभी काई अत्याचार किया हो हंसते हुए आदमी के पास पाप का आना असंभव है। सारे पाप के पीछे उदासी दुख अंधेरा बोझ भारीपन क्रोध घृणा यह सब चाहिए।

एक बार हम हंसती हुई मुनष्यता को पैदा करें तो दुनिया के नब्बे प्रतिशत पाप अपने

1. तथैव पृष्ठ – 116

आप दूर हो जायेगें। जिन लोगों ने पृथ्वी को उदास किया है उन लोगों ने पृथ्वी को पापों से भर दिया।

ओशो ने कहा है, "दुःख सिकोड़ता है, आनन्द फैलाता है। दुख अहंकार में केन्द्रित करता है आनन्द अहंकार को तोड़ डालता हे और प्राणों की गंगा चारों ओर बह जाती है अगर परमात्मा की ओर जाना है तो सिकुड़ना नही फैलने का प्रयास चाहिए और फैलना इतना कि सब प्राण विस्तीर्ण हो जाये। लेकिन इसकी जो बुनियादी दृष्टि है जो बेसिक फिलॉसफी है वह है एक हंसता हुआ व्यक्तित्व और जितने आनन्दित आप होना चाहते हैं। स्मरण रखे उतना ही आनन्द आपको चारो तरफ बांटना होगा तब आनन्द आपकी तरफ बहना शुरू होता है और यही है धार्मिकता जो बांटते हैं वही लौट आता है हम जो देते हैं वही गूंजता है वापस और हमारे प्राणों की तरफ बह जाता है।" 1

'जीवन एक प्रतिध्वनि है हम जो कहते हैं हम जो करते हैं हम जैसे होते हैं। वह वैसा ही चारों तरफ से लौटना शुरू हो जाता है यह सम्भव है क्योंकि मैं आपकी आंख में प्रेम से झांकू और हजार गुना प्रेम वहां से वापस न आ जाये। यह हो सकता है किसी दिन कि दो और दो चार न हों परन्तु यह कभी भी नहीं हो सकता कि मेरी आंख से प्रेम आपकी तरफ जाये और वापसी में घृणा लौट आये यह कभी नही हो सकता।' 2

दो और दो चार न हो यह हो सकता है क्योंकि दो और दो का चार होना बिल्कुल काल्पनिक है बिल्कुल इमेजनरी है। वह कोई बड़ी सच्ची बात नही है दो और दो पाँच भी हो सकते हैं। छः भी हो सकते हैं क्योंकि गणित का सारा खेल हमारा बनाया हुआ है चूंकि हम नौ तक गिनती करते है नौ तक कि बनाकर रखे हैं, हमने एक से नौ तक यह मजबूरी नहीं है, कि एक से नौ तक फिगर हैं एंक से आठ तक भी हो सकती हैं। नौ तक हो सिर्फ एक आदत है हमारी कि हमने नौ तक बना लिया और सारी दुनिया में वह बात फैल गई। 3

हिन्दुस्तान से ही फैली यह बात। यह नौ तक के फिगर हिन्दुस्तान ने ही बनाये फिर

1. राष्ट्रजीवन की दिशा, सामजस्य पूर्ण वर्ण व्यवस्था — पृष्ठ – 134
   पण्ड़ित दीनदयाल उपाध्याय
2. राष्ट्रजीवन की दिशा, दोउन राह न पाई — पृष्ठ – 143, 144
3. तथैव — पृष्ठ – 144

वह फैल गयी लेकिन नौ कोई मजबूरी नही है। तीन से काम चल सकता है एक, दो, तीन, फिर आ जायेगा दस, ग्यारह, बारह, तेरह, फिर आजायेगा बीस काम चल जायेगा अगर एक से तीन तक हम हिसाब रखें तो दो और दो कितने होंगे? दो और दो दस हो जायेंगे यह हमारी कल्पना की बात है। गणित हमारे हाथ का खेल है गणित कोई जगत में कही सत्य नहीं है।

''लेकिन प्रेम हमारे हाथ की बात नहीं है। वह बहुत गहरा गणित है और बुनियादी सत्यों में से एक है अगर मै आपकी आँख में प्रेम से झांकू तो यह असंभव है कि प्रेम के अतिरिक्त और कुछ लौट आये अगर कुछ और लौटना हो तो उसका मतलब है कि मैने प्रेम पूर्ण होने में कुछ भी नही खर्च करना पड़ता। और मजा यह कि मिल कितना जाता है मुफ्त में इसका कोई हिसाब नहीं किया जा सकता।'' 1

लेकिन लोग इतने कंजूस हो गये हैं कि मुस्कराते भी नहीं इतनी कृपणता है कि जिसे देने में कुछ भी नहीं खर्च करना पड़ता उसे भी बहुत सोच समझ कर विचार करके मुस्कराते है। अजनबी को देखकर सख्त हो जाते हैं। मात्र इस सद्व्यवहार से कितना मिल जाता है।

लेकिन नही हम अत्यन्त कृपण हैं हमने उदास होने की कसम ली है हम आनन्दित नही हो सकते हमने जिद्द बांध ली है कि हम उदास ही रहेंगे। और फिर इन उदास हाथों को लेकर जायेगे प्रभू के पास इन उदास हाँथों में खिलते हुए फूल भी हम अगर ले जायेंगे तो वे भी कुम्हला जायेंगे और उदास हो जायेंगे वे गीत भी उदास हो जायेंगे क्योंकि गीत वही होता है जो गाने वाला होता है।

1. ओशो – साधनापथ पृष्ठ – 7

प्राथमिक शिक्षा

ओशो ने शिक्षा को समाज का सबसे सशक्त माधयम स्वीकार करते हुए उसे समाज के लिए सही अर्थों में स्थापित करने की सलाह दी है। न कि उसे तोड़ मरोड़ कर उसको विकृत करके उसका रूप ही परिवर्तित कर दे ऐसा करने का पुरजोर विरोधा किया है और कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन का सब कुछ स्वयं ही सीखना पड़ता है तो शिक्षा ऐसी हो जो प्रत्येक व्यक्ति को सब कुछ खोजने के लिए सिर्फ पुकार देती हो। कोई बंधाी धाारणाएँ देकर उसे घर न भेज देती हो कि तुम यह लेकर चले आओ तुम्हें जीवन मिल गया अभी तक ऐसा ही हो रहा है। हम सब बातें सिखा देते हैं कोई कोना ऐसा नहीं रहता जिसे अनसीखा छोंड़ दें जहाँ खुद व्यक्ति को सीखना पड़ता हो निश्चित ही कुछ बातें सिखानी ही पड़ेंगी। रास्ते पर बायें चलना है कि दायें चलना सिखाना पड़ेगा रसायन, भौतिक और गणित सिखाने पड़ेंगे भूगोल और इतिहास सिखाने पड़ेंगे। यह कोई व्यक्ति अपने लिए खोज नहीं लेगा यह सब सिखाया जाय पर जीवन नहीं सिखाया जाय जीवन के बावत् धाारणा ही न दी जाय जीवन के बावत सिर्फ खोज की अन्वेषण की जिज्ञासा दी जाय। 1

इन्क्विजिटिव माइंड पैदा किया जाय सब सिखा दो, जो व्यर्थ है उसे सिखा देने में कोई हर्जा नहीं है। वह जो दूसरे से सीखना पड़ता है वह हमेशा उधाार होता है लेकिन जो जीवन का परम मूल्य है जिसे प्रत्येक को साक्षात्कार करना है, वह मत सिखाओ, वह सिखाओ ही मत उसके बावत् प्रश्न जगाओ, उसके बावत् चर्चा जगाओ उसके बावत् हवा पैदा करो, संदेह पैदा करो बस इतना ही करना चाहिए कि विद्यालय से एक बच्चा ख्याल लेकर आये कि जीवन को खोजना है और ऐसे ही नहीं मर जाना है नहीं तो व्यर्थ हो गया, मेरे जीने का कोई अर्थ नहीं वह सब सीख कर आयें, जीवन अनसीखा न रह जाये। अब यह जो हमारी शिक्षा है वह मस्तिष्क को रोकने वाली है क्लोज करने वाली है खोलने वाली नहीं है। 2

इसलिए अधिाकतम लोग उनके भीतर जो संभावना है वह पत्थर होकर रह जाता है। इसलिए दुनिया में अन्वेषक अपवाद हैं, कभी पैदा होता है, वह हमसे बच जाता है, हमारी शिक्षा से, किसी तरकीब से, वह बिल्कुल ही एक्सीडेंटल है कि विश्व विद्यालय से निकलते - निकलते किसी व्यक्ति के भीतर अन्वेषण की सहज स्थिति बनी रह जाये। वे बिगड़ ही जाने वाली हैं। क्योंकि सारा इन्तजाम उल्टा है। हम सब तरह से थोपते हैं। असल में थोपना बहुत आसान पड़ता है। और श्र)ालु चित्त को पैदा कर लेना शिक्षक के लिए बड़ी सुबिधाा की बात है। क्योंकि इन्क्वायरिंग माइंड को पैदा करना एक झंझट, उपद्रव पैदा करना है। क्योंकि हम नहीं जानते कि एक दा उसे अगर हम पैदा करेंगे तो वह एक ही चीज में इन्क्वायर करेगा। खोजी दिमाग तो जीवन के हर पहलू पर खोज करेगा। तो समाज भी डरता है इस बात से कि सब चीजें पूँछी जायें क्योंकि बहुत सी चीजें हैं जो सरासर झूँठ हैं और समाज ने उनको अपनी व्यवस्था के लिए थोप रखा है अगर पूँछने वाले बच्चे

1 - शिक्षा और जागरण सम्पादक नरेन्द्र बोधिा सत्व पृष्ठ 85

2- तथैव पृष्ठ 86

पैदा हुए तो सब झूँठ पकड़ जायेंगे, इसलिए पूँछने वाला बच्चा स्वीकार नहीं है।

बच्चे की प्राथमिकी तो माँ बाप से शुरू होती है और माँ ही नहीं चाहती कि बच्चा सब बात पूँछे क्योंकि बहुत कुछ जो उन्होंने छिपा रखा है जो पूँछने पर वह मुश्किल में पड़ जायेंगे। तो जब तक हम एक ऐसा शिक्षक ऐसा पिता और एक ऐसे समाज की हवा पैदा न करें जो अज्ञान को स्वीकार करने की विनम्रता न रखती हो तब तक हम इन्क्वायरिंग माइंड पैदा नहीं कर सकते हैं क्योंकि खोजी दिमाग हर एक को अज्ञात में पहुँचा देता है। अतः हम पहले प्रश्न पर रोक लेना चाहते हैं जो कहा जा रहा है, चुपचाप मान लो तो अब तक का सारा शिक्षा शास्त्र मनुष्य की प्रतिभा को खोज पूर्ण बनाने में सहयोगी नहीं हुआ है शिक्षा ने सारी की सारी व्यवस्था की है कि आदमी खोज ही न सके, बन्द हो जाये इसीलिए हम बच्चों को मार रहे हैं।

"जिनको हम विद्यालय कह रहे हैं वह बहुत गहरे में एक अद्भुत किस्म के काराग्रह हैं और हम वहाँ उनके लिए एक ऐसी ज्वैल्सी पैदा कर रहे हैं कि वह कभी पूँछे ही नहीं वह डर इस कारण है कि हमने बहुत कुछ झूँठ पर आधार रखे हुए हैं और वह झूँठ सब संदिग्ध हो सकते हैं। बच्चा पैदा होते ही अन्वेषक हो जाता है मरता हुआ बूढ़ा इन्क्वारिंग नहीं रह जाता, बच्चा इन्क्वारिंग होता है छोटी - छोटी चीजों को पूँछता है और जानना चाहता है और उसके जानने से हम डरते हैं। सच्चाई यह है कि छोटा सा बच्चा जो पूँछता है बूढ़े से बूढ़ा ज्ञानी भी उसके सभी प्रश्नों का जवाब नहीं दे सकता तब दो उपाय हैं या तो वृद्ध जन अपने अज्ञान को स्वीकार करें तो उनका अहंकार उन्हें नहीं करने देता और या फिर बच्चों के पूँछने को वे रोकें ताकि उनके अहंकार की भी सुरक्षा हो जाय और उपद्रव का भी प्रश्न न उठे। प्राथमिक शिक्षा से ही सिखाना शुरू करते हैं कि गुरू का आदर करना चाहिए लेकिन ओशो कहते हैं यह बात ही गलत है असल बात उल्टी है असल बात यह है कि जो हमारे आदर को आकर्षित कर ले वह गुरू है, गुरू को आदर देने का सवाल ही नहीं है। पिता को आदर देना चाहिए यह बात भी फिजूल है पिता ऐसा होना चाहिए कि आदर पाये। लेकिन पिता ने एक बच्चे को पैदा कर लिया है और समझ लिया है कि मामला खत्म हो गया। अब वह आदर के लिए भयभीत कर रहा है श्रद्धा खड़ी कर रहा है और मन को तोड़ रहा है।" 1

ओशो ने एक घटना का जिक्र करते हुए लिखा है कि एक लड़के को मैं जानता हूँ उसने अपने पिता से कहा कि आप लगातार मुझे कहते रहते हैं कि मैंने तुम्हें पैदा किया तुम्हें बड़ा किया तुम्हारा लालन - पालन किया तो क्या मुझे पैदा करने के लिए आपने कोई विशेष श्रम किया या मैं आपके भोग विलास और आनन्द के बीच की आकस्मिक घटना हूँ। पिता तो नाराज हो गया उसके पिता ने आकर कहा यह लड़का आपके पास आता है और इस तरह कि बातें सीखता है। यह हमसे पूँछता है कि हम आकस्मिक घटना तो नहीं हैं, तो बात तो वह ठीक पूंछ रहा है।

1 - शिक्षा और जागरण पृष्ठ 87

कुल मिलाकर स्तर चाहे प्राइमरी हो या विश्वविद्यालयीन उत्तर हमें ठीक ही देना पड़ेगा अन्यथा बालक का खोजी चित्त अन्धेरे में भटक जायेगा और वह खोज तो अवश्य करेगा परन्तु उसके खोजने का माधयम होगा वह विकृत होगा।

माध्यमिक शिक्षा

ओशो माधयमिक शिक्षा के सरकारीकरण के विरूद्ध हैं वे माधयमिक शिक्षा को सरकार के विभाग के रूप में स्वीकार करना नहीं चाहते माधयमिक शिक्षा को मैनेजरों और प्रबन्धा समिति की निजी सम्पति बनये जाने के विरूद्ध हैं क्योंकि मैनेजमेंट का दखल भी शिक्षक को स्वतन्त्रता पूर्वक अधयापन में एक बड़ी बाधा के रूप में देखकर वे कहते हैं, "इससे तो जो शिक्षक अपने मन की बात विद्यार्थी के मानस पटल पर रखने में सक्षम नहीं हो सकेगा तथा प्रबन्ध समिति भी शिक्षा का माधयम न होकर एक व्यापार का माधयम ही बन पायेगा।" उनका मानना है कि माधयमिक शिक्षा का अर्थ ही होता है शिक्षक तथा छात्र का माधयम इसलिए ओशो की शैक्षिक उद्येश्यों की पूर्ति के लिए ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाना चाहिए जिसके द्वारा ऐसी युवा पीढ़ी का निर्माण हो सके जो समाज की हर सत्य बात का समर्थन कर सके तथा समाज के बीच में निडर चट्टान की तरह खड़ा होकर देश तथा मानवता को झकझोरने का कार्य कर सके।

इकबाल ने गीत गाया है " कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी "
मैं उस गीत को पढ़ रहा था मुझे लगा हस्ती भी हो तो मिटे और हस्ती मिट ही गयी हो और मिटने को कुछ बचा ही नहीं तो अब क्या मिट सकती है। यह देश हजारों साल से मरा हुआ देश है और इस देश को पुनर्जीवन नया जीवन नयी आत्मा खोजनी जरूरी है। निश्चित ही शिक्षक इस सोच में सहयोगी बन सकता था, बना नहीं अब तक तो शिक्षक मशालची नहीं सिद्ध हुआ है अब तक वह पुराने समाज का एजेन्ट ही रहा है वह जो मर गया समाज है सड़ गयी परम्परा है शिक्षक उसको ही नयी पीढ़ी के मस्तिष्क में डालने का अब तक सघन माधयम रहा है शिक्षक नये जगत नयी मनुष्यता का माधयम बन सकता है अब तक बना नहीं इस बात को पहले समझ लेना जरूरी है शिक्षक का अब तक काम क्या रहा है समाज ने शिक्षक से अभी तक क्या काम लिया है। समाज यही कहता है कि शिक्षक से हम बच्चों की शिक्षा का और ज्ञान देने का काम हम लेते हैं लेकिन बहुत गहरे में समाज पुरानी सारी बीमारियाँ सारे अज्ञान सारे अन्धाविश्वास वो भी शिक्षक के माधयम से नयी पीढ़ी के भीतर डालने का काम लेता है।

समाज बर्दाश्त नहीं कर सकता कि शिक्षक क्रान्तिकारी हो क्योंकि समाज चाहता है कि शिक्षक कभी भी क्रान्तिकारी न हो क्योंकि जिस दिन शिक्षक क्रान्तिकारी होगा उसी दिन समाज रूपान्तरित हो जायेगा नया समाज पैदा हो जायेगा शिक्षक का क्रान्तिकारी होना पूरे समाज के बदले जाने का बुनियादी कारण हो जायेगा।

इसीलिए शिक्षक को हमेशा प्रतिक्रिया वादी प्रतिगामी बनाने की पूरी चेष्टा की गयी है। उसे बहुत सम्मान दिया गया है यह सच है लेकिन समाज शिक्षक को सम्मान तभी तक देता है जब तक उसके अन्दर कोई क्रान्ति नहीं दिखाई देती क्रान्ति की किरण दिखाई पड़ी कि समाज शिक्षक की गर्दन दबाना शुरू कर देगा। यह जानकर आपको हैरानी होगी कि दुनिया में शिक्षक के जगत से न कभी कोई क्रान्तिकारी विचार पैदा हुआ है न कोई नया दृष्टिकोण, शिक्षक के पूरे समूह को क्योंकि बड़ा समूह है और सबसे शक्तिशाली समूह है क्योंकि उसके हाँथ में नयी पीढ़ी का सारा मष्तिस्क और सारी आत्मा है यह क्रान्तिकारी हो जायेगा तो पुराने समाज और नयी पीढ़ी में एक दरार पैदा हो जायेगी क्योंकि शिक्षक ही हस्तान्तरण करता है पुराने समाज को नयी पीढ़ी तक, शिक्षक बीच की कड़ी हैं जिससे अतीत भविष्य में प्रवेश करता है शिक्षक के हाँथ में बहुत कुछ है कि वह क्या करे लेकिन शायद उसे क्रान्ति का अग्रवाहक होने का ख्याल ही नही है।

शिक्षक विद्रोही नही है और ओशो की दृष्टि में जो विद्रोही नही है वह शिक्षक हो ही नही सकता उसे शिक्षक होने का अधिकार ही नहीं है क्योंकि विद्रोही हुए बिना ज्ञान की दिशा में आँखें ही नही खुल सकती मनुष्य की आत्मा अपने खोल को छोड़कर बाहर आ ही नही सकती और जो ज्ञान जो शिक्षा व्यक्ति की स्वतन्त्र आत्मा को जन्म नही दे सकती उसे शिक्षा, कहें उसे ज्ञान कहें, वह बोझ होगी जानकारी होगी इन्फारमेंशन होगी लर्निंग होगी लेकिन शिक्षा नही होगी शिक्षा तो आत्मा का अविष्कार बनना चाहिये लेकिन वह नहीं हो सकी।

"भारत के समाज की जिन्दगी तालाब की जिन्दगी हो गयी है एक नदी की जिन्दगी नही है हाँ तालाब की जिन्दगी एक अर्थों सुरक्षित होती है सिक्योर होती है न कहीं आना है न कहीं जाना है न कहीं तकलीफ है न रास्ते की अड़चनें हैं न पहाड़ों को पार करना है न अज्ञात सागर जो मिलेगा या न मिलेगा उसके सपने देखने हैं अपनी जगह बन्द अपनी जगह निश्चित तालाब का अपना सुख है भारत तालाब का सुख भोग रहा है सरिता का संघर्ष नहीं है और यह सुख भेगने के हम इतने आदी हो गये हैं कि हमने अब तक किसी भी तरह के खतरे को उठाना हजारों साल से बन्द कर दिया है।" 1

भारत का शिक्षक अगर यह तय करे कि हम लीक पर बंधे रास्ते से मुक्त करेंगे नयी पीढ़ी को तो भारत की आत्मा का जन्म हो सकता है अन्यथा कोई उपाय नही है हम आने वाली पीढ़ी के बच्चों से कहेंगे तुम जाओ खतरे हैं लांघो समुद्रों को चढ़ो पहाड़ों पर, यात्रा करो आकाश की लेकिन नहीं, छोटे से अंधेरे में भी जाने से हम बच्चों को रोकते हैं कि अंधेरे में मत चले जाना रात ज्यादा हो गयी है, आई हुई नदी में मत चले जाना एवरेस्ट में चढ़ने की जरूरत क्या है, जिनका दिमाग खराब है वे चढ़ते हैं वहाँ क्या रखा है वहाँ सिर्फ बर्फ है इंगलिश चैनल में सैंकड़ों लड़के लड़कियाँ रोज पार करते हैं और हम हैं कि एक नाला भी पार करने से डरते हैं पहले नाप-तौल कर लेते हैं कि गहराई कितनी है और पता लगा लेते हैं कि हमारे पूर्वजों ने इसे पार किया है कि नहीं अगर पूर्वज नहीं गये तो हम तो पीछे चलने वाले

1 शिक्षा नए प्रयोग संकलन अमृम प्रेम पृष्ठ 16

हैं हम अपनी तरफ से सीधे नही जा सकते शिक्षक को एक काम करना है वह बहुत महत्वपूर्ण है वह यह है कि वह पुराने के मोह से भारत को मुक्त करवा दें और शिक्षक को जानना चाहिये कि वह अपराधी है अगर वह पुराने के मोह को बच्चे में पैदा करने की कोशिश कर रहा है। नये का निमंत्रण, नये का बोध, नये का स्वागत अपरिचित का आकर्षण, नये का बुलावा जो दूर और अज्ञात है उसकी पुकार सुनने को बच्चे को तैयार करना। रूस अमेरिका के बच्चे चाँद और तारों पर अपनी बस्तियाँ बसाने का विचार करते हैं और भरत के रामलीला देखने के सिवाय और कुछ नही करते राम बहुत प्यारे हैं रामलीला भी बहुत प्यारी है। लेकिन कब तक देखेंगे राम भी घबरा गये होंगे अब तक ये दुष्ट क्यों मेरे पीछे पड़े हैं हर साल तो इस तरह जहाँ हमारे पुरखों ने पैर रखा है अगर हम भी वहीं पैर रख रहें हैं तो हमारे होने का प्रयोजन क्या है। हमें उन रास्तों पर पैर रखना चाहिये जहाँ हमारे पुरखे कभी नही गये उन दृष्यों को देखेंगे जहाँ के दृष्य हमारे पुरखें ने कभी नहीं देखे। तो अगर हम चाहते हैं कि भारत पुनरूज्जीवित हो तो शिक्षक को एक महत्वपूर्ण शायद इससे महत्वपूर्ण कोई काम नही है और दूसरा कोई कर भी नही सकेगा सिवाय शिक्षक के यह तो शिक्षक को ही ख्याल आ जाये कि नये बच्चों को पुराना मत होने दें इससे पहले वे पुराने हो जायें नये बीज बो दो इन पर पुराना बोझ आ जाये उन्हे नये संगीत सुना दो जिससे वे जग जायें और नये की खोज में लग जायें।

एक अकेली लड़की का सड़क से निकलना मुश्किल है और लड़के उसे धाक्के मारेंगे, कंकड़ मारेंगे, गालियाँ बकेंगे तो ये लड़के जिम्मेदार नहीं हैं। ये वे माँ-बाप शिक्षक जिम्मेदार हैं उन्होंने सेक्स के सम्बन्ध में एक भय, डर, झूठ, असत्य का पर्दा डाला और लड़के और लड़कियों को इतने फासले पर रखा बड़ा किया, इतना दूर रखा कि स्वभाविक हो गया कि लड़के पत्थर मारें। यह पत्थर मारना पास आने की तरकीब है और चूंकि सीधा हाँथ से लड़की को छूना सम्भव नहीं रहा इसलिए पत्थर फेंककर लड़की को छूना है। और ओशो का मानना है कि एक लड़की को हाँथ से छूना एक बहुत प्रीतिकर बात हो सकती है और पत्थर मारकर छूना अत्यन्त घृणित अत्यन्त क्रूर कृत्य हो गया। अगर लड़के और लड़कियाँ साथ बड़े हों साथ खेलें, दौड़ें, गिरें, तैरें, पहाड़ों पर चढ़ें, एक दूसरे को जाने एक दूसरे के शरीर को पहचाने तो कभी यह सम्भव नहीं है कि कोई लड़का इस तरह की हरकत करे विश्वविद्यालय में लड़के - लड़कियाँ एक साथ पढ़ें, बैठें, डिस्कस करें मामला सामान्य होगा। ओशो कहते हैं कि स्वतंत्रता को मैं पूरे समग्र जीवन को बेशर्त देना चाहता हूँ किसी को हक नहीं है किसी को रोकने का लेकिन स्वतंत्रता स्वच्छन्दता नहीं है और यह भी बड़े मजे की बात है कि स्वतन्त्र व्यक्ति कभी स्वच्छन्द होता ही नहीं है इसलिए उनका मानना है कि स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि उस से ही एक अनुशासन पैदा हो जाये जो ऊपर से नहीं थोपा गया तो बच्चे कभी भी कोई गलत कार्य नहीं कर सकते।

शिक्षक इस आने वाली जिन्दगी में तमाशबीन की तरह साबित होगा वह अपने स्कूल में रोज पढ़ाता रहेगा दो और दो चार वह क, ख, ग से शिक्षा देता रहेगा और राजनीतिज्ञ एटमबम बनाते रहेंगे, वह बच्चों को गणित-भूगोल सिखाता रहेगा और राजनीतिज्ञ सारे भूगोल को मिटाने की तैयारी करते रहेंगे दो और दो चार

होते हैं यह अवश्य ही सिखायें लेकिन उतना ही काम शिक्षक का नहीं है वह क्रान्ति का जन्मदाता भी बनना चाहिए तभी वह शिक्षक बनता है।

शोधार्थी का मानना है भारत के पास शिक्षक अच्छे हैं लेकिन सोये हुए शिक्षक हैं भारत के पास बुद्धिमान शिक्षक हैं लेकिन वह क्रान्तिकारी नहीं हैं वह समाज का उपकरण मात्र बन कर रह गये हैं सारी दुनिया में भारत में भी और सारी दुनिया के राजनीतिज्ञों ने शिक्षकों को जिन्दगी से काट कर अलग रख दिया है। मैं कहता हूँ शिक्षकों को जिन्दगी की बावत चिन्ता नहीं करनी चाहिए राजनीतिज्ञ बहुत होशियार है वह जानता है कि शिक्षक के हाँथ बड़ी ताकत है इतनी कि वह सारे समाज को रूपान्तरित कर देगा।

''साक्रटीज ने कहा है - ह्र शिक्षक में उसे कहता हूँ जो व्यक्ति को नई आत्मा के जन्म में मिडवाइफ का दाई का काम करे। नई आत्मा के जन्म देने में योग बने अगर वह आप नहीं बन रहे हैं तो शिक्षक कहलाने का हम कोई हक नहीं रखते।'' 1

1 ओशो शिक्षा और विद्रोह पृष्ठ 80—81

अर्थकारी शिक्षा –

महत्वकांक्षा पर आधारित शिक्षा मूलतः हिंसा पर आधारित शिक्षा है। वह व्यक्ति की गरिमा नहीं है उसमें व्यक्ति की हीनता है। दुनिया में हर व्यक्ति को यह भय होता है कि कहीं मैं 'नो बडी' न हो जाऊँ कहीं 'न कुछ' न हो जाऊँ मुझे कुछ न कुछ होना चाहिए मेरा नाम होना चाहिए, मेरा पद होना चाहिए, मेरी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, मेरा मकान होना चाहिए, मुझे कुछ होना चाहिए। यह पागलपन कौन पैदा करता है। यह हमारी शिक्षा पैदा करती है। उचित है वह शिक्षा जो प्रत्येक व्यक्ति को यह कह सके कि तुम जो हो वह पर्याप्त हो, तुम्हें कुछ और होने की आवश्यकता नहीं है और अपनी पूरी सम्भावनाओं को खोलो और आनन्द को अनुभव करो तुम किसी के साथ दौड़ में मत पड़ो किसी के साथ दौड़ने का कोई कारण नहीं है। कोई भी कारण नहीं है। अगर शिक्षा इस बात का बोध करा सके कि वह जो है पर्याप्त है और उस पर्याप्त होने के अनुभव को करा सके जो उसके पास है उसके पूरे विकास की सुविधायें जुटा सके महत्वाकांक्षा की नहीं विकास की, प्रतियोगिता की नहीं प्रेम की, दूसरों के साथ संघर्ष की नहीं वरन स्वंय के आत्मजागरण की और चैतन्य की, अगर आयोजन कर सके तो शिक्षा सारे जगत में एक मूलभूत क्राँति लाने में समर्थ हो सकती है और जब तक शिक्षा ऐसी नहीं होगी तब तक अर्थ के मामले में चाहे जितनी प्रगति करलें चाहे जितना धन कमा लें सही अर्थों में शिक्षा नहीं मानी जायेगी।

जो हमारे पास है, और आपके पास कौन सी कमी है। अगर वह महत्वाकांक्षा से न भर जाये तो दुनिया में कोई भी कमी नहीं है। अगर वह महत्वाकांक्षा के ज्वर से रूष्ट न हो जाय तो उसके पास बहुत है लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता वह दिखाई कैसे पड़ेगा।

"हमें तो वह दिखाई पड़ता है जो दूसरों के पास है जो आदमी महत्वाकांक्षी है उसे दूसरों के पास क्या है वह दिखाई पड़ता है। जो उसके पास है वह दिखाई नहीं पड़ता और मजा यह है जो दूसरों के पास है वह उसे दिखाई पड़ता है अगर कल उसे मिल जाये तो उसे वह दिखाई पड़ना बन्द हो जायेगा। उसे फिर वह दिखाई पड़ने लगेगा जो दूसरों के पास है। ओशो ने कहा है आपके पास दो हाँथ हैं, दो आँखे है, शरीर है, सासें चलती हैं, बड़ी संम्पदा है और इस बड़ी संम्पदा से बहुत कुछ पैदा हो सकता है।" 1

ओशो ने अपने संस्मरण में लिखा है तैमूर लंग ने एक छोटे से राज को जीत लिया उस राज्य का जो बादशाह था वैजल वह बन्दी बना कर लाया गया तो तैमूर उसे देखकर बेतहाशा हँसने लगा स्वाभाविक है कि वैजल को गुस्सा आ जाये, हार गया तो भी क्या आखिर था तो बादशाह ही उसने भी गुरूर से सिर उठा कर कहा तैमूर नासमझी न कर जो दूसरों की पराजय पर हँसता है उसे अपनी पराजय पर आँसू बहाने पड़ते हैं। लेकिन तैमूर ने कहा नहीं मैं इसलिए नहीं हँसता हूँ, मैं इतना नासमझ नहीं कि इस छोटी सी जीत पर हँसू, हँसता मैं किसी और बात पर हूँ, हँसता मैं इसलिए हूँ कि मैं लंगड़ा हूँ और तुम कांने हो और यह भगवान भी कैसा है लंगड़ों, कांनों को बादशाहतें देता है।

1 ओशो – वर्ल्ड फरवरी 2000

ओशो ने कहा है अगर मैं वहाँ मौजूद होता तो तैमूर को कहता कि लंगड़ों और कानों के सिवाय भगवान से कोई बादशाहतें माँगता ही कौन है कोई स्वस्थ व्यक्ति बादशाह नहीं होना चाहेगा। कोई स्वस्थ व्यक्ति राजगनीतिज्ञ नहीं होना चाहेगा। लंगड़े और कांने चित की जो हमारी स्थितियाँ हैं हमारे भीतर जो कमजोरियाँ हैं। उनको छिपाने के लिए हम दौड़ते हैं, छिपाने के लिए हम दौड़ करते हैं। अर्थ पर आधारित शिक्षा मूलतः हिंसा पर आधारित शिक्षा है वह व्यक्तित्व की गरिमा नहीं है उसमें व्यक्ति की हीनता है।

ओशो ने कहा है अगर शिक्षा ठीक और सम्यक हो तो चीजों के साथ जो पद और प्रतिष्ठा जुड़ी है वह विलीन हो जानी चाहिए। एक आदमी जूते सीता है, एक आदमी रोटी बनाता है, एक आदमी ईंटें बनाता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता ये सारे लोग जिन्दगी को मिलजुल कर बना रहे हैं। जिन्दगी में सब जरूरी है इससे एक मुल्क में हुकूमत करने वाले लोग जरूरी हैं और कोई किसी से कम नहीं है और किसी का ओहदा कम नहीं है। जिन्दगी एक सहयोग है, इसमें कोई ऊपर नहीं है कोई नीचे नहीं है। प्रेसिडेन्ट से चपरासी नीचे नहीं है और न होना चाहिए और जबतक चपरासी और प्रेसिडेन्ट का ख्याल रहेगा तब तक मनुष्य के मन को शांन्ति मिलनी बहुत कठिन है क्योंकि चपरासी तब प्रेसीडेन्ट बनना चाहेगा। स्वाभाविक है होना चाहेगा अगर वह खुद न होना चाहेगा अपने बच्चों को बनना चाहेगा जिस दिन हमारी शिक्षा कामों से पदों की प्रतिष्ठाओं को नहीं जोड़ेगी एक संगीतज्ञ का जो मूल्य है जूते सीनेवाले का भी उतना मूल्य है। सवाल यह नहीं है कि कौन क्या करता है? सवाल यह है कि कौन कैसे क्या करता है?

समीक्षात्मक विचार

वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें गलत मन शुरू से पैदा कर देती है चीजों की स्वीकृति नहीं आती बल्कि दौड़ आती है दूसरों के पास जो है वह ख्याल आता है खुद के पास जो है उसका बोध नहीं आता और तब जीवन एक गलत ढर्रे पर शुरू हो जाता है। यह गलत शिक्षा का परिणाम है। ठीक-ठीक शिक्षा व्यक्तित्व में व्यक्ति के पास जो है उसमें विकास को सिखाएगी क्योंकि जहाँ कम्परीजन आया वहीं कठिनाई शुरू हो गयी। एक आदमी चमार है उसका जन्मदिन नहीं मनाता लेकिन एक आदमी राजनीतिज्ञ है उसका जन्मदिन मनाया जाता है क्यों ? वह बड़े पदों पर है उसकी कुर्सी इतनी ऊँची है हमने चीजों को गलत ढंग से कम्परीजन करके सारा विकृत कर दिया है।

वर्तमान समय में सम्पूर्ण देश में अनेकानेक शिक्षण संस्थाएं शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं जिनका एक मात्र उद्देश्य रहता है विद्यार्जन के बाद छात्र को धनार्जन के योग्य बनाना। जिसका परिणाम देखने को यह मिल रहा है कि मानवीय गुणों का निरन्तर ह्रास हो रहा है। शोधकर्ता की दृष्टि में ऐसे पाठ्क्रम का निर्माण किया जाना चाहिए जो छात्रों के लिये अर्थोपार्जन में सहायक तो सिद्ध हो सके लेकिन जीवन के प्रति अतिशय अर्थवादी दौड़ में न पड़े। अतः पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा शरीरिक, व्यवसायिक, मानसिक, नैतिक एवं अधयात्मिक उद्देश्यों की पूर्ती की जा सके। क्योंकि जब तक उपर्युक्त मानबिन्दु व्यक्ति के जीवन में परिलक्षित नहीं होते हैं। उसको शिक्षित या सभ्य समाज का पूर्ण मनुष्य नहीं माना जा सकता है।

ओशो एवं स्त्री शिक्षा

समाज के मूलतः दो ही अंग होते हैं नर व नारी तथा दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं एक का अस्तित्व दूसरे के बिना अधूरा है। समाज में परिवर्तन विकास या समृद्धता दोनों के सम्मलित प्रयास पर निर्भर है। नारी को सृष्टि की जननी कहा गया है। अतः उसके विकास की उपेक्षा किसी दशा में उचित नहीं है। जवाहर लाल नेहरू ने भी स्त्री शिक्षा पर जोर देकर कहा है लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है परन्तु लड़की की शिक्षा पूरे परिवार की शिक्षा है।

मनुष्य की पूरी जाति, मनुष्य का पूरा जीवन, मनुष्य की पूरी सभ्यता और संस्कृति अधूरी है क्योंकि नारी ने उस संस्कृति के निर्माण में कोई भी दान, कोई भी कंट्रीब्यूशन नहीं किया। नारी कर भी नहीं सकती थी पुरूष ने उसे करने का कोई भी मौका नहीं दिया। हजारों वर्षों से नारी, पुरूष से नीचे छोटी और हीन समझी जाती रही है। कुछ तो देश ऐसे थे जैसे चीन में हजारों वर्ष तक यह माना जाता रहा कि स्त्रियों के भीतर कोई आत्मा नहीं होती। इतना ही नहीं स्त्रियों की गिनती जड़ पदार्थों के साथ की जाती थी आज से 100 वर्ष पहले अपनी पत्नी की हत्या पर किसी पति को कोई भी दण्ड नहीं दिया जाता था क्योंकि पत्नी उसकी सम्पदा थी उसे जीवित रखे या मार डाले इससे कानून और राज्य का कोई मतलब नहीं।

भारत में भी स्त्री को पुरूषों के सम्मान में, पुरूषों की समानता में कोई अवसर और जीने का मौका नहीं मिला। पश्चिम में भी वही बात थी चूंकि सारे शास्त्र और सारी सभ्यता सारी शिक्षा पुरूषों ने निर्मित की है। इसलिए पुरूषों ने अपने आप को बिना किसी से पूछे श्रेष्ठ मान लिया है। स्त्री को श्रेष्ठता देने का कोई कारण नहीं है। स्वभावतः इसके घातक परिणाम हुए सबसे बड़ा घातक परिणाम तो यह हुआ कि स्त्रियों के जो भी गुण थे वह सभ्यता के विकास में सहयोगी नहीं हुए।

सभ्यता अकेले पुरूषों ने विकसित की अकेले पुरूषों के हाँथ से जो सभ्यता विकसित होगी उसका परिणाम युद्ध के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता पुरूषों की प्रवृत्ति, में पुरूष के चित्त में ही हिंसा का क्रोध का, युद्ध का कोई अनिवार्य हिस्सा है।

''नीत्से ने आज से कुछ ही साल पहले यह घोषणा की थी कि बुद्ध और क्राइस्ट स्त्रैण रहे होंगे क्योंकि उनहोने प्रेम और करूणा की इतनी बातें कही हैं वे बातें पुरूषों के गुण नहीं है। नीत्से ने क्राइस्ट को और बुद्ध को स्त्रियों जैसे कहा है। एक अर्थ में शायद उसने ठीक बात ही कही है। वह इसलिए की जीवन में जो भी कोमल गुण है जीवन के जो भी माधुर्य से भरे सौन्दर्य की जो भी भावना है वह स्त्री का अनिवार्य स्वभाव है। मनुष्य की सभ्यता प्रेम और सौन्दर्य से नहीं भर सकती अतः कठोर और क्रूर हो गयी और अन्तिम परिणामों में केवल युद्ध लाती है। इसके पीछे दो बातों का ही हाँथ है एक तो स्त्री के गुणों को कोई सम्मान नहीं दिया गया और दूसरा स्त्री ने कभी अपने गुणों को विकसित करने की कोई सक्रिय उपाय नहीं किये।'' 1

1 नारी और क्रान्ति सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ 134

ओशो ने कहा है कि यह जानकर आपको हैरानी होगी कि अगर कोई स्त्री पुरूषों के गुणों में आगे हो जाये तो उसे जॉन आफ आर्क या रानी लक्ष्मीबाई बहुत बहादुर, बहुत सम्मान योग्य स्त्री हैं लेकिन क्या कभी आपने यह सुना है कि कोई पुरूष स्त्रियों के गुणों में विकसित हो जाये तो कभी उसका कोई सम्मान हुआ था ? अगर कोई पुरूष स्त्रियों जैसा प्रतीत हो तो उसका अपमान होगा और कोई स्त्री पुरूष हो जाये तो उसका सम्मान होगा और चौराहे में उसकी मूर्तियाँ खड़ी की जायेंगी। पुरूषों ने अपने गुणों को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया है और स्त्रियों ने भी उस पर स्वीकृति दे दी यह बहुत आश्चर्य की बात है स्त्रियों ने कभी सोचा भी नहीं कि उनके व्यक्तित्व की भी कोई गरिमा अपना कोई स्थान, अपनी कोई प्रतिष्ठा है। इन तीन चार हजार वर्षों की गुलामी के बाद एक विद्रोह एक प्रतिक्रिया एक रिएक्शन पैदा होना शुरू हुआ और स्त्रियों ने यह घोषणा करना शुरू कर दी कि हम पुरूषों के समान हैं और बराबर का अधिाकार मांगती हैं लेकिन फिर दुबारा भूल हुई जा रही है जिसका आपको शायद पता नहीं उस भूल के संम्बन्ध में भी समझ लेना जरूरी है।

ओशो कहते हैं कि स्त्रियाँ न तो पुरूषों से हीन हैं न समान हैं स्त्रियाँ पुरूषों से भिन्न हैं। न उनके नीचे होने का सवाल है न उनके समान होने का सवाल है जब तक स्त्रियाँ खतरनाक हैं पश्चिम में स्त्रियों ने एक बगावत की है, एक विद्रोह किया है और परिणाम यह हुआ है कि स्त्रियाँ पुरूषों जैसी होने की होड़ में पड़ गयी हैं जो पुरूष करते हैं और जैसे पुरूष हैं वैसे ही स्त्रियों को भी हो जाना चाहिए जो शिक्षा पुरूषों को मिलती है वही स्त्रियों को भी मिलनी चाहिए अगर पुरूष युद्ध के मैदान में लड़ने जाते हैं तो स्त्रियों को भी युद्ध में सैनिक बनकर खड़ा होना चाहिए।

जो शिक्षा पुरूषों को मिलती है वही शिक्षा स्त्रियों को देना अत्यन्त खतरनाक है एकदम गलत है। उचित है कि पुरूष गणित सीखे, विज्ञान सीखे, लेकिन बहुत उचित है कि स्त्री कुछ और सीखे जो पुरूष नहीं सीख रहा। उसे जीवन में कुछ और करना है उसके ऊपर जीवन ने कुछ और दायित्व सौंपा है। कोई दूसरी रिस्पांसबिलिटी है उसके ऊपर प्रेम के स्रजन का कोई दूसरा भार है। गणित सीख लेने से दुकानें चल सकतीं है बच्चे नहीं बड़े किये जा सकते साइंस से फैक्ट्री चलती होगी परिवार नहीं चल सकते और परिणाम यह हुआ कि स्त्री को पुरूष जैसी दीक्षा ओर समानता के भाव ने स्त्रियों से जो भी उनका महत्वपूर्ण मात्रत्व भाव था वह सब नष्ट किया जा रहा है। 1

शायद हमें इस बात का खयाल नहीं कि स्त्री और पुरूष के चित्त में बुनियादी भेद और भिन्नता है और यह भेद अर्थपूर्ण है पुरूष और स्त्री का सारा आकर्षण उसी भिन्नता पर निर्भर है वे जितनी भिन्न हैं जितनीं दूर हों उतना ही उनके भीतर आकर्षण ग्रेविटिव होगा जितना उनका फासला हो उनकी भिन्नता हो जितने उनके व्यक्तित्व अनूठे हों उतनें वे एक दूसरे जैसे नहीं बल्कि एक दूसरे के परिपूरक हों।

1 तथैव पृष्ठ 136

पश्चिम में परिवार टूट रहे हैं भारत में भी टूटेगा और परिवार टूटनें का कारण उतना आर्थिक नहीं जितना स्त्रियों को पुरूषों जैसी शिक्षा देना है।

पुरूषों की भाँति शिक्षित होकर स्त्री एक नकली पुरूष बन जाती है असली स्त्री नहीं बन पाती भिन्नता का लेकिन हमें कोई खयाल नहीं है और भिन्न शिक्षा और दीक्षा का हमें कोई विचार नहीं है यह बात सारे जगत की स्त्रियों को कह देने जैसी है - उन्हें अपने स्त्री होने को बचाना है। कल तक पुरूषों ने उन्हें हीन समझा था, नीचा समझा था इसलिए नुकसान हुआ था आज अगर पुरूष राजी हो जायेगा कि तुम हमारे समान हो, तुम हमारी दौड़ में सम्मिलित हो जाओ इस दशा में स्त्रियाँ कहाँ पहुँचेंगी और सवाल यह नहीं है कि स्त्रियों को नुकसान होगा सवाल यह है कि पूरा जीवन नष्ट होगा। लेकिन स्त्री अगर पुरूष जैसी हो जाती है तो स्त्री और पुरूष साथ रहेंगे परन्तु पति और पत्नी नहीं रहेंगे बच्चे पैदा होते हैं लेकिन नर्स और बच्चे का सम्बन्ध होता है माँ और बेटे का नहीं हमारे स्कूल और कालेज क्या सिखा रहे हैं ? स्त्रियों के लिए क्या दे रहे हैं ? वे ही उपाधियाँ दे रहे हैं जो बरसों से दी जा रही हैं। वे उन्हीं परीक्षाओं में से उन्हें निकाल रहे हैं जिनमें पुरूषों को निकाला जा रहा है और बड़े आश्चर्य की बात है इस सदी में जबकि मनुष्य के शरीर और फिजियोलोजी के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हैं हमें इतना भी पता नहीं है कि स्त्री के शरीर के नियम, स्त्री के शरीर की बनावट बहुत भिन्न है उसे अगर वही कवायद करवाई जाय जो पुरूष को करवाई जाती है तो हम स्त्री के शरीर के भीतर किसी बुनियादी तत्व को तोड़ देंगे जिसका हमें कोई पता ही नहीं है।

ओशो ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अतीत के लोग नासमझ नहीं थे पुरूषों के लिए उन्होंने व्यायाम खोजे और स्त्रियों के लिए नृत्य खोजा कोई अर्थ का, कोई कारण का। नृत्य में एक रिद्म है, नृत्य में एक लययुक्तता है जो स्त्रियों के शरीर के हारमोन्स को उसके रासायनिक तत्वों को एक और तरह की गतिमयता और संगीत से भरते हैं कवायद बात दूसरी है, कवायद के अर्थ और प्रयोजन दूसरे हैं, कवायद मनुष्य के ऊपर जो क्रोध है उसे सजग करती है शरीर के अन्दर जो लड़ने की प्रवत्ति है उसे तीव्र करती है।

कवायद अगर स्त्रियों को सिखाई गयी तो घर नष्ट हो जाने वाले हैं हम उनको पूरे शरीर को नुकसान पहुँचा रहे हैं। जिस मुल्कों में स्त्रियों को पुरूषों जैसी सौंदर्य शिक्षा दी जाती है वहाँ जवान लड़कियों के होठों पर मूँछ आनी शुरू हो जाती है यह बहुत आसान है कठिन नहीं है। अगर ठीक पुरूषों जैसी कवायद करवाई जाय लड़कियों को तो उनके होठों पर मूँछों के बाल आने शुरू हो जायेंगे। शायद हमें इस बात का विचार नहीं है कि जीवन की छोटी छोटी बात सारे जीवन को प्रभावित करती हैं। पूरब के लोग ढीले कपड़े पहनते हैं। पश्चिम के लोग चुस्त कपड़े पहनने हैं। चुस्त कपड़े आदमी को लड़ने को तत्पर करते हैं ढीले कपड़े आदमी को शान्त करते हैं, मौन करते हैं। आज तक दुनिया में किन्ही साधुओं की किन्ही परमपरा ने चुस्त कपड़े नहीं पहने। यह ऐसे ही व्यर्थ नहीं था। ढीले कपड़े व्यक्ति को एक शिथिलता और चुस्ती देते हैं। इसलिए हम सैनिकों और नौकरों को चुस्त कपड़े पहनाते हैं। लेकिन मालिक दुनिया में कभी चुस्त कपड़े नहीं पहनते। अगर आप चुस्त कपड़े पहने हुए सीढ़ीयाँ चढ़ते हों तो आप दो सीढ़ियाँ एक साथ छलांग लगा जायेंगे आपको पता भी नहीं चलेगा कि कपड़े आपको दो सीढ़ियाँ एक साथ चढ़वा रहे हैं। 1

1 तथैव पृष्ठ 139

अगर आप ढीले कपड़े पहने हुए हैं तो आप एक गरिमा से एक डिग्रिटी से सीढ़ियों को पार करेंगे और चढ़ेंगे। स्त्रियों के कपड़े पुरूषों जैसे कभी नहीं होने चाहिए। स्त्रियों के जीवन से हम कुछ और अपेक्षा किये हुए हैं उनसे घर में भी एक शान्त वातावरण की अपेक्षा है उन्हें चुस्त कपड़े नहीं पहनाये जा सकते और अगर वे पहनती हों तो वे भूल में पड़ गयी हैं और इस भूल के लिए बहुत मंहगी कीमत चुकानी पड़ेगी।

ओशो का मानना है कि अगर कपड़े प्रभावित करते हैं तो शिक्षा तो प्रभावित करेगी ही मन की ट्रेनिंग जो हम सीखते हैं वह हमारे सारे व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, हम जो विचार करते हैं वैसे हो जाते हमें क्या सिखाया जा रहा है और क्या विचार करने को हमें सामग्री दी जा रही है ? स्त्रियों को कौन सी बाते सिखाई जा रही हैं। वह सारी बातें गणित में जो आदमी दीक्षित हो रहा है उसकी जीवन के प्रति पकड़ दूसरी होती है संगीत और काव्य में जो आदमी दीक्षित होता है उसकी जीवन के प्रति पकड़ दूसरी होती है और छोटी सी पकड़ में सब कुछ भिन्न हो जाता है।

स्त्रियों की शिक्षा एकदम भिन्न होनी चाहिए ताकि उनकी दृष्टि भिन्न हो वह जीवन को किन्ही और ढंगों में सोचने को समर्थ हो सकें लेकिन यह नहीं हो रहा है हम उन्हें उन्हीं दृष्टियों में उन्हीं दर्शनों उन्हीं विचारों में दीक्षित कर रहे हैं जिनमे पुरूष दीक्षित है और पुरूष ने जो दुनिया बनाई है वह गलत सिद्ध हो चुकी है, इस बात को कहने की जरूरत नहीं है।

विश्वविद्यालयीन शिक्षा

हमारे देश में विश्वविद्यालयीन शिक्षा का विकास अंग्रेजों की ही देन है उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद युवक अपने आप को पाश्चात्य सभ्यता के ज्यादा निकट महसूस करता है और विशेषतया उसे अंग्रेजियत का व्यवहार अधिक पसन्द लगता है। जबकि ओशो के मत के आधार पर ठीक विश्वविद्यालय तो तब होगा जब विश्वविद्यालय में विद्या का मन्दिर नहीं मालूम पड़े विद्या के मन्दिर की सिर्फ सीढ़ियाँ मालूम पड़ेंगी विश्वविद्यालय वहाँ छोड़ता है जहाँ-जहाँ सीढ़ियाँ समाप्त होती हैं और असली ज्ञान का मन्दिर शुरू होता है लेकिन उस ज्ञान का नाम नॉलेज नही है, उस ज्ञान का नाम विजडम है, उसका नाम है समझ, उसका नाम है बुद्धिमत्ता हिन्दुस्तान के युवक के पास लगता है अभी बुद्धिमत्ता पैदा ही नही हो पा रही है वह जो भी कर रहा है बुद्धिहीन है उसका सारा उपक्रम बुद्धिहीन है उसकी बगावत बुद्धिहीन है। मैं बगावत का विरोधाी नही हूँ। ओशो ने कहा है मुझसे ज्यादा बगावत का प्रेमी खोजना मुश्किल है मैं विद्रोह का विरोधी नही हूँ वो तो बगावत को धार्मिक काव्य मानते हैं लेकिन जब विद्रोह बुद्धिहीन हो जाता है तो विद्रोह से किसी का हित नही होता है सिवाय हित के तो वह दूसरे को कम नुकसान पहुँचाता है विद्रोह को ही नष्ट कर डालता है। हिन्दुस्तान का युवक विद्रोह की गति पर जा रहा है एक दिशा पर जहाँ पर बुद्धिमत्ता बिल्कुल नही है, युवकों का क्रान्तिदल एक बुद्धिमत्ता जगाने की कोशिश कर करना चाहता है बुद्धिमत्ता जगाने के उपाय हैं जिससे ज्ञान पैदा होता। सूचनायें इकट्ठा करने से जैसे ज्ञान पैदा होता है अध्ययन से, मनन से, चिन्तन से वही बुद्धिमत्ता उत्पन्न होती है ध्यान से, मैडिटेशन से एक-एक युवक के पास मैडिटेशन की विधि होनी चाहिये वह जब चाहे ध्यान में उतर सके और जब चाहे अन्दर के द्वार खोल सके वही विश्वविद्यालय की शिक्षा होगी क्योंकि विश्वविद्यालय का छात्र पूरा युवक होता है और उसे इतना ज्ञान होना चाहिये कि उसे सही गलत का पूर्ण ज्ञान हो सके। 1

विश्वविद्यालय की ऐसी शिक्षा जो आज तक दी जा रही है उससे अभी तक सवर्ण और शूद्र का भेद नहीं गया आज भी बीसवीं सदी में मनु महाराज ने तीन हजार पहले जिस सीढ़ी में खड़ा किया था वे आज भी खड़े हैं । करोड़ों लोगों को आज भी मनुष्य की जीवन स्थिति उपलब्ध नहीं है । उसे तोड़ना पड़ेगा वही विश्वविद्यालय की सही शिक्षा होगी हजारों स्त्रियों को गुलाम की तरह खड़ा किया है आज नाम मात्र को वे स्वतन्त्र मालुम पड़ती हैं। लेकिन आज भी वे स्वतन्त्र नही हैं आज भी शिष्ट से शिष्ट नगर में रात किसी लड़की का अकेले निकलना सम्भव नही है यह कोई स्वातन्त्रा है बूढ़ी से बूढ़ी स्त्री निकलती हो तो छोटे से छोटे बच्चे गाली बकेंगे धक्का मार जायेंगे स्त्री की यह कोई स्थिति है। सोचना है कि फिर से इन तीन हजार वर्षों में जो हमने किया है उनमें जीवन के प्रति जो हमारे दृष्टिकोण हैं वह गलत रहे होंगे।

1 शिक्षा और जागरण सम्पादक नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ 35

वर्टेंड रसेल ने एक अनुभव में लिखा है, उसने लिखा है कि एक दफा जब मैं यूनिवर्सिटी पढ़ने गया तो मैंने सोचा था कि दर्शन शास्त्र पढूंगा तो मुझे सब उत्तर मिल जायेंगे सब प्रश्न मेरे हल हो जायेंगे तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। लेकिन अब अस्सी वर्ष के बुढ़ापे में यह कहना चाहता हूँ कि मेरी यह धारणा गलत थी मैं सोचता था कि दर्शन शास्त्र उत्तर दे देगा। लेकिन हर उत्तर ने मेरे सामने नये दस प्रश्न खड़े कर दिए तब मैंने लिखा था कि दर्शन शास्त्र मनुष्य के गहरे उत्तरों की खोज है अब मैं कहना चाहता हूँ की दर्शन शास्त्र नये प्रश्नों की खोज है। लेकिन यह बर्टेंड रसेल को हुआ, वर्टेंड रसेल के साथ और लोग भी पढ़े थे उत्तर लेकर चले, अब तक हमारे बीच जो प्रतिभा थी, जीनियस था उधार ज्ञान से वह बच जाता था। वह तो इंकार कर ही देता था हमारी सब कोशिश के बावजूद इंसपाइट आफ अस वह ज्ञानी नहीं बनता था लेकिन जो सामान्य चित्त था जो मीडीयम कर माइंड था वह ज्ञानी बन कर लौट आता था अब हमें शिक्षा की ऐसी व्यवस्था देनी चाहिए जहाँ हम किसी को मीडिया कर न बनने दें। हम प्रत्येक के भीतर प्रश्न उठायेंगे हम में उत्तर देने की क्षमता नहीं होगी सिवाय प्रश्न जगाने के और उत्तर भी लायेंगे कहीं से तो सिर्फ इसलिए कि नये 10 प्रश्नों का जन्म देने का कारण बन जायें वह आपके भीतर समाधान न बने नई समस्याओं का द्वार बन जाये और विश्वविद्यालय से निकला हुआ विद्यार्थी ऐसे प्रश्न लेकर आये कि जिन्दगी पर उसे थोपने हैं तो हम नया जीवन्त मनुष्य पैदा कर सकेंगे।

अध्याय पंचम

"ओशो की शिक्षा के अंग"

अध्याय - 5

छात्र

बच्चों की शिक्षा के संबंध में मौलिक आधार बदलने पड़ेंगे। असल में उगता सूरज नमस्कार के योग्य है। बच्चा परम आदर के योग्य है, कई कारणों से । एक तो अभी वह सिर्फ संभावना मात्र है, बीज मात्र है। अभी वह कुछ हो नहीं गया है, बहुत कुछ होने की संभावना मात्र है, अभी वह कुछ हो नहीं गया है, बहुत कुछ हो सकता है। काश, उसे हमारा सम्मान मिल सके, आदर मिल सके, तो उसके बहुत कुछ होने की संभावनाएं प्रगट होने में सहयोग हो सके, दूसरी बात-अभी तक वह पवित्र है, निर्दोष है, इनोसेंट है। "उम्र आदमी को चालाक कर जाती है। जितना अनुभवी आदमी होता है उतना बेईमान, चालाक होता चला जाता है। जिदंगी के सारे धक्के उसे कठोर कर जाते हैं। जिन्दगी उसे सब भांति बिगाड़ जाती है। जिदंगी से बचकर निकलना बहुत कठिन मामला है कि वह आपको न बिगाड़ पाये। वह इतने धक्के देती है चारो तरफ से कि बहुत संम्भावना हो जाती है कि आप बिगड़ जायें।" 1 तो जो अधिक बिगड़ा है, वर्जिन है, कुंवारा है जो अभी पवित्र है उससे हम आदर मांग रहे हैं उसके लिए जो कष्ट हो गया है जो बिगड़ गया है, सड़ गया है, उससे हम आदर मांग रहे हैं।

यह पूरी प्रक्रिया बदल लेनी पड़े। ये बात बहुत कठिन होगी क्योंकि मां यह सोच नहीं सकती कि बेटे को कैसे आदर दें, बेटी को कैसे आदर दें। मां को तो पहली दफे मौका मिला है कि उसके पास भी कोई है कमजोर, अबोध जिससे वह आदर लेने का मजा नहीं छोड़ पायी है। बाप को संभव नही कि वह बेटे को कैसे आदर दें। किसी और से नहीं मिल सका आदर, तो कम से कम बेटे की गर्दन तो वह दबा ही सकता है। उससे तो आदर मांग ही सकता है। इसलिए मनुष्य को हमने जो शिक्षा दी है मानसिकता पैदा नहीं हो सकी, उससे आध्यात्मिक पैदा नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा जो इंफोरमेशन पिछली पीढ़ी ने इक्कट्ठी की

1 जीवन ही है प्रभु सम्पादक स्वामी आनन्द सत्यार्थी पृष्ठ 26

थी, उनको हम ट्रांसफर कर पाते हैं हमारी शिक्षा सिर्फ ट्रांसफर है जो पिछली पीढ़ी ने जान लिया था, वह हम नयी पीढ़ी को दे जाते हैं, वस्तु की भाति। जैसे मकान दे जाते हैं, धन दे जाते हैं, वैसा पिछली पीढ़ी की सारी सूचना बच्चों को हम दे जाते हैं। इसलिए बच्चों के भीतर जो जीवन की ऊर्जा थी, जो जीवन की शक्ति उसके खिलने के जो अनन्त-अनन्त द्वार थे, वह सब हम अवरूद्ध कर जाते हैं।

दूसरी बात यह कि जब भी हम अपने बच्चों को कुछ सिखते हैं तो भूल कर भी न समझे - मां, हो, बाप हो, शिक्षक हो, कोई भी हों - भूल कर भी यह न समझे कि जो हम सिखा रहे हैं वह अनिवार्यरूपेण बच्चों के लिए सही होगा। हमारा शिक्षक कभी भी विनम्र नहीं रहा, बहुत अविनम्र रहा। अविनम्र है। ह्यूमिलिटी जैसी चीज शिक्षक में कभी नहीं है बल्कि डर तो यह है कि लोग बहुत अविनम्र है, बहुत इगोइस्ट हैं वे ही लोग शिक्षक बनने की तरफ गतिमान होते हैं क्योंकि छोटे बच्चों के साथ वे पूरी तरह अविनीत हो सकते हैं और पूरी तरह ज्ञानी हो सकते है कि वे जो कह रहे हैं वह परम सत्य है।

नहीं, परम सत्य किसी का भी ज्ञात नहीं है। और जो सत्य आपने जाने, मैंने जाने, वे परिस्थितिगत सत्य हैं, परम सत्य नहीं। वे रिलेटिव ट्रुथ है, सापेक्ष सत्य है जो अनुभव ने हमे दिये। जब हम बच्चों को उन्हे दे रहे है तो एक बात ध्यान में रखकर देना कि बच्चे उस दुनिया में नहीं जियेंगे जिसमें जिये थे और बच्चों की जिंदगी की परिस्थितियाँ वे नहीं होगी जो हमारी थीं। बच्चे बिल्कुल नये रास्तों पर, नई दुनिया में, नई परिस्थितियों में जियेंगे। हमारा दिया हुआ ज्ञान उन्हें नई परिस्थितियों में जीने में बाधा न बन जायें, यह बहुत ध्यान रखने की जरूरत है। क्योंकि ज्ञान दे इसलिए रहे है कि उनके जीवन में वह साधन बनेगा। उनको क्रिपल्ड नहीं करेगा, पंगु नहीं कर पायेगा, लगड़ा नहीं कर पायेगा। लेकिन अब तक सारी शिक्षा नयी पीढ़ी के पंगु करने के काम आती है। उसके सब हाथ पैर बांध जाती है, आंख-कान फोड़ जाती है। फोड़ इसलिए जाती है कि पिता कहता है कि मेरी आंख ठीक है, तुम मेरी आंख उधार ले लो। अपनी आंख फोड़ डालों क्योंकि मैं 70 साल के अनुभव से इस आंख को कमा पाया। अब तुम आज के बच्चे हो। तुम्हारी आंख गैर अनुभवी है इसे

हटाओं। मेरी आंख लो मेरे कान से सुनो, मेरी आंख से देखो। जो मैने 70 साल मे देखा है सुना है, वह मै तुम्हें देता हूँ। इस देने की कोशिश में बच्चे की अपनी सेंसटिवटी, अपनी संवेदनशीलता, अपनी रिसोप्टिविटी ग्राहकता वह सब मर जाती हैं। उसकी अपनी आंख की हत्या करके हम उसको आंख दे देते हैं।

आने वाली शिक्षा अगर सम्यक होना चाहे तो शिक्षक को, पिता को, पुरानी पीढ़ी को भली-भाति जान लेनी चाहिए कि तुम्हारी आंख बच्चों के काम नहीं आयेगी। तुम किसी और रास्ते से जिस पर बच्चे कभी नहीं गुजरेगें। क्योंकि दुनिया में ज्ञान बहुत मुश्किल से बदलता था, आज ढ़ेड सौ साल पहलें ईसा के मरने के दो हजार साल में जितना ज्ञान विकसित हुआ उतना पिछले पांच वर्षो में विकसित हुआ है। तो दो हजार साल में कितनी पीढ़िया बदल जाती थी लेकिन ज्ञान वहीं होता था इसलिए पिता सुनिश्चित रूप से यह कहता था कि मैं जो कहता हूँ वह ठीक है। मेरे पिता ने भी यही कहा था उनके पिता ने भी यही कहा था और अनुभव की परीक्षा कहती है कि हम जो कहते है वह ठीक है आज हालत बिल्कुल बदल गयी है। जो पिता जानता है वे बेटे कभी नहीं जानेगे। आज बेटे और बाप के बीच इतनी बड़ी खाई हो गयी है कि उस खायी में किसी पिता ने, शिक्षक ने, पुरानी पीढ़ी ने यह कोशिश की है कि हम अपनी आंख दे जायें तो हम बच्चों को अंधा करने में सहयोगी होगें, आंख देने मे नहीं।

तो इस बात को ध्यान रखना, अपना अनुभव देना, लेकिन अपना अनुभव बच्चे की अपनी संवदेनशीलता को नष्ट करनेवाला न बने, सिर्फ उत्प्रेरक बने, प्रेरणा हो, बच्चे की आंख का सब्स्टिीटयूट न हो, यह शिक्षा के सामने बड़ा सवाल हैं उसकी आंख पर चश्मे की तरह हावी न हो जाये, उसके देखने में सहारा बने। हम एक बच्चे को चलना सिखाते हैं, तो अपने पैर उसे नहीं दे देते, और बूढ़े के पैर अगर बच्चे को मिल जायें, तो बड़ी अकवर्ड हालत होगी। चलने का मन होगा बच्चे का और पैर बूढ़े के होंगे। बच्चा इतनी मुश्किल में पड़ जायेगा जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। 1

ऐसा ही हुआ है शिक्षा में और ज्ञान में कि मन बच्चे का है, जो दौड़ता चाहता है,

1 तदैव पृष्ठ 27

छलांग लगाना चाहता है, वृक्षों पर चढ़ना चाहता है, समुद्र पार करना चाहता है, पहाड़ों को खोदना चाहता है और पैर बूढ़े के हैं, जो कि कहीं मसाज करवाते तो ठीक था, वह कहीं जाना नहीं चाहता। ज्ञान के संबंध में ऐसा हुआ है, इसलिए हम बच्चे को पैर नहीं देते, हाथ का सहारा देते हैं उस समय तक, वह भी जब तक उसके पैर अपने नहीं सम्हल जाते। जैसे ही उसके पैर सम्हलकर चलते हैं, हाँथ अपना खींच लेते हैं।

ज्ञान का जो ट्रांसफर है - और शिक्षा का एक ही मतलब है ज्ञान का नयी पीढ़ी को हस्तांतरण - वह जो पुरानी पीढ़ी ने जान लिया वह नयी पीढ़ी को दे जाये। उस हस्तांतरण में ध्यान रखना कि हमारा ज्ञान ऐसा ही हो जैसे चलते हुए बच्चे को थोड़ा सहारा देते हैं। सहारा बैसाखी न बन जाये कि जिंदगीभर हमारे ही सहारे की बैसाखी लगाकर बच्चा चल सकें, खुद लंगड़ा हो जाये। और जैसे-जैसे बच्चे के पैर में बल आता है, अपना हाथ खींचते चले जाते हैं। शिक्षक की कीमती से कीमती जो वैल्यू और मूल्य है, आज मेरी दृष्टि में वह यही है कि पुराना ज्ञान, हाथ का सहारा देकर तत्काल हटने लगे, और नयी जो संभावना है वह सीधी, वर्जिन, अनकरण्टेड प्रगट हो सके।

तीसरी बात, जो इन दोनों से भी ज्यादा जरूरी है, और वह यह है कि हम जो हैं-पिता हों, मां हो, शिक्षक हों, कोई भी हों,- हमें यह भली-भाँति जान लेना चाहिए, इसे बहुत स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि एक बच्चे को शिक्षित करना अनिवार्य रूप से स्वयं को भी शिक्षित करना है। असल में हम जब एक बच्चे को कुछ सिखा रहे होते हैं तो बच्चा सीखता है, और हम सिखाते हैं, ऐसा नहीं हैं बच्चा भी सीखता है और हम भी सीखते हैं। बच्चे का सिखाना एक प्रोसेस है जिसमें हम दोनों इनवाल्व होते हैं। लेकिन पुरानी दुनिया में ऐसा न था। शिक्षक सिखाने वाला था, बाप सिखाने वाला था, बेटा सीखने वाला था, वर्ग विभाजन सीधा था, साफ था, कोई बतानेवाला था, कोई माननेवाला था लेकिन जो भी लोग शिक्षक की दुनिया से थोड़े- बहुत संबंधित रहे हैं, वे जानते हैं कि बच्चे को सिखाने में दो पीढ़ियों के बीच एनकाउंटर होता है। एक सत्तर साल का वृद्ध एक सात साल के बच्चे को कुछ सिखा रहा है। दो पीढ़ियाँ सत्तर साल के फासले पर हाथ मिलाती हैं। बड़ी खाई है दोनों के

बीच। आर-पार दोनों हाथ फैलाते हैं, सत्तर साल का बूढ़ा सात साल के बच्चे तक पहुंचता है। दोनों को ही सीखने का मौका है, क्योंकि सात साल का नया तत्व सत्तर साल के बूढ़े तत्व को बहुत कुछ सिखायेगा। सत्तर साल का अनुभव, सात साल के नये बच्चे को बहुत कुछ सिखायेगा।

"इसलिए शिक्षा के लिए तीसरी बात मैं कहना चाहता हूँ कि कोई सिखाने वाला और कोई सीखनेवाला, यह भ्रम अब जाना चाहिए। सीखने की एक प्रक्रिया है। अभी अच्छी दुनिया में जब अच्छे स्कूल कभी होंगे, अभी तो कल्पना हो सकती है- वहां पता लगाना मुश्किल होगा कि कौन शिक्षक है और कौन सीख रहा है। वह क्लास सीखनेवालों का एक समूह होगी जिसमें पुरानी पीढ़ी भी मौजूद होगी, जिसमे नई पीढ़ी भी मौजूद होगी। नयी पीढ़ी बहुत कुछ सिखायेगी क्योंकि नयी पीढ़ी बिलकुल नये तत्व लेकर आयी है। पुरानी पीढ़ी बहुत कुछ सिखायेगी क्योंकि पुरानी पीढ़ी बहुत कुछ पुराना ज्ञान लेकर आयी है।" 1

तो शिक्षक जो है वह एक तरफा, वन-वे-ट्रैफिक नहीं है। मजा तो इसी में है कि मां को कि वह सिखाये और कोई बाप का कि वह सिखाये और कोई सीखे। क्योंकि जब हम किसी को सिखाते हैं तब हिंसा का बड़ा सुख मिलता है। जब भी हम किसी को कुछ सिखाते हैं तो उसकी गर्दन हमारे हाथ में हो जाती है। हम ज्ञानी हो जाते हैं वह अज्ञानी हो जाता है। हम जाननेवाले हो जाते हैं, हम ज्ञानी हो जाते हैं वह अज्ञानी हो जाता है वह न जाननेवाला होता है। इसलिए हिंसक वृत्ति कितना रूप ले सकती है इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। सबसे सौम्य रूप उसका शिक्षा देने का होता है। किसी को शिक्षा देना, किसी को कुछ सिखाना, और जब हम किसी को कुछ सिखा रहें, तब हमें बड़ा मजा आ रहा है, अहंकार की बड़ी तृप्ति हो रही है कि मैं जानता हूँ और तुम नहीं जानते। और कितनी बेहूदी और एब्सर्ड है यह बात कि मां अपने बेटे के सामने इस तरह खड़ी है कि मैं जानती हूँ और तुम नहीं जानते। और जब भी कोई यह कहता है, हम जानते हैं और तुम नहीं जानते हमसे सीखो, तभी वह दूसरे की सीखने की क्षमता को भारी आघात पहुंचा देता है क्योंकि अहंकार, इस दुनिया में शिक्षक नहीं हो सकता।

1 जीवन ही है प्रभु   सम्पादक स्वामी आनन्द सत्यार्थी   पृष्ठ 28

शिक्षण किसी की तरफ से किसी को सिखाया जाना नहीं है- किसी की तरफ से किसी के लिए आमंत्रण है, निवेदन है, आग्रहहीन। ओशो ने कहा है अभी मैं एक छोटी सी किताब पढ़ रहा हूँ। यह किताब मुझे बड़ी प्रीतिकर लगी और एक स्त्री ने लिखी है। वह एक छोटे बच्चे के साथ रहना शुरू करती हैं उसकी उम्र सत्तर साल की है। उस छोटे बच्चे की उम्र कोई तीन साल है। वह इस प्रयोग को करती है, जो मै कह रहा हूँ। वह यह नही कि वह शिक्षक है ओर वह शिक्षित है, उसको सिखाया जाना और मुझे सिखाना है, हम दोनों साथ रहकर सीखेंगे। तो उसने जो अनुभव लिखा है वह बहुत हैरानी का है।

वह बच्चे को सिखाती ही नहीं, बच्चे से भी सीखती है अब बच्चा है, समुद्र के किनारे दौड़ रहा है, सीपियों को उठा रहा है। रेत को उठाकर सिर से स्पर्श करती है कि बच्चे को क्या पता चल रहा है, वह मैं भी तो जानूं। बच्चा जब रेत को उठाकर सिर पर डाल रहा रहा है तो बूढ़े आदमी को सिर्फ इतना ही पता चलता है कि बाल खराब कर रहे हो और सिर की सफाई करनी पड़ेगी। उसको कुछ पता नहीं चलता क्योंकि वह सिखाने वाला है। लेकिन बच्चा जब रेत को सिर पर डाले चला जा रहा है तो बच्चे को भी कुछ अनुभव हो रहा है जो कि सीखने योग्य हो सकता है।

तो वह बूढ़ी औरत अपने सिर पर भी उस बच्चे के साथ रेत डाल रही है और तब उसने लिखा कि जब बच्चे के साथ समुद्र तट पर खेलते, रेत में दौड़ते, बच्चे के साथ चिल्लाते, तितलियों को पकड़ते, पानी में भागते गिरते .... तब उसने कहा, मैं कई बार भूल जाती हूँ कि मैं बूढ़ी हूँ, मैं सत्तर वर्ष की हूँ। मेरा सारा बचपन वापस लौट आता है। और उस बच्चे के साथ सालभर रहकर उन दोनों के बीच एक सिंपैथी बनती है जो शिक्षक और विद्यार्थी के बीच बननी चाहिए। क्योंकि वह बच्चा, बच्चा है और बूढ़ी-बूढ़ी है, ऐसा नहीं, अब ये दोनों मित्र है। अब वह बच्चा आकर उसका हाथ पकड़कर उससे कहता है कि बाहर एक मेंढक आया हुआ है, आवाज बड़ी अद्भुत है, चलो। वह उसे घसीट रहा है सत्तर साल की स्त्री को, वह उसके पीछे भागी जा रही है। वह बच्चा एक झाड़ी में छिपकर मेंढक की आवाज सुन रहा है और वह बूढ़ी भी उसके पास कान रखकर आवाज सुन रही

है।

इतना विनम्र हो माता और पिता और शिक्षक कि बच्चे को सिर्फ सिखाने का मजा न लें, मजा बहुत है सिखाने का। हिंसा है इसलिए मजा है। सिखाने में मजा यह है कि दूसरे को हम अपने हिसाब में ढाल रहे है। मैं जब कहता हूँ कि आपकी गर्दन जरा ऊँची है, हम थोडी छीलकर छोटा करेंगें। आपका पैर जरा लम्बा है, इसे हम जरा छोटा करके शेप में ला देंगें, तब हम हिंसा का मजा ले रहे है। जब हम उसको कहते है, ऐसा नही कर सकते हो, तब भी हम हिंसा का मजा ले रहे है। शिक्षक जो है वह बहुत गहरे में छिपा हुआ डिक्टेटर है, तानाशाह है और बच्चे पर जितनी तानाशाही कायम हो सकती है उतनी और किसी पर नही हो सकती है।

अगर हिटलर को चार बच्चे होते तो हिटलर अच्छा आदमी हो सकता था। अच्छा आदमी इसलिए हो सकता था कि जो मजा उसे बच्चों को डामिनेट करने में मिल जाता है, उस मजे को खोजने में उसे इतने बड़े युद्ध को करने की जरूरत न होती वह उसको नही मिल पाया।

यह तीसरी बात बहुत ख्याल में लेने जैसी है कि शिक्षण की प्रतिक्रिया दोनों तरफ से यात्रा है। नही, बूढ़ा खडा रहेगा अपनी जगह पर सख्त पत्थर की तरह और बच्चे को सीखने आना पडेगा अकेला, तो ऐसी शिक्षा क्रिपल्ड करेगी। नही बूढ़ा भी जाय, बच्चे से मिले हाफ-वे। कहीं जाकर बीच जगह पर मिले, जहाँ वह बूढ़ा नही रह जाएगा, जहाँ बच्चा बच्चा नही रह जाएगा, जहाँ दो साथी, दो सहयोगी, मित्र सीखने की दुनिया की यात्रा पर निकलें।

एक शक्ल कायम रखना चाहता है जो उसकी असली शक्ल नही है। बेटे को पता नही कि वह भी क्लब में बैठकर हंसी मजाक करता है। बेटे को पता ही नही कि उसका बाप भी हंस सकता है। लड़की को पता नही कि उसकी माँ भी किसी से प्रेम कर सकती है, कि उसकी माँ भी किसी के प्रेम में, किसी की गोद में बिल्कुल ही छोटी और बच्ची हो

सकती है, कि उसका बाप भी किसी के प्रेम में किसी के पास जाकर बिल्कुल बचपन की बातें बोलने लगता है, तुतलानेवाली बातें बोलने लगता है जो उसे पता नही।

बाप और माँ की एक झूठी इमेज बच्चे के सामने पड़ती है और यह इमेज बहुत ही क्रिपलिंग है और बहुत पंगु करने वाली है और यही हमारी सारी शिक्षा है। इससे हम बच्चे को विकृत कर देते है और नष्ट कर देते है। माँ बाप जितना बच्चे को मारते है उतना कोई भी नही मारता। उनके बाद मारने वालों में नम्बर दो पर जो है, वह शिक्षक है। हम सब मिलकर उसको मार डालते हैं। फिर बच्चा नही रह जाता, सिर्फ बच्चे की जगह हमारी आकाँक्षित एक प्रतिमा रह जाती है। अगर बच्चा थोड़ा बलशाली हुआ तो वह रिएक्ट करता है, बगावती हो जाता है। यदि गोबर गनेश हुआ तो राजी होकर सेटल हो जाता है। लेकिन जिंदगी खत्म हो जाती है दोनों हालातों में। अगर बच्चा राजी होकर सेटल हो जाता है और संस्थापित जगह का हिस्सा बन जाता है तो एक मशीन हो जाता है अगर बगावती हो जाता है तो चीजों को व्यर्थ ही तोड़ने फोड़ने लगता है और बनाने की क्षमता खो देता है।

पुराने बच्चों ने पहला विकल्प चुना था, गोबर गनेश होने का, वे राजी हो जाते थे। पांच हजार साल में वह विकल्प बहुत उबानेवाला साबित हुआ। अब बच्चे दूसरा विकल्प चुन रहे है कि वे तोड़-फोड़ पर राजी हैं। लेकिन दोनों विकल्प असुंदर हैं और दोनों का जिम्मा गहरे में शिक्षण की प्रक्रिया में हैं, प्रक्रिया वही है।

ये तीन बातें अगर ध्यान में हो तो विस्तार कैसे करना है, वह तो दूसरी बात है अगर वह ध्यान में हो तो होना शुरू हो जाता है।

बहुत से स्कूल विशेषकर पश्चिम में, कुछ यहाँ भी बच्चों को पूरी स्वतंत्रता दे रहे हैं। दी गई स्वतंत्रता का बहुत मूल्य नही है। दी गई स्वतंत्रता भी परतंत्रता का एक ढंग है। देने वाले आप ही हैं। नहीं, मैं स्वतंत्रता देने की बात नही कर रहा हूँ क्योंकि देने वाले आप ही है अगर पुरूष कहे कि हम स्त्रियों को स्वतंत्रता देने का इंतजाम कर दिये है, तो वह

स्वतंत्रता का कोई मूल्य नही। वह सिर्फ परतंत्रता को स्वतंत्रता का नाम देना होगा जो कि और खतरनाक है क्योंकि परतंत्रता-परतंत्रता ही रहे, साफ परतंत्रता समझी जाये तो कम से कम आनेस्ट होती है। और जब हम स्वतंत्रता देने की बात करने लगते है लेकिन जब दी जाती है स्वतंत्रता, तो स्वतंत्रता नही रह जाती।

कहीं दुनिया में अभी माँ बाप ने कोई स्वतंत्रता नही दी है और न शिक्षक ने कोई स्वतंत्रता दी हैं। स्वतंत्रता दे रहा है वह, यह मैं नही कह रहा हूँ। यह निगेटिव बात हुई कि हम स्वतंत्रता दें। न, मैं बहुत ही पाजिटिव बात कर रहा हूँ कि बच्चे को आदर, सम्मान, बच्चे से सीखने की सम्भावना। मैं बहुत दूसरी बात कर रहा हूँ। मै यह नही कह रहा हूँ कि परतंत्रता हटा लें। हटायेगा जो, वह मालिक है हटाने में भी। बहुत पाजिटिव बात-मैं यह कह रहा हूँ। बच्चों को स्वतंत्रता को नहीं देना है क्योकि आप हैं कौन देने वाले? और अगर आप स्वतंत्रता देने वाले हैं तो कल आप फिर कंट्रोल कर सकते हैं परतंत्रता फिर ला सकते हैं। लेना-देना आपके हाथ में हैं। यह मैं नहीं कह रहा हूँ मैं एक पाजिटिव वेल्यू की बात कर रहा हूँ।

ओशो ने कहा है "मैं यह कह रहा हूँ कि बच्चें को आदर, सम्मान, रिवेरेन्स...। मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ कि बच्चे माँ-बाप को आदर न दें अनादर की उनकी इच्छा नहीं है, मैं यह नही कह रहा हूँ। मैं माँ-बाप से यह कह रहा हूँ कि वह बच्चों को आदर दें। मां-बाप बर्दाश्त करने को राजी हो जायेगे कि हमें आदर न दिया जाये, इससे कोई बड़ी क्रांति नहीं होती। नहीं, बड़ी क्रांति का मतलब यह है कि मैं यह कह रहा हूँ कि बच्चा बहुत आदर योग्य है माँ-बाप टालरेट कर सकते हैं इस बात को कि बच्चे आदर न दें, यह टालरेंस होगी उनकी, यह उनकी सहिष्णुता होगी। सुशिक्षण होगा, सुसंस्कृति होगी, लेकिन जिस क्रांति की मैं बात कर रहा हूँ वह बहुत दूसरी है।" 1

वह मैं यह कह रहा हूँ कि मां-बाप की आदर मांगने की आकांक्षा ही गलत थी। बच्चें को आदर दिया जा सकें, इसकी सम्भावना खुलनी चाहिए। तब हम स्वतंत्रता देगें, ऐसा नहीं,

1 शिक्षा में क्रान्ति संकलन प्रेम कल्पना पृष्ठ 46

जिसको हम आदर करते हैं वह स्वतंत्र हो जाता है। स्वतंत्रता आदर के पीछे छाया की तरह चलती हैं जिसे हम आदर करते हैं उसे हम परतंत्र नही कर सकते। तब स्वतंत्रता सहज आयेगी। और जो यह ख्याल है, कि कंट्रोल न किया जाये, यह जो ख्याल है, कि बच्चे जैसे बढ़ना चाहे बढ़े, मैं इसके पक्ष में नही हूँ। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि बच्चे जैसे बढ़ना चाहे बढ़े, क्योंकि मैं मानता हूँ कि जरूरी है कि बच्चे को किसी दिन कोई हाथ का सहारा देकर पैर पर चलाये, नहीं तो अपने आप बच्चा पैर पर चलेगा नहीं।

पीछे अभी कोई एक दस साल पहले कानपुर के पास एक भेड़ियों के द्वारा पाला हुआ एक बच्चा पकड़ा गया। वह चार हाथ पैर से चलता था। और छः महिने लगे उसको दो पैर पर खड़े होने की तैयारी करवाने में, और उसी तैयारी मे वह मरा, कयोंकि उसकी सारी मसल, सारी व्यवस्था चार हाथ-पैर से चलने वाली हो गयी, वह सब अकड़ गयी। इसके पहले भी कलकत्ते के जंगलों में पास में दो लड़कियाँ मिली वे भी भेड़िये उठाकर ले गये थे, उन्होंने पालीं। वे भी चार हाथ-पैर से चलती थीं, दो से नहीं चलती थीं।

नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि बच्चें को कोई सहयोग न दें, वह जैसा होना चाहे, हो जाये। यह भी बच्चे के प्रति अनादर का नया रूप है। यह भी बच्चे की असम्मान की नई प्रक्रिया है। अब तक बच्चे के लिए हम सब तरफ से ऐसा बनाना चाहिए, इसकी फिक्र में, अगर वह आप नहीं करने देते तो हम निगलेक्ट करते हैं कि बच्चे को जैसा होना हो, हो जाए। इसे हम स्वतंत्रता का नाम देगें, सब देगें, लेकिन बेईमानी की बात है। मैं नहीं मानता हूँ कि बिना पुरानी पीढ़ी के सहारे के बच्चा कुछ हो सकेगा, आदमी भी हो सकेगा, यह भी शक है और कुछ होना तो बहुत दूर की बात है। नहीं, सहारा तो देना होगा, लेकिन सहारा उसे बांधने वाला न हो। कंट्रोल भी रखना होगा, लेकिन कंट्रोल उसे बांधने वाला न हो, बल्कि अन्कंट्रोल में उसे पहुंचाने वाला हो।

सारी कठिनाई यह है कि सीधे पोलैरिटी में सोचना तो सदा आसान पड़ जाता है। यह तो हम सोचते हैं कि पूरी तरह कंट्रोल्ड है कि खाये वही जो हम कहें, उठे तो तब जब हम

कहें, सोये तो तब जब हम कहें, सांस ले तो तब जब हम कहें, यह तो कंट्रोल है। या आप कहते हैं कंट्रोल नहीं, बस ठीक है फिर। गडढे में गिरें तो हम खड़े होकर देखते रहें क्योंकि स्वतंत्रता है उसे कि उसे जो होना है हो जाये।

अमरीका में वही हुआ। पहली पोलैरिटी से वह दूसरी पोलैरिटी पर गये। वह भी मां-बाप का क्रोध है। वह भी कहते हैं कि अगर सारे शिक्षा शास्त्री और सारे मनोवैज्ञानिक ये कहते हैं कि हमने बिगाड़ दिया है बच्चो को, तो ठीक है। तब हम छोड़ते हैं, अब जो होना है हो जाये। मैं दोनों मे से दोनों के लिए राजी नहीं हूँ। दोनों ही गलत दृष्टिकोण हैं क्योंकि जिंदगी पोलैरिटी में नहीं बांटी जा सकती। जिंदगी सदा ही विराधी पोल्स को एक साथ लेकर चलती है और इसलिए जिंदगी का मामला बहुत ही नाजुक है। वह ऐसा नहीं है जैसा हम उसे पकड़ लेते हैं। वह ऐसा ईदर-आर वाला नहीं है, या तो यह या इससे उल्टा। यह भी और वह भी और दोनों के बीच से मार्ग जाता है। न, बच्चे को तो मां-बाप को नियंत्रण देना ही होगा! अपरिचित है, अज्ञात रास्तों पर है इसलिए सहारा तो उनको पूरा चाहिए, निंयत्रण उनको पूरा चाहिये। बस इतना ही ध्यान रखने की जरूरत है कि नियंत्रण बच्चे की आत्मा की हत्या करता है या इस बात के लिए बच्चे को योग्य बनाता है कि वह नियंत्रण दो तरह का हो सकता है। इसलिए कि निंयत्रण रोज बढ़ता चला जाये और अंत में फांसी बन जाये, या नियंत्रण इसलिए कि नियंत्रण रोज कम होता चला जाये ओर अंत में स्वतंत्रता बन जाये।

पश्चिम में जो हुआ है वह सुखद नही हुआ। वह रिएक्शनरी है, रिवोल्युशनरी नहीं है, वह प्रतिक्रिया है। जो होना था उससे उल्टे जाने का ख्याल है। अगर आदमी को पैर के बल खड़े होकर अच्छी दुनिया नहीं बना पाया तो हम कहते हैं, हम शीर्षासन करके अच्छी दुनिया नहीं बना लेगें। लेकिन आदमी वही रहेगा। शीर्षासन करने से फर्क नहीं पड़ता। सिर्फ इन्वटेंड खड़ा हो जायेगा। सारी दुनिया की पांच-छह हजार साल की शिक्षा की जो व्यवस्था थी उससे उल्टी खड़ी हो गयी। वह भी नुकसान पहुंचा रही है। एक ऐसी शिक्षण व्यवस्था चाहिए जो पुरानी पीढ़ी को पूरी की पूरी तरह सहयोग ले लेती हो ओर फिर नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी

से आगे जाने में बाधा न बनती हो। अभी हम कहते है। कि हम बच्चो को स्वतंत्रता दे रहे हैं लेकिन हम देनेवाले बीच में खड़े हैं, जिन्होंने स्वतंत्रता दी।

यह स्वतंत्रता नहीं है, सम्मान की बात मैं कह रहा हूँ स्वतंत्रता की नहीं। बच्चे कोई कैदी नहीं हैं, कि जेल की दीवार तोड़ दी और जंजीर तोड़ दीं और कहा कि हाथ झाड़ा, अब जाओ। उनको स्वतंत्रता देने से कुछ होने वाला नहीं हे। क्योंकि कोई कारागृह ऐसा नहीं है कि हमने उनको छोड़ दिया और मामला समाप्त हो गया। अब तुम्हें जहां जाना हो, तुम जा सकते हो। हमारी तरफ से स्वतंत्रत हो। यह सम्मान न हुआ, यह आदर न हुआ। यह आनेवाले, उगनेवाले सूरज के प्रति सदभाव न हुआ। यह सिर्फ क्रोध हुआ कि ठीक है, हमारी व्यवस्था को तुम कारागृह कहते हो? तो ठीक है, हम कारागृह के बाहर छोड़े देते हैं। तो एक मां और बाप अपने बेटे को छोड़ दें कि जब तुम्हें चलना हो तो दोनो पैर से चलना, अन्यथा जैसा तुम्हें करना हो। वह कभी दो पैर से खड़ा नहीं होगा। और इसकी बहुत चिंता न करें कि जो मैं कह रहा हूं, वह नया है या पुराना है, क्योंकि सत्य के नये और पुराने होने का कोई सवाल नहीं है। वह सत्य है या नहीं, ठीक है या नही, इसकी फिक्र करें।

इस सदी में नये–पुराने ने एक अजीब तरह का वैल्यूएशन ले लिया है जिसका कोई मूल्य नहीं है। कुछ लोग है जो कहते हैं कि कोई चीज पुरानी है, इसलिए ठीक है। कुछ लोग है, जो कहते है कि कोई चीज नयी इसलिए ही ठीक है। ठीक होने का नये पुराने में कोई प्रयोजन नहीं है। पुराने में भी गलत था और नये में भी गलत है। पुराने में भी ठीक है। चिंता इसकी होनी चाहिए कि ठीक क्या है और कितने दूर तक हम पुराने का उपयोग कर सकते हैं। एक टोटल पर्सपेक्टिव के लिए पुरानी सारी शिक्षण पद्धति को समझा जाना जरूरी है, नयी सारी शिक्षण पद्धति को समझा जाना जरूरी है और दोनों के बीच एक माध्यम जो स्वतंत्रतापूर्ण नियंत्रण स्वतंत्रता को हो, और उसके बहुत गहरे में सम्मान छोटे के प्रति, बढ़ते हुए के प्रति आधार और केन्द्र बन सकें।

बच्चों को हम जितना 'डोन्ट' नहीं कहने से बचा सकें, उतना अच्छा है। ऐसा पिछले

1 तथैव पृष्ठ 53

सौ साल के सभी मनसशास्त्री कहेंगे लेकिन मैं पूरी तरह राजी नही हूँ। सारे मनसशास्त्री यह कहेंगे और बहुत दूर तक मैं कहूंगा कि बच्चे को जब तक बने हां कहा जा सके, तो ना नही कहना। और अगर ना भी कहना हो, तो उसे अगर हां के रूप में कहा जा सके, तो बहुत अच्छा है। जैसे बच्चा एक फूल तोड़ रहा है। तो उस रोकने की बजाय... यह कहना कि फूत मत तोड़ो, उसके हाथ में फव्वारा थमा देना बेहतर है, उससे कहना कि पानी डालो। फूल तोड़ना रूक जायेगा, वह पानी डालने में लग जायेगा। और ना कहने से हम बच सकेंगे, क्योंकि ना जो है वह उसे बार-बार अत्यंत पीड़ा में डाल जाता है। जहां भी बढ़ता है, वहीं ना खड़ा हो जाता है। वह उसकी सीमा बनने लगती है। वह परतंत्र अनुभव करने लगता है, गुलाम मालूम पड़ने लगता है कि कुछ भी करने की स्वतंत्रता नहीं है। न भी कहना हो तो उसको हां के ही रूप में कहने की कोशिश करनी चाहिए।

मैंने सुना है कि भोज के दरबार में एक ज्योतिषी आया है और भोज ने अपनी कुंडली दिखायी है और उसने कहा कि महाराज, कि आप अपनी पत्नी को भी दफनाएंगे, आपने बाप का तो दफनाएंगे ही, अपने सब बेटों को भी आप दफनाएंगे। सबको मारकर तुम मरोंगे। भोज बहुत नाराज हो गया। उसने उसे कैद में डाल दिया।

कालिदास बैठा सुनता था। बाद में रात जाकर कालिदास ने कहा कि वह बेचारा कुछ गलत नहीं कह रहा था, जो उसे दिखायी पड़ा था, वही कहा था, लेकिन शायद उसे कहने का ढंग नही आया। मैं एक श्लोक बनाकर लाया हूं। उस श्लोक में उसने कहा कि महाराज, आप धन्यभागी हो। आपके प्रियजनों को आपकी मृत्यु का दुख न होगा। ऐसा धन्यभाग मुश्किल से मिलता है। आप सौ वर्ष से ज्यादा जियोगे। जिसकी हम कामना करते हैं कि सौ वर्ष से ज्यादा कोइ जिये वह आपकी सुनिश्चित संभावना है। और धन्यभागी हैं आप कि आपके किसी प्रियजन का, न आपके बेटे को, न आपकी बैटी को, न आपकी पत्नी को आपकी मृत्यु का दुख नहीं होगा। और एक लाख मुद्राएं राजा ने कालीदास को भेंट की।

ना में कही जानेवाली बात भी हां में कही जा सकती हैं इंकार करनेवाली बात भी

स्वीकार में कहीं जा सकती हैं। यह ठीक है लेकिन यह अधूरा सत्य है। और इस पर पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने इतना जोर दिया कि दूसरे खतरे पैदा हो गये। अधूरे सत्य झूठ से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं। इसलिए अधूरा सत्य है कि जिंदगी तो नहीं कहेगी, आप मत कहो। मां ने नहीं कहा नहीं, पिता ने नहीं कहा नहीं, शिक्षक ने नहीं कहा नहीं। लेकिन जब लड़का बड़ा होगा, तब जिंदगी में हजार तरफ से 'नही' मिलेगा। और जो 'नही' से बिलकुल अपरिचित है वह इतना फ्रस्ट्रेट हो जायेगा जिसका कोई हिसाब नहीं। नहीं की भी टेनिंग तो चाहिए पड़ेगी। नहीं तो एक लड़का, जो बीस वर्ष तक नहीं, नहीं सुना और जिसकी जिंदगी में कभी भी कहीं कोई रूकावट नहीं है, सब जगह हां था। जिंदगी इतनी फिक्र नहीं करेगी।

जिंदगी मां नही है, जिंदगी पिता नहीं है, जिंदगी शिक्षक नहीं है। जिंदगी हजार जगह कहेगी कि नहीं। तब उस लड़के के प्राण पर ऐसा पड़ेगा कि मर गये, क्योंकि उसकी नहीं की कोई भी योजना उसके भीतर नहीं है। नहीं को सहने की कोई क्षमता उसके भीतर नहीं है। इसलिए पश्चिम बहुत कमजोर बच्चे पैदा कर रहा है जो इतनी छोटी-छोटी बातो से फ्रेस्ट्रेशन में चले जाते हैं कि जिनमें पुराना बच्चा कभी नहीं जाता। क्योंकि वह नहीं के लिए तैयार था। जिंदगी में हां भी है और नहीं भी है और उनका एक संतुलन है।

तो मैं मानता हूं कि जहां तक तक बने, नहीं मत कहना और नहीं वहीं मत कहना जहां नहीं कहने में मजा आता है, वहां नहीं मत कहना। लेकिन जहां नहीं कहने से बच्चे के व्यक्तिव में रेजिस्टेंस बढ़ता हो, वहां नहीं का मतलब हमेशा नहीं रखना। नहीं तो मां-बाप के नहीं और हां में बहुत डांवाडोल होते रहते हैं वे, इसलिए बच्चे बहुत कन्फ्यूज्ड हो जाते हैं। बच्चा कहता है मुझे पिक्चर देखने जाना है, मां कहती है कि नहीं जाना ओर बच्चा दो दफे जोर से पैर पटकता है और मां कहती है, अच्छा जाओ। तो बच्चे को बहुत मुश्किल हो जाती है कि नहीं का मतलब क्या है, हां का मतलब क्या है? नहीं हां बन सकती है, हां नहीं बन सकती है। जिंदगी भर के लिए हम उसे एक बेगनेस दे रहे हैं, एक कन्फ्यूजन

दे रहे हैं जो बहुत मुश्किल में पड़ जायेगा।

अगर एक दफे बच्चे से कहो नही, तो इस दुनिया में अब दुबारा उसको हां मत बनाना ताकि बच्चा ठीक से समझे कि नहीं का मतलब नहीं होता है। हां का मतलब हां होता है। यह भी सिखाने की जरूरत है उसे कि नहीं का मतलब ना होता है और जब ना हो जाता है तो ना ही हो जाता है। नहीं तो मां-बाप बहुत जल्दी झुकते हें। बजाय झुकने के, पहले हां भर देना। बच्चा कहे कि पिक्चर जाना है, और रोज का अनुभव है, लेकिन हम कुछ सीखते नही हैं। तो पहले हम कहेंगे नहीं। असल में दूसरे को रोकने में बड़ा मजा आता है। अब वह सिर पीटेगा, चिल्लायेगा और खाना नहीं खायेगा ओर थाली फेंकगा। अब हम कहेंगे कि जाओ! हां का मजा भी चला गया उसके भीतर से, नहीं का अर्थ भी न रहा और प्रतिकार का उसने एक गलत ढंग सीखा। प्रतिकार का गलत ढंग सीखा जो कि जिंदगी भर उसका पीछा करेगा। बड़ा होकर भी वह बच्चों जैसा करेगां कल वह पति हो जायेगा और पत्नी पर नाराज होगा, तो इसी तरह थाली फेंकेगा जैसा उसने मां के सामने फेंक दिया था। उसी तरह पैर पटकेगा जैसा उसने मां के सामने फेंक दिया था। तब वह बहुत ही बेहूदा मालूम पड़ेगा। लेकिन हम उसे सिखा रहे हैं।

नहीं, मेरी अपनी समझ है कि नहीं का भी उपयोग तो है, लेकिन व्यर्थ की चीजों में नहीं मत कहना। लेकिन नहीं की अपनी सार्थकता है क्योंकि जिंदगी आपकी फिक्र न करेंगी, वह नहीं कहेगी और जब कहेगी तो उसकी तैयारी होनी चाहिए और उसकी तैयारी भी शिक्षण का अनिवार्य अंग है। इसलिए पश्चिम के जो बच्चे हैं वे नहीं न कहने से बिगाड़े गये बच्चे हैं। उनको इधर पिछले पाचास-साठ साल में विशेषकर फ्रायड का प्रभाव जो पश्चिम की शिक्षा पर पड़ा, वह संघात्मक सिद्ध हुआ। उसने कुछ फायदे पहुंचाये, लेकिन उतने ही वजन के, शायद और ज्यादा वजन के नुकसान भी पहुंचाया।

मैडम मांटेसरी की शिक्षा से बच्चों में क्या फर्क पड़ा? वह ठीक है या नही?

साधारण है, ठीक और गलत बहुत नहीं है मामला। मांटेसरी ने एक हिम्मत की ओर

एक प्रयोग किया है, उस लिहाज से तारीफ की बात है, लेकिन कुछ विशेष फर्क नहीं पड़ा। क्योंकि विशेष फर्क जो है वह शिक्षा की पद्धति में कम, मां-बाप के होने के ढंग में और शिक्षक के होने के ढंग में ज्यादा है। वह बहुत बड़ा सवाल नहीं है। सवाल गहरा है और ज्यादा डीप रूटेड है, वह हममें है। अब जैसे एक बच्चा आपसे आकर कहता है कि मैं फूल तोड़ लूँ? तब आप दो क्षण भी नहीं सोचतीं कि फूल तोड़ने दिया जाये या नहीं। नहीं कहने में इतना मजा आता है कि नहीं। आप यह नहीं सोचते हैं कि फूल तोड़ा जा सकता है तो तोड़ लेने दो। यह सोचने की जरूरत नहीं है। बच्चा कहता है, मुझे बाहर खेलेने जाना है, आप कहते हैं, नहीं।

हमारा 'नहीं' तो एकदम सामने खड़ा रहता है। वह भी हमारे फ्रस्ट्रेशन का हिंस्सा है। हां कहने की हमें भी तो हिम्मत नहीं जुट पाती। अब बच्चा कहता है, बाहर खेलने जाना है तो मां बिना सोचे, नहीं कहने को तैयार है, वह रेडीमेड है और बच्चा जानता है कि रेडीमेड उत्तर है, इसने सोचकर नहीं दिया है। क्योंकि अब भी इसको प्रेस किया जा सकता है और यह कहे कि हां। क्योंकि अब सोचकर दिया गया है तो फिर हां नहीं होना चाहिए दुबारा। क्योंकि अगर बच्चे के अहित में ही है बाहर जाना तो फिर हां कैसे हुआ और अगर हां हो सका दो मिनट बाद, तो दो मिनट पहले नहीं होने की क्या जरूरत थी।

यानी मेरा कहना यह है कि 'हाँ' साफ, 'नहीं' साफ, और दोनों में कभी कंफ्यूजन नहीं। वह बिलकुल साफ होना चाहिए। तब बच्चा एक तो अपने मां-बाप का क्लियर इमेज बना पाता है। बड़ी से बड़ी कठिनाई है कि मन में मां-बाप की साफ प्रतिभा नहीं बन पाती कि मां-बाप क्या चाहते है? क्या इरादे हैं। वह कभी पकड़ ही नही पाता है कि उनका क्या प्रयोजन है? उसे तो पता नही कि मां-बाप भी भीतर कंफ्यूज्ड हैं। उन्हें भी पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं, क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं। तो बच्चे के सामने बहुत स्पष्ट प्रतिभा मां-बाप की बननी चाहिए, शिक्षक की बननी चाहिए। तो बच्चे को अपनी प्रतिभा स्पष्ट बनाने में बड़ा सहयोग मिलता है। नहीं तो वह भी वेसा ही एक कंफ्यूज्ड, भ्रमित, उल्टे-सीधे खयालों से भरा आदमी बन जाता है। और तब उसे पता ही नहीं रहता कि वह

कब हां कहे, कब न कहे। तब एक इन्‌डिसीसिवनेस पैदा होती है जो जिंदगी भर पीछा करती है।

मेरी अपनी समझ में लाखों लोगों की बीमारी इन्‌डसीसिवनेस है कि वह कभी निर्णय नहीं ले पाते कि हां या नही। और अगर लेते हैं तो वह हमेशा हाफ हार्टेड होता है। वह हां कहते हैं तो उसमें भीतर किसी परसेंटेज में नहीं भी होगा। अगर एक लड़की एक लड़के को हां भरती है कि हां मैं तुझे प्रेम करती हूँ तो यह मामला हां का नहीं होता है, यह साठ परसेंट हां ओर चालीस परसेंट नहीं का होता है। अच्छा, चालीस परसेंट कभी भी पचास परसेंट हो सकता है, क्योंकि मन कोई ऐसी चीज नहीं है। कभी साठ परसेंट हो सकता है। तब पछतावा शुरू हो जाता है। तब मुश्किल हो जाती है। और जिंदगी में सौ प्रतिशत हां निकल सके, सौ प्रतिशत ना निकल सके तो उस आदमी के पास केरेक्टर होता है, व्यक्तित्व होता है और अगर हर हां में ना का भी परसेंटेज हो ओर ना में हां का परसेंटेज हो तो वह आदमी दुविधापूर्ण हो जाता है; वह आदमी फिर केरेक्टरलेस हो जाता है। उसके भीतर कोई केरेक्टर नहीं होता।

इसलिए मैं तो कहूंगा कि ना कहना, जब कहना जरूरी हो, और उस ना को कभी मत बदलना, चाहे उसके लिए खुद जान खोनी पड़े, बेटे को, बेटी को साफ पता चल जाना चाहिए कि मां ने जब ना कहा है तो यह ना अल्टीमेट है। इसका बड़ा उपयोग है। क्योंकि इसमें मां के चरित्र का पता चलता है। और बच्चे को भी चरित्र बनाने में सहयोग मिलता है।

मेरी बड़ी तकलीफ यह है कि मैं पुराने से बहुत अंशो में राजी नहीं हूँ। उससे भी बड़ी मेरी तकलीफ यह है कि मैं नये से भी बहुत अंशों में राजी हूँ। इसलिए पुराना मुझसे नाराज हो जाता है। कि मैंने पुराने को गलत कहा। नया मुझसे नाराज हो जाता है कि मैंने नये को गलत कहा और मुझसे राजी होना किसी का भी मुश्किल हो जाता है कि मैंने नये को गलत कहा और मुझसे राजी होना किसी का भी मुश्किल हो जाता है। लेकिन मेरी नजर में यह पुराना नहीं है, मेरी नजर में मनुष्य है कि मनुष्य को क्या लाभ है।

रेनपा ने एक संस्मरण में लिखा है- "वह पांच साल का बच्चा है उसके बाप ने रात उसको बुलाकर कहा कि कल सुबह तुझे आश्रम में शिक्षा अध्ययन करने के लिए जाना है। लेकिन हमारे वंश में कभी कोई बच्चा रोता हुआ विद्यालय नहीं गया है, इसलिए ध्यान रखना, हमारे परिवार में कोई बच्चा कभी रोता हुआ स्कूल नहीं गया है। कल सुबह पांच बजे तुम्हें विदा कर दिया जायेगा घोड़े पर और मैं या तुम्हारी मां तुम्हें दरवाजे पर तुम्हें छोड़ने नहीं आयेगे। क्योंकि हो सकता है कि हमें देखकर तुम्हें रोना आ जाये और यह देखना हमारे लिए बहुत कठिन होगा कि हमारा बच्चा भी रोता हुआ स्कूल जा रहा है क्योंकि रोते हुए बच्चे क्या सीख कर वापस लौटेगे? फिर हमारे घर में ऐसा कभी हुआ नहीं।" 1

यह बाप-दादों की पूरी की पूरी इज्जत का सवाल है! पांच साल के बच्चे से .... सुबह नौकर ने उसे उठाया है। रात 12 बजे उसकी मां ने उससे विदा ले ली है कि मैं न आ सकूँगी क्योंकि हो सकता है कि मुझे देखकर तुझे रोना आ जाये। लेकिन हमारे बच्चे कभी रोते नहीं रहे।

सुबह पांच बजे नौकर ने उसे तैयार किया। उसकी आंख में आसू भर-भर आते हैं, लेकिन वह अपने आंसू पी रहा है क्योंकि उसके पिता ने कहा कि उनके घर में कभी कोई बच्चा रोता हुआ नहीं गया है। तो यह अशोभन न हो जाये, मैं एक ऐसा बच्चा न हो जाऊँ जो रोता हुआ जा रहा हो, वह अपने आंसू पी रहा है। वह घोड़े पर बैठ गया है। नौकर ने कहा, पीछे लौटकर मत देखना, पिता छत पर खड़े होकर देख रहे हैं। इस घर से जब कोई बच्चा आश्रम गया है अध्ययन के लिए तो उस मोड़ तक उसने कभी लौटकर पीछे नहीं देखा है। क्योंकि पीछे लौटकर देखने वाले आगे नहीं जा सकते। पांच साल का बच्चा घोड़े पर बैठा, उसकी आंखों में आंसू भरे जा रहे हैं। लेकिन वह पीछे लौटकर नहीं देख रहा है क्योंकि उसका बाप क्या सोचेगा? कभी किसी बच्चे ने पीछे लौटकर नहीं देखा। यह बड़ी ज्यादती मालूम पड़ सकती है, लेकिन निश्चित, इससे डेफिनेट करेक्टर पैदा होगा। और उसने बाद में लिखा है कि आज मैं अनुभव करता हूँ कि उस समय मेरे पिता ने जितना प्रेम मुझसे किया और मेरे सारे वंश की सारी परम्परा का हकदार और मालिक बनाया और मुझ पर इतना

1 शिक्षा में क्रान्ति संकलन प्रेम कल्पना पृष्ठ 130

भरोसा किया कि पांच साल का बच्चा बिना रोये, बिना पीछे देखे जायेगा, उससे बड़ा सम्मान मेरे प्रति और क्या हो सकता है-आज! उस दिन तो उसने कहा कि बहुत दुख मुझे था कि बाप कठोर है, दुष्ट है। मां भी कैसी मां है लेकिन आज मैं जानता हूँ कि मुझे कितना सम्मान उन्होंने दिया है पांच साल के बच्चे को कि भरोसा था कि नहीं, उसने लौटकर नहीं देखा। लेकिन वह मोड़ तक घोड़े पर बैठा रहा।

इसका भी उपयोग है-इसका भी उपयोग है। आज दुनिया में जो इतना दबाव, डामिनेशन के माध्यम से नहीं, सम्मान के माध्यम से, आदर के माध्यम से आएं तो उसके परिणाम व्यापक हो सकते हैं!

1 शिक्षा में क्रांति पृष्ठ 132

समीक्षात्मक विचार

पहली बात तो, साधारणतः हम ऐसा ही सोचते हैं कि गुलामियों के कारण हमारे चरित्र का पतन हुआ, गुलामी के कारण हमारा व्यक्तित्व नष्ट हुआ!

गुलामी आयी, तभी हम चरित्रहीन हुए! उसको ही मैं कहना चाहता हूँ कि चरित्रहीनता गुलामी के कारण नहीं आयी बल्कि चरित्रहीनता के कारण ही गुलामी आयी और चरित्रहीन हम बने, ऐसा कहना मुश्किल है, चरित्रहीन हम थे। बनने का तो मतलब यह होता है कि हम चरित्रवान थे, फिर हम चरित्रहीन बने। तो हमे कारण खोजने पड़े कि हम चरित्रवान कैसे थे, कब थे। और कैसे हम चरित्रहीन बने! मुझे नहीं दिखायी पड़ता कि हम कभी चरित्रवान थे। हमारी चरित्रहीनता बड़ी पुरानी है और चरित्रहीन का काफी जो बुनियादी कारण है, वह हमारी संस्कृति में सदा से माजूद है। उसकी वजह से है। गुलामी का आना बिल्कुल स्वाभाविक था, और आज भी आ जाना बिल्कुल स्वाभाविक है। और अगर हम जो भी काम करेंगे चरित्रवान बनने के, वे सफल होने वाले नहीं हैं। वे सफल इसलिए नहीं होगे कि हम फिर वही काम करेंगे जो हमने सदा से किया है।

जैसे, एक तो चरित्र से हम जो मतलब लेते रहे हैं, इस देश में वह मतलब भी बड़ा भ्रान्त है। हमने चरित्र से एक ऐसा मतलब लिया सदा से, हम उस व्यक्ति को पूरा चरित्रवान कहते रहे, जो जीवन में दर्शक की भाँति खड़ा हो जाये। हमारी जो चरित्र की व्याख्या थी सदा से, वह यह थी कि श्रेष्ठतम तो आदमी वह है, जो जीवन में दर्शक की भाँति खड़ा हो जाये। जो जीवन में, जीवन के कर्म में, कमीटेड न हो जो बाहर खड़ा हो जाये जीवन की सारी व्यवस्था के। तो हमने अपने देश में जिन लोगो को सर्वाधिक आदर दिया वे, वे लोग थे जो एक अर्थो में जीवन को छोड़कर जीवन के बाहर खड़े हो गये थे। तो जो कौम जीवन के बाहर हो जाने को चरित्र की श्रेष्ठतम ऊँचाई समझेगी, उस कौम में जीवन के भीतर जो लोग हों, उनका चरित्र गिरना शुरू हो जायेगा।

जो काम धर्म को, शील को, ज्ञान को जीवन को छोड़ना बना देगी, त्यागवादी बना देगी, उस कौम के बहु-जन जीवन में चरित्रविलीन हो जायेगा, क्योंकि हमारे मन में कही एक बात

साफ हो गयी कि जीवित होना ही चरित्रहीनता है और किसी गहरे पापों का फल है अगर एक आदमी जन्मा है, तो वह अपने पापों का फल भोग रहा है और जो आदमी पापों के बाहर हो जायेगा, वह साथ ही जीवन के भी बाहर हो जाता है। उसका आवागमन बन्द हो जाता है।

तो जीवन का पाप पर्यायवाची है हमारे लिए और जिसके मन में जीवन..... और पाप की याद आती है, तो जीवन्त, चरित्रवान और पुण्यवान होने को उपाय नहीं रहता। जीवन से भागकर और पलायन ही उपाय है। तो भारत का मन हजारों साल से पलायनवादी, एस्केपिस्ट है। और इस वजह से हम जीवन के भीतर जहाँ चरित्र की जरूरत है वहाँ चरित्र पैदा नहीं कर पाये। हमने एक भगोड़ा चरित्र पैदा किया था। यह चरित्र काम का नहीं था। ज्यादा से ज्यादा पूजा के योग्य हो सकता था। यह चरित्र मंदिरों में बिठलाने योग्य हो सकता था। न यह युद्ध के मैदान में किसी काम का था, न यह बाजार के मैदान में किसी काम का था, न यह जीवन के सम्बन्ध में किसी काम का था। तो हम एक जीवन्त चरित्र पैदा ही नहीं कर पाते हैं।

इसलिए ऐसा कहना उचित नही है कि चरित्र हमने कभी भी खोया, ऐसा ही कहना ज्यादा उचित है कि वह जो संस्कृति विकसित थी उसमें चरित्र आ ही नही सकता। और अगर हम इसे ऐसा देख सकें तो हमे फिर पूरा का पूरा पुनर्विचार करना पड़ेगा और पुनर्विचार करें तो ही हम मूल स्रोतों को पा सकते है। पृथ्वी के जीवन को हम स्वीकार नही किये इसलिए पृथ्वी के जीवन में भी हम स्वीकृत न हो सके और हमने पृथ्वी को धन्यभाग से अंगीकार नही किया। इसलिए पृथ्वी भी हमे धन्यभाग से अंगीकार नही कर सकती हम उखड़े हुए लोग है जिनकी जड़ें नही है।

तो एक तो यह ख्याल में लेना जरूरी है कि भारत में हम कभी अगर चरित्र पैदा करना चाहे तो हमें एक तरह का पुनर्विचार करना पड़ेगा। हमे फिर से यह पृथ्वी जीने योग्य और इस जीवन को भोगना; रस; और इस जीवन के भीतर पुण्य और चरित्र की संभावना को ही स्वीकार करना पड़ेगा। और हमे तब इसके आसपास का पूरा दर्शन, इसके आसपास की

पूरी दृष्टि को नया करना पड़ेगा। जो कौमे भी परलोकवादी होंगी, उनका चरित्र कूड़ा होगा, रक्तहीन हो जायेगा। असल में रक्तहीनता ही चरित्र बद्ध है। और जहाँ भी रक्त दिखाई पड़ेगा वहाँ खतरा दिखायी पड़ेगा। क्योंकि जहाँ भी रक्त और स्नायु होगा, वहाँ जीवन के हजार स्पंदन शुरू हो जायेगें हम सबसे घबरायेंगे।

अब हमारी कठिनाई क्या है, हमारी कठिनाई यह है रक्तहीन चरित्र.....! रक्तहीन चरित्र कैसा होगा? सैक्स के भीतर चरित्र का उपाय नही है क्योंकि सैक्स तो चरित्रहीनता है, तो सैक्स से भागा हुआ ब्रह्मचारीभर चरित्रवान होगा वह रक्तहीन होने वाला है जबकि जीवन है चरित्र के भीतर। और सैक्स के भीतर का चरित्र का एक कोड चाहिए, वह विकसित नही हो पायेगा, उसके विकसित होने का उपाय नही रह जायेगा। उसे तो विकसित हम तब करते है जब हम स्वीकार कर लेते है कि यह रहा जीवन। इस घर के भीतर जहाँ मुझे जीना है, यहाँ की नैतिकता मैं विकसित नही करूंगा क्योंकि मैं मानता हूँ कि इस घर के भीतर होना ही अनैतिक है। इस घर के भीतर अनैतिकता आ नही सकती, मैं इसके बाहर हो जाऊं तो नैतिक हो जाऊंगा।

यह भारत का जो पुरातन, भागता हुआ मन है, उसको जड़े देने की जरूरत है और इस जीवन को जो हमें मना है, पृथ्वी का, शरीर का उसको किसी परलोक के जीवन के लिए समर्पित करने की जरूरत नही है। अगर परलोक का कोई जीवन है, तो उसके आनन्द, उसके पुण्य और उसके चरित्र को ही विकसित होना चाहिए, उसके भागने को नही।

तो एक जो जल्दी में ऐसा ख्याल लेना कि चरित्र कभी गुलामी के कारण आया तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। मेरे सामने यह सवाल उठता है कि वह कब था? वह मुझे कभी दिखायी नही पड़ता, पूरे ज्ञात इतिहास में कभी नही दिखायी पड़ता है। दिखाई पड़ने की हम कुछ भ्रांति में पड़ जाते है और इसलिए पड़ जाते है कि कुछ चरित्रवान लोग हमें दिखाई पड़ते है। वे कुछ चरित्रवान लोग सदा थे, वे आज भी है। लेकिन कुछ चरित्रवान लोगों से समाज नही बनता। समाज को चरित्र चाहिए।

तो दूसरी बात जो मेरे ख्याल में आती है वह यह है कि हमने एक चरित्र की और भी

विकसित व्यवस्था की है जो व्यक्तिवाची है। समुदाय का कोई चरित्र नही है। और एक एक व्यक्ति के चरित्रवान होने में हमारा आग्रह है। अगर वह चरित्रवान होता है, उसको स्वर्ग मिलता है, और चरित्रहीन होता है, तो नर्क मिलता है। लेकिन सामूहिक चरित्र भी कोई चीज हैं। उसकी हमें कोई धारणा नही है। मेरी समझ ऐसी है कि चरित्र होता ही सामूहिक है। व्यक्तिगत चरित्र बेमानी बात है। अगर जंगल में अकेला हूँ, तो झूठ और सच बोलने का कोई मतलब नही है। ब्रह्मचारी, गैर-ब्रह्मचारी होने का भी कोई मतलब नही है। नैतिकता, अनैतिकता का भी कोई मतलब नही है। सारा चरित्र वहीं से शुरू होता है, जहाँ से दूसरा मुझे छूता है।

तो जिस देश का चरित्र व्यक्तिवाची रहा हो, उस देश में सच्चे अर्थों में चरित्र पैदा नही होगा, क्योंकि चरित्र है ही वहाँ, जहाँ से दूसरा आता है मेरे जीवन में। वहां से पता चलता है कि मैं क्या कहूँ। मेरे अन्तर्सम्बन्धों में ही है, मेरी इंटर रिलेशनसिप नही है, मै। सर्वस्व होता हूँ, हमारी कसौटियाँ वहीं है। हमने असंगता को चरित्र कहा, दूसरों से छूट जाने को, हट जाने को, अलग हो जाने को, सम्बन्ध तोड़ जाने को। एक बेटा माँ के अलावा बेटे का चरित्र पूरा कर ही नही सकता और एक पति पत्नी के चरित्र को पूरा कर ही नही सकता। हमारी सारी चरित्रवानता हमारे सम्बन्धों की बात है और हमने जो चरित्र की भावना विकसित की है, वह व्यक्तिवाची है।

तो हमने तो कुछ व्यक्ति पैदा कर लिये, वे व्यक्ति ऐसे हुए जैसे कि नट रस्सी पर चलता है। जिंदगी तो रास्ते पर चलेगी, एक नट चल सकता है कि बम्बई के दो बिल्डिंगों के बीच एक रस्सी बांधकर चल ले तो वह तीर्थकर हो जायेगा या अवतार हो जायेगा। पर सारी दुनियां तो रस्सियों पर नही चल सकेगी। रस्सियां चलने के लिए नही है, नाटक के लिए हो सकती है। एक आदमी चल लेगा, करोड़ों आदमी तो उस मोटे रास्ते पर चलेंगें। उस रास्ते पर चलने का हमने कोई नियम नही बनाया है। हमने नियम बनाया है, रस्सी पर चलने वाले के और इस रास्ते पर चलने वाले तो कंडेम्ड ही है, तो उन्हें नियम बनाने की कोई जरूरत नही है, जरूरत तो रस्सी पर चलने वाले नट के लिए है। तो कभी करोड़ दो

करोड़ आदमी में एक आदमी नट हो जाता है और, महात्मा बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है और वह चल जाता है रस्सी पर। हम सब जय-जयकार करके, ताली बजाकर अपने सीमित रूप से चलने लगते है। उस राह का कोई नियम नही है, उस रूप की कोई व्यवस्था नही है। व्यवस्था और नियम रस्सी वाले के लिए है।

तो दूसरी मेरी समझ में है, हमें समूहवाची चरित्र का, और एक ऐसे चरित्र का जो भागता न हो, रूकता न हो, ठहरता हो, सम्बन्धित होता हो.... बल्कि सम्बन्धित होना ही चरित्रवान होने का एक लक्षण है। हम कितने बड़े पैमाने पर सम्बन्धित होते है। यानि मेरी तो समझ है कि जितना चरित्रवान व्यक्ति है उतना उसके संबंधों का अन्तर्जाल व्यापक होगा। जितना चरित्रहीन व्यक्ति होगा, उसके संबंधों का जाल!....उतना क्षुद्र और छोटा होगा। असल में जिनसे वह संबंधित भी होगा, चरित्रवान होने के कारण उसके और उसके संबंधों के बीच दीवार होगी, संबंध नही हो सकता। एक चोर का क्या संबंध हो सकता है, एक झूठ बोलने वाले का क्या संबंध हो सकता है, एक दगाबाज का क्या संबंध हो सकता है, एक जेबकट का क्या संबंध हो सकता है! असल में अनैतिकता जो है वह असंबंध है और जो हमारी नैतिकता है, वह भी असंबंध है। इन दोनो के बीच बड़ा एक समान तत्व है।

तो दूसरी जो मुझे दिखायी पड़ती है कि हम चरित्र की समूहवाची दृष्टि का विचार करें कि समूह में चरित्र का क्या अर्थ होता है। चूँकि व्यक्तिवाची चरित्र था इसलिए घूम फिर कर-हमारी सारी चरित्र की धारणा सैक्स के आसपास रूक गई। आज अगर हम कहते है कि फलां आदमी चरित्रहीन है, तो ऐसा पता नही चलता है कि वह समय पर न आता होगा, ऐसा पता नही चलता होगा कि वह किसी को पैसे में धोखा नही देता होगा, कि दूध में पानी मिलाता होगा। ऐसा पता चलता है-कि उसके और किसी स्त्री के बीच गलत संबंध है। इसलिए एक आदमी झूठ बोले, काला बाजारी करे, बस जिंदगी भर आँखें नीची करके गुजर जाए, किसी स्त्री की तरफ न देखे तो हमारे लिए चरित्र की वह आखिरी सीमा है, वह आखिरी मापदंड बन जाता है कि यह आदमी महान चरित्रवान है क्योंकि स्त्री को नही देखता है।

दूसरी बात: जीवन में एक बार अगर हमने पलायनवादी रूख ले लिया तब हमारी नीति और समस्त चरित्र किसी गहरे अर्थ में उतार का और भोगने का होता है और जीवन उनका है, जो आक्रामक है। एक बार उन्होनें तय कर दिया हो कि आक्रमण नही, तो उससे कोई अर्थ नही होता। और जीवन की बड़ी तकलीफ यह है कि यहाँ विकल्प हमें चुनने पड़ते है। या तो आप आगे बढ़िये, या आप पीछे हटा दिये जायेंगें। बीच में खड़े होने की कोई जगह ही नही है यानि कोई यह सोचता हो कि हम आगे न बढ़ेंगे तो हम वहाँ तो खड़े ही रहेंगे जहाँ हम खड़े है तो हम गलती में है। जिन्दगी ऐसे आदमी को वहाँ खड़ा नही रखती है पीछे हटा देती है।

एडिंगटन ने एक बात लिखी है कि मनुष्य की भाषा में 'रेस्ट'....जो सत्य है वह जीवन में उसका पर्याय कहीं भी नही है। रेस्ट शब्द बिल्कुल झूठा है। विश्राम में कोई चीज ही नही है। या तो आगे जा रही है, या पीछे जा रही है। ठहरी हुई कोई भी चीज नही है, खड़ी हुई कोई भी चीज नही है। या तो वृक्ष जवान हो रहा है या बूढ़ा हो रहा है। या तो आप ठहर गये है या तो सिकुड़ने लगे है या तो आप जी रहे हैं या मरने लगे हैं। इन दोनों के बीच में ऐसी कोई जगह नही है कि एक आदमी कहे कि मैं जी तो रहा हूँ, लेकिन आगे जीवन में नही बढ़ पा रहा हूँ मैं ठहर गया हूँ। तो उसे पता नही, उसने मरना शुरू कर दिया है। या तो आप पहाड़ पर चढ़ गये है, या नीचे उतर गये हैं।

इस देश के साथ क्या कठिनाई हो गयी है कि जीवन की जो सारी सहज बातें है वे सब हमें निंदित करती हैं। जैसे विस्तार है, वह हमारे लिए निंदित हो गया है। हमने अनेक नामों से उसकी निंदा की और संकोच को अनेक नामों से प्रशंसित किया। अब एक आदमी धन बढ़ा रहा है, तो हमने उसकी निंदा की। हमने कहा कि वह परिग्रहि है। एक आदमी अगर शक्ति बढ़ा रहा है, एक आदमी अगर सौंदर्य बढ़ा रहा है, एक आदमी अगर योजनाएं बना रहा है विस्तार की तो हम सबकी निंदा करते है। हमने उन आदमियों की प्रशंसा की, जो सब तरफ से संकोच करता है, सिकोड़ रहा है अपने को।

तो हमारा चरित्र जो है, वह संकोचवान है, विस्तारवान नही है। और जीवन जो है,

विस्तार को मानता है, वह संकोच को नही मानता है। और जिस दिन हमने यह तय कर लिया कि हमें सिकुड़ना है उस दिन हमारे पांव ने स्वाभावतः तय किया है, हमको फैलना नही है, हमको ठहरना है। कोई कठिनाई नही है कि मैने अपने घर को छोटा करना चाहा, पड़ोसी ने अपने घर को बड़ा करना चाहा। फिर हम गुलाम हुए। फिर इस गुलामी का सारा जिम्मा पड़ोसी पर नही है, हमारे संकोच की धारणा पर है। और हमारे सारे महात्मा आज भी और अनन्त काल से हमको संतोष सिखा रहे है। वे कहते है सिकुड़ जाओ। उस दिन तक सिकुड़ते जाओ, जिसके आगे सिकुड़ने की जगह न रह जाये। तो हम जगह नही देते है, उस जगह में सब भर जाता है।

हिन्दुस्तान में बुद्ध और महावीर के बाद भयंकर संकोच पैदा हुआ। हिन्दुस्तान के मानव में बुद्ध और महावीर के बाद उतना संकोच पैदा हुआ कि उस संकोच की वजह से हिन्दुस्तान में सब तरह के आक्रमण आमंत्रित हुए। मेरा मानना यह है कि हमारे सब आक्रमण आमंत्रित है। यानि मै ऐसा कहता हूँ कि हम आक्रमण करने ही नही जाते, अगर हम न करें तो हम बुलाते है। इन दोनों के बीच जगह नही है। या तो हम आक्रमण करने जायेंगें, या हम किसी आक्रामक को बुलायेंगे। और बढ़े मजे की बात यह है कि जिसकी आप बात करते है, अनुशासन और डिसिप्लिन की, वह संकोच की कौम में कभी नही होता। उसकी जरूरत नही होती। वह विस्तारशील जाति का लक्षण है अनुशासन का, क्योंकि विस्तार के लिए अनुशासन जरूरी है। बिना अनुशासन के विस्तार नही किया जा सकता।

इसलिए बहुत बार ऐसा हो जाता है कि ज्यादा श्रेष्ठ संस्कृति कभी अपने से निकृष्ट संस्कृति के सामने झुक जाती है, अगर वह विस्तारवादी नही है। और सदा ऐसा हुआ है–चंगेज या तैमूर या हिन्दुस्तान में आये हुए सब आक्रामक चाहे वे हूण हों, चाहे वे मुगल हो, चाहे तुर्क हो, कोई भी हो जो भी हिन्दुस्तान में आये, हिन्दुस्तान की संस्कृति के मुकाबले वे सब पिछड़ी हुयी कौमे थी। लेकिन एक मामले में हम मुशकिल में पड़ गये। वे आक्रामक थे और डिसिप्लिंड थे। हम अनाक्रामक थे, अनाक्रामक को डिसिप्लिन की कोई जरूरत न थी अब हमें आक्रमण करने नही जाना है, तो हम दंड–बैठक नही लगाते है। जब आप मुझ

पर आक्रमण करते है तब मैं दंड–बैठक लगाना शुरू करता हूँ। या वैसे ही है जैसे कि आग लग जाये, तब हम कुंआ खोदने लगते है। कुंआ जब तक खुदता है तब तक मकान जल जाता है। लेकिन आग लगाने निकलेंगें तो आग से जलने का डर सदा ही है। जैसे कि तैमूर और चंगेज एकदम आपेक्षित, एकदम बब्बर और जंगली। साधन भी उनके पास बहुत नही है, लेकिन फिर भी एक अदम्य अभीप्सा फैल जाती, तो उन्होने यूनान तक हिला दिया और इधर चीन के कोने तक हिला दिये। पूरा एशिया और यूरोप–थोड़े से टुकड़ों ने, एक–एक ईंट बजा दी, रोम से लेकर और पेचिंग तक सबको हिला दिया एक दफा। और जो कि बड़े गिने थे, उनको, जिनके जमाने की जो लम्बी पुरानी कहानी है और जिनको संदेह मिट गया था कि हम कभी हराये जा सकते हैं–उनको बड़ी छोटी कौमों ने, बड़ी खानाबदोश कौमों ने जिनके पास कोई बहुत सामर्थ न था, लेकिन उनके सामने विस्तार की अभीप्सा थी। और विस्तार की अभीप्सा के पीछे अनुशासन आता है। सिर्फ रक्षा की अभीप्सा में अनुशासन नही आता है। तो मेरी अपनी समझ यह है कि आप सिर्फ अनुशासन का गुणगान करें, तो आप अनुशासन पैदा नहीं करवा सकते हैं। अनुशासन का भी अपना अनुशासन है। अनुशासन का अपना मेथड है। वह आता ही तब है, जब कोई विस्तारशील भावना काम करती है, जब हम फैल जाना चाहते हैं।

अब जैसे, आज अमेरिका में या रूस में समय का एक अनुशासन पैदा होगा, जो उन दो मुल्कों के सिवाय कही भी पैदा नहीं होगा क्योंकि उन्होंने अंतरिक्ष का विस्तार शुरू किया। अभी तक जो समय का अनुशासन था, वह घंटो में चल सकता था, मिनटो में चल सकता था। अब जो समय का अनुशासन है वह सैकड़े के हजारवें हिस्से में भी चलाना होगा। क्योंकि अब अंतरिक्ष की यात्रा जो है उसमें एक सैकड़े की भूल–चूक हो जाने से हमारा यात्री सदा को मुक्त हो जायेगी। तब अमेरिका एक ऐसा टाइम डिसिप्लिन को उपलब्ध हो जायेगा, जिसकी हमे कल्पना नहीं हो सकती।

असल में बैलगाड़ी में जो चल रहा है, उसके टाइम का अनुशासन अलग होगा और राकिट में जो चल रहा है, उसके टाइम का अनुशासन अलग होगा। बैलगाड़ी में चलने

वाली कौम से हम कहें कि तुम समय से आ जाओं, तो हम बात गलत कहते हैं। हम उससे कहे तुम ठीक 6 बजे आ जाना तो इसका कोई मतलब नहीं होता। बैलगाड़ी में तीन होता है समय-सुबह,दोपहर,शाम। वह 6-6 घंटे की होती है। इनका जो विस्तार है-एक आदमी कहता है हम सांझ आ जायेगे सूरज ढलने पर। सूरज ढलने पर आ सकता, सूरज ढलने के घंटे भर पहले आ सकता है सूरज ढलने के चार घंटे बाद आ सकता है। अभी सांझ ही चली है, क्योंकि बैलगाड़ी भरोसा योग्य ही नहीं है। बैलगाड़ी का अपना समय है।

पैदल चलने वाले आदमी के समय में घंटे नहीं होते हैं, दिन होते हैं। लेकिन अब, जब हम अंतरिक्ष की यात्रा पर निकलेंगे, तो सेकैंड के हजारवें हिस्से एक्यूरेसी चाहिये। अब चांद का विस्तार अमेरिका के मन टाइम का जो बोध देगा, वह हमारे मन मे नहीं हो सकता है। अमरिकी सैनिक के मन में, अमरिकी युवक के मन में जिस नई यात्रा के अभियान पर निकला है वह सारी दुनिया को पीछाड़ देगा समय के मामले में। उसके बराबर समय की सच्चाई किसी में नहीं रह जायेगी। लेकिन, यह आती है एक दूसरी व्यवस्था से। वह फैल रहा है, पृथ्वी को छोड़कर बाहर जा रहा है। असल बात यह है कि अब पृथ्वी आक्रमण के लिए बहुत छोटी पड़ गयी है अब जो आक्रमण बना है, अब उनके लिए पृथ्वी बहुत छोटी है। वह एक दुर्बल विलेज से ज्यादा नही है एक बड़ा गांव है जो जमीन पर फैला हुआ है अब तो वृहत आंकाक्षा है, वे चांद -तारे मंगल और दूर के तारो पर बस्तियाँ बसायेंगे।

तो मेरी अपनी समझ यह है कि भारत को विस्तारवादी, अब यह शब्द बड़ा खराब मालूम पड़ता है और हमारे हजारो साल की निन्दा में उसको बड़ा गन्दा कर दिया है इसके मानस मे विस्तार चाहिये, वह विस्तार बहु-आयामी होगा। धन का भी हो, यश का भी हो, ज्ञान का भी हो, यात्रा का भी हो, अभियान का भी हो, एडवेन्चर का भी हो, वह समस्त दिशाओं में विस्तारवादी हों। तो भारत के युवक की जो पीड़ा है वह पीड़ा यही है कि युवक होता है विस्तारवादी और भारत का मन है संकोचवादी। भारत का मन है बूढ़े का और उसमें भारत के युवक के मन के लिए भारत के मन के साथ बड़ी बेचेनी हो गयी है।

यह लड़ाई बाप से नहीं है भारत के लड़के की, यह लड़ाई बुढ़ापे से चल रही है। यह लड़ाई संकोच से चल रही है। वह कोई कांशेस नहीं है, कोई बहुत साफ नहीं, जो हो रहा है, वह क्या हो रहा है! और हम अपने पुराने ही ढांचे में बिठाने की कोशिश में लगे हैं। वह ढांचा उसके काम का नहीं साबित होगा, वह ढांचा तोड़कर बाहर निकलेगा। क्योंकि अगर हमने समझपूर्वक काम लिया, तो वह खुद ही बिना टूटे हुए ढांचे के बाहर हो सकेगा, नहीं तो ढांचा तोड़ने में फिर भी टूट जायेगा।

तो एक तो मेरा ख्याल है कि भारत के मन मे हमे अभीप्सा जगाने की जरूरत है। कोई हमने ढाई तीन हजार वर्ष से सपने नहीं देखे। कोई बड़ा सपना नहीं देखा सिवाय मरने के और मोक्ष जाने के, जोकि कोई सपना नहीं है। हमने तीन हजार वर्ष में ऐसा कोई सपना नहीं देखा जिसको पूरा करने में हमारी शक्तियों की भी पुकार आये। जिसको पूरा करने के लिए हमारा युवक डूबे, जिसको पूरा करने के लिए युवक की जवानी रस ले। हमने कोई सपना नहीं देखा। अगर हम पूरा अपने इतिहास को देखें तो हम बड़े हैरान होंगे कि अकेली कौम हैं इस पृथ्वी पर जिसके पास कोई उटोपिया और कोई बड़े सपने नहीं है। जरूरी नहीं है कि वे सपने पूरे होनेवाले है। सच तो यह है कि सपने ऐसे चाहिए जो कभी पूरे होने वाले न हों। जो हमें रोज बुलाते रहें और हम रोज बढ़ते रहें और कभी पूरे भी न होते हों।

गुरू

ऐसी एक संस्कृति की जरूरत है, जो बचपन से ही भेद पैदा न करवाती हो, अभेद की तरफ ले जाती हो। सच तो यह है कि बच्चे के मन में पहले भेद नहीं होते, भेद हम सिखाते हैं। यहां तक सच है कि बच्चे को सपने में और सत्य में भी भेद मालूम नहीं होता। रात में बच्चा सपना देख लेता है तो सुबह रोता है। रात उसके पास खिलौना था सपने में, वह कहां है! अभी बच्चे को यह पता नहीं है कि जो सपने में देखा वह सपना है, यह जो बाहर देख रहा है, यह और है। अभी बच्चे को जो दिखाई पड़ता है तो वह अगर अपने पिता को पिता कहता है तो वह पिता कहेगा। अभी उसे इसका फर्क करना मुश्किल है कि वह पिता नहीं है कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। अभी उसे कुछ भी पता नहीं है। अभी वह अभेद की दुनिया में है लेकिन यह अभेद अज्ञानपूर्ण है।

एक संत फिर इसी दुनिया में प्रविष्ट होता है, लेकिन तब वह अभेद ज्ञानपूर्ण है। यह अज्ञानपूर्ण है, इसलिए हम इसे खंडित कर देगें। संत के भेद-अभेद को फिर हम खंडित नहीं कर पायेंगे, क्योंकि वह ज्ञान से आया है। बच्चे अभेद से आते हैं और भेद सिखाया जाता है। जरूरी है, कुछ भेद सिखाने जरूरी हैं। जीवन के लिए उपयोगी हैं। बताना जरूरी है कि क्या जहर है और क्या अमृत है, और बताना जरूरी है कि कहां दरवाजा है और कहां दीवार है, और यह भी बताना जरूरी है कि कहां हानि है और कहां लाभ है। ये सब भेद बताने जरूरी हैं। यही गुरू का कार्य है।

लेकिन, इन सब भेद के पीछे भी अभेद का एक भाव उसमें विकसित होता रहे। यानी उसे यह भी पता हो, कभी-कभी जहर अमृत भी होता है और कभी-कभी अमृत जहर भी होता है। उसे यह भी पता हो कि ऐसे व्यक्ति भी हें जो जहर देने से भी बच जाते हैं और ऐसा भी हो जाता है कि अमृत भी ज्यादा आ जाए तो जान ले ले। बच्चा बड़ा होगा तो कुछ भेद सिखाने पड़ेंगे। लेकिन वे भेद काम चलाऊ हैं, इसका बोध भी विकसित होना चाहिए और वे भेद हम मनुष्य की सीमाओं को देखकर कर रहे हैं, इसका बोध भी होना

चाहिए। और उन भेद के भीतर एक अभेद की धारा भी बह रही है। चीजें भीतर से जुड़ी हैं, यह भी उसको विकसित होना चाहिए।

हमारी जिंदगी का इम्पैक्ट आने वाले बच्चे पर इस भांति का होना चाहिए कि उसे जीवन अखंड मालूम पड़े। जैसे उसे यह बाहर और भीतर, सब्जेक्टिव और ऑब्जेक्टिव ऐसा न मालूम पड़े- ऐसा मालूम पड़े, एक ही जिंदगी है। वह जो मैं खाना खाता हूं तो वही आदमी हूं, जब मैं प्रार्थना करता हूं, तब भी वही आदमी हूं और मेरी प्रार्थना किसी गहरे मार्ग से मेरे खाने से जुड़ी है, अलग नहीं हो सकती। यह अंतस-सूत्र, इसका बोध आने लगे उसे, यानी उसे यह पता चलने लगे और इस पता चलने में कठिनाई नहीं हे, क्योंकि बच्चे को असल में होता ही यह है कि वह खाना खाते वक्त भी वही है और प्रार्थना करते वक्त भी वही है। उसे देखकर अड़चन यह होती है कि पिता खाना खाते वक्त और आदमी होता है, दुकान पर दूसरा आदमी होता है, प्रार्थना करते वक्त तीसरा आदमी हो जाता है। घर में आता है तो और तरह का आदमी हो जाता है और नौकर के सामने और तरह का आदमी हो जाता है। उसकी समझ के यह बाहर होता है।

अगर एक बच्चे को कहा गया कि पिता को आदर करो, वे वृद्ध हैं, तो वह बूढ़े नौकर को भी आदर करना चाहता है। क्योंकि अगर वार्धक्य, वृद्धास्था आदर की बात है तो फिर बूढ़ा नौकर भी आदर की बात है। यह हम बड़े की समझ के बाहर हो जाता है। हम कहते हैं, नहीं ऐसा नहीं है- वृद्ध पिता, यानी अपने पिता को, वह तो नौकर है! और तब हम एक भेद खड़ा कर रहे हैं और यह भेद नौकर और पिता में खड़ा नहीं हो रहा है, यह भेद उस बच्चे के भीतर दो चेहरे बना रहा है कि नौकर के साथ और चेहरा रखना है, पिता के साथ और चेहरा रखना है। मंदिर में और ढंग से खड़े होना है, दुकान में और ढंग से बैठना है। दुकान में चालाकी चाहिए, मंदिर में सरलता चाहिए। तो हम उसको इस तरह से खंड सिखा रह हैं। और इस तरह की पर्तें उसके पास खड़ी होती चली जायेंगी, उसे भी धीरे- धीरे ये भेद बड़े पक्के मालूम होने लगेंगे।

असल में इस भांति की व्यवस्था होनी चाहिए सारे शिक्षण की, बचपन से, मां, बाप के पास से लेकर स्कूल-यूनिवर्सिटी तक, कि उसे निरंतर बीच में चीजें जुड़ी हुई हैं, इसका भाव बना ही रहे। हर दो विरोध के बीच भी कोई चीज जुड़ी हुई है भीतर, उसे वह दिखाई पड़ता रहे। और एक बात तो उसके सामने साफ ही हो जानी चाहिए कि मैं अखंड हूँ। मेरा बाहर, और मेरा भीतर ऐसी दो चीजें नहीं हो सकती। जो मैं बाहर हूँ। जो मैं भीतर हूँ, वही मैं बाहर हूँ। और तब उसके भीतर, जिसको हम कहें अखंड व्यक्तित्व, एक इंडिवीजुएशन इंटीग्रेटेड-असल में इंडिवीजुअल का मतलब यह होता है, इकट्ठा, जो डिवीज़िबल नहीं है, जिसके खंड-खंड नहीं हैं।

हमारी जो समाज व्यवस्था है, वह पर्सनैलिटि बना देती है, इंडिविजुअलिटि पैदा नहीं कर पाती। वह व्यक्ति को, व्यक्तित्व नहीं देती, लेकिन व्यक्ति नहीं बना पाती। व्यक्तित्व का मेरा मतलब है...... और एक व्यक्तित्व नहीं होता, उसके बहुत व्यक्तित्व होते हैं, क्योंकि उसको बहुत खंड बताए गए हैं। और सब खंडों में अलग-अलग होता है। और वह बाहर से....... उसके कई पर्सोने..... कई तरह के व्यक्तित्वों को चिपका रहता है वह अपने चारों तरफ। जब जैसी जरूरत होती है, तब वह वैसा आदमी हो जाता है। भीतर उसके पास कोई एक व्यक्ति नहीं होता जो सब स्थितियों में, जो सब रूपों में बाहर, भीतर, मंदिर में, दुकान में एकरूप रखता हो।

तो आज एक ऐसी नयी शिक्षा व्यवस्था चाहिए, जो बच्चे को यह न कहती हो कि झूठ न बोलो। जो बच्चे को यह कहती हो कि जब तुम झूठ बोलो तो तुम जानो, पहचानो कि तुम झूठ बोल रहे हो और इससे घबराने की, भागने की कोई जरूरत नहीं है। बस इसको तुम जानो कि तुम झूठ बोल रहे हो। इसको तुम पहचान लो, हम तुम्हारे लिए सहयोगी बन सकें, तुम पहचान सको कि तुम झूठ बोले, बात खत्म हो गयी। हमें तुम्हें कुछ और कहना नहीं है। यह भी नहीं कहना है कि तुम मत बोलो, कि तुम छोड़ो, यह सवाल नहीं है। तुम सिर्फ पहचान सको, तुम्हारी सेंसिटिविटी इतनी बढ़ जाये कि ऐसा न हो कि तुम झूठ बोलो,

तुम्हें पता भी न चले कि तुम झूठ बोल गये हो। यह हो रहा है........ यह हो रहा है। आदमी को पता नहीं चलता है कुछ!

अगर चाहिए कि शिक्षक कहता है कि झूठ मत बोलो तो शिक्षा के क्षेत्र से सारे भय को सिसर्जित कर दो। लोगों को अभय करो। उनको इतना हिम्मतवार बनाओ कि वह कोई भी तकलीफ झेलने को तैयार हो जाये आनंद से। लेकिन झूठ की तकलीफ झेलने को राजी न हों।

ओशो ने कहा मैं ऐसी शिक्षा चाहता हूं, जहां रोज की जिंदगी ही लक्ष्य है। भविष्य कुछ है नहीं! आज जो जी रहा हूं, वही सब कुछ है। इसको जानूं, समझूं, पहचानूं और इसको पहचानने, जानने, समझने में, कैसी हवा चारों तरफ सहयोगी होगी, वह हवा हम शिक्षा संस्थाओं में दें। वह हवा हम वहां बनायें। जो सच बोले, उसको हम आदर करें, चाहे सच कितना ही कठोर हो। चाहे सच कितना ही निर्मम हो और चाहे सच कोई भी नगन्ता को प्रगट करता हो, लेकिन सच आदृत होगा- सच ही आदृत होगा। सच का आदर बढ़े, सच की प्रतिष्ठा हो, और सच कैसे समझा जाये और कैसे हम पहचाने कि कहां हम झूठ को पकड़ते हैं, क्यों पकड़ते हैं, उसकी समझ, उसकी पहचान बढ़ाने की सारी साधनाएं पहले दिन से शिक्षा के ...... न भूगोल उतना महत्तवपूर्ण है, न गणित, न कैमिस्ट्री, न फिजिक्स, जितनी कि एक मैडिटेटिव अवेयरनेस, घ्यानपूर्ण चित्त जो कि एक चित्त के....... आज जो चित्त है, उसको समझने में सहयोगी होता चला जाये। और मजा यह है, जितनी हमारी गहरे में समझ बढ़ती है, उतना ही रूपांतरण हो जाता है। समझ साधन है और समझ से बड़ा कोई साधन नहीं है।

स्वतंत्रता और अनुशासन

अनुशासन का मतलब बड़ा सपना जो युवक के मन को भा जाये और वह उससे जूझ सके। अब हम देखते हैं कि लड़के को भेज देते हैं पढ़ने लेकिन मजा यह है कि उस लड़के को दिखाई पड़ रहा है कि एम.ए. के बाद फिलासॉफी होने वाला है। आप यह नही देख रहे हैं कि उसके आगे क्या होने वाला है। भविष्य क्या है उसके लिए? ज्यादा मौके इसी बात के हैं कि एम.ए. फर्स्ट क्लास लेकर दफ्तरों के सामने क्यू वह यूनिवर्सिटी में मेहनत करे।

ओशो कहते हैं मै यूनिवर्सिटी में यह देखकर हैरान हुआ कि कितने लड़के हैं जो डरते हैं कि अगर हमारी शिक्षा विश्वविद्यालय को पूरी हो गयी तो फिर। इसका भय भी मैने अनुभव किया। इसके लिए भयभीत हैं लड़के कि अब इस साल एम. ए. पूरा हुआ जा रहा है तो अगले साल के लिए हमें खड़ा होना है किसी एम्पलायमेंट ऑफिस के सामने, और क्लर्क के सिवाय कुछ भी नहीं है। वह भी मिले, तो मुश्किल है। सौ रूपये की नौकरी मिलना मुश्किल है। वह लड़का डर रहा है। पूरे मन से यह घबराहट है कि दो साल और युनिवर्सिटी में गुजर जायें तो दो साल मैं और लगा दूँ। यानी आप जो देख रहें है कि पचास प्रतिशत लड़के फेल हो रहे हैं, इससे फेल होने में भविष्य की कमी है। भविष्य कोई है ही नहीं।

आज से चालीस साल पहले जो लड़का मेहनत कर रहा था विश्वविद्यालयों में उसका भविष्य था। अगर वह मिडिल भी पास हो जाता तो तहसीलदार हो जाता। आज से चालीस साल पहले मिडिल बड़ी भारी पोस्ट थी। पहला लड़का जो इलाहाबाद में मैट्रिक हुआ उसका हाथी पर जुलूस निकाला गया। सारे इलाहाबाद में फूल बरसाये गये कि एक लड़का मैट्रिक पास हो गया। उस लड़के का जो मजा मैट्रिक पास होने में आया होगा वह आज किसी लड़के को पी.एच.डी. होने में भी नही आने वाला हे। और गधे पर भी नहीं बिठायेंगे हाथी तो बहुत दूर की बात है बल्कि अगर वह पी.एच.डी. हो गया है तो उससे सवाल और करेंगे वह किस मतलब से पी. एच. डी. हुआ है।

आज के पहले शिक्षा थी कम, काम था ज्यादा भले आदमियों ने अनिवार्य शिक्षा कर दी अनिवार्य करके शिक्षित तो ज्यादा तैयार कर रहे हैं काम हम पैदा नहीं कर पा रहे हैं। शिक्षित बढ़ता तो जा रहा है काम बिलकुल नही बढ़ रहा है। तो छात्र परेशानी में पड़ गया है उससे जब हम बातें करते हैं तब उसको क्रोध आता है। बजाय हमारी बातें पसंद करने के और जो हमारा नेता है उसको जब समझाने जाता है तो उसका मन होता है कि इसकी गर्दन ही दबा दूँ और वह दबा रहा है और दस साल के बाद हिन्दुस्तान में नेता होना अपराधी हो जाने के बराबर हो जाने वाला है।

तो हम जो उनका हजारों साल से सप्रेस किये हुए हैं उनको मुक्त करना है। हम लड़के को जीवन में क्या स्वतंत्रता नहीं है उसको और मामले तो बहुत दूर है। एक आदमी जिन्दगी में शायद मैं कहूँ कि नब्बे प्रतिशत प्रेम की दृष्टि मांगता है और दस प्रतिशत जो मांगता है वह उसके प्रेम के आस-पास की होती है तो दस प्रतिशत भी वह उसके प्रेम के लिए खो सकता है। लेकिन उसकी भी स्वतंत्रता हम उसे दे नहीं पा रहे हैं। अगर हिन्दुस्तान में सिर्फ प्रेम का मार्ग खुला छोड़ दें तो भी हिन्दुस्तान का युवक और सक्रिय हो जायेगा।

बीसवीं सदी ने पहली दफे समाज के ढांचे को ढीला किया है और व्यक्ति की आत्मा को प्रखर किया है। लेकिन इससे हमें बहुत बेचैनी होती है। क्योंकि जब ढांचे ढीले होते हैं तो अराजकता आ जाती है। जब ढांचे ढीले होते हैं तो इंडिसिप्लिन आ जाती है। जब ढांचे ढीले होते हैं तो अनुशासन टूट जाता है। असल में, अनुशासन का वक्त गया। भविष्य में पुराने दिनों का अनुशासन नहीं हो सकता और जब तक हम पुराने अनुशासन की जिद्द करेंगे तब तक भविष्य का एक नया अनुशासन जो पैदा हो सकता है वह भी पैदा नहीं होगा पुराना अनुशासन समाज आरोपित था, नया अनुशासन व्यक्ति से अवाविर्भुत होगा। वह एक इनर-डिसिप्लन होगी जो व्यक्ति के भीतर से आएगी।

जब व्यक्ति पैदा हो चुका है तो अनुशासन समाज नहीं थोप सकता। जब व्यक्ति पैदा हो चुका है तो हमें नया अनुशासन खोजना पड़ेगा। जिसका निर्णायक व्यक्ति होगा।

असल में हमे अनुशासन की सारी परिभाषा बदलनी पड़ेगी। अब अनुशासन आत्मनुशासन ही होगा, अब अनुशासन समाज अनुशासन नहीं हो सकता। असल पुराना सारा अनुशासन किसी के द्वारा दिया गया है, नया अनुशासन अब किसी के द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। व्यक्ति पैदा हो चुका है और उस ढांचे को थोपना चाह रहे हैं जो व्यक्ति-पूर्व है, प्रि-इंडिविज्युल है। वह नहीं टिक सकता। इसलिए बच्चे अगर आपकों बगावत करते मालूम पड़ रहे हैं तो इसमें बच्चों का कसूर नहीं हैं असल में आपने बच्चों को व्यक्त्वि दे दिया ओर आप अनुशासन वह दे रहे हैं, जो समाज का है। जो समाज का है। ये दोनों बातें साथ नही चल सकती। जब व्यक्ति पैदा हो गया है, विचार पैदा हो गया है तो अब तो व्यक्ति को अपना अनुशासन स्वयं तय करना पड़ेगा।

अध्याय षष्टम्

"निष्कर्ष एवं सुझाव"

अध्याय - 6

निष्कर्ष एवं सुझाव

पराभाव के काल खण्ड में किसी भी राष्ट्र का जीवन प्रभाव अवरूद्ध हो जाता है। राष्ट्र के घटकों को धर्मभ्रष्ट करने का षडयंत्र रचा जाता है। भौतिक रूप से ही नहीं वरन परतंत्र राष्ट्र के घटक मानसिक और आत्मिक रूप से गुलाम बन जाते हैं। उनका आत्मसम्मान नष्ट होने लगता है प्रतिभा कुंठित हो जाती है। परंतु यह गुलामी क्यों थी, गुलाम भी हम इसलिये थे क्योंकि टेक्निकली हम विकसित नहीं हो पाये और पिछले सैकड़ों सालों का इतिहास देखें, कि जब भी हम हारे और जिससे भी हारे वह कौम हमसे अधिक ताकतवर नहीं थी सिर्फ टेक्नीकली हमसे ज्यादा विकसित थी पहली दफा मुसलमान हिंदुस्तान में आये तो हिंदुस्तान का राजा हाथी पर लड़ने गया। वह टेक्नीकली गलत था घोड़े से लड़ने वाले से हार जाने वाला था। घोड़ा जल्दी बचता है, हाथी बिल्कुल बेहूदा जानवर है, तो आप हाथी से लड़ने गये। अंग्रेजो से हारने का कोई बड़ा कारण नही था, बल्कि टेक्नीकली जब भी कोई देश आयेगा हम हार जायेगें। अब दुनिया में ऐलौपैथी विकसित हो गयी है और यहाँ के लोग आयुर्वेद की बाते करते चले जा रहे हैं और उनको गवरमेंट सहायता कर रही है दो हजार साल में सांइस कहाँ से कहाँ पहुंच गयी और इधर जड़ी बूटियों की बातें हो रही हैं। तो हर चीज़ में यह देखना है कि कौन आगे है। और हम जब सारे जीवन की टेक्नॉलॉजी को ध्यान देकर चलेगें तो पाचास साल में हिंदुस्तान बिना किसी से सहायता लिये खड़ा हो सकता है।'' 1

अगर हिंदुस्तान का माइंड गाँधी की पूजा करता चला जाता है तो ओशो का यह मानना है कि यहाँ कभी टेक्नॉलॉजी विकसित नही हो सकती ये दोनों बाते जुड़ी हुई हैं।

परंतु ओशो को ये दोनो विचारधारायें पूर्णतः स्वीकार नहीं थीं अतः उन्होंने उसे स्वीकार किया जो उनके हिसाब से सत्य था, क्योंकि राष्ट्र न तो कोई निर्जीव वस्तु थी न कोई पुस्तक जिसे पढ़ते समय जहाँ से छोड़ दिया गया वहीं से दोबारा पढ़ना प्रारम्भ करें।''2

1. नयी क्रांति की रूपरेखा - सम्पादक - नरेन्द्र बोधिसत्व- पृष्ठ - 99

2. तथैव - पृष्ठ - 100

उनका मानना था कि समयानुसार व्यक्ति को ही बदलना पड़ेगा, बदलना ही चाहिए। अंग्रेजों के जाने के बाद गाँधी अधिक दिनों तक जिंदा नहीं रह पाये तथा राज्य सत्ता जिनके हाँथों मे आयी वे भारत की भावना को न तो समझ पाये और न उनके वे सपनें रख पाये जो गाँधी को अपने लगते। अंग्रेजों से लड़ते समय हमने चाहे जितना स्वदेशी का नारा लगाया हो किन्तु उनके जाने के बाद सम्पूर्ण जीवन को तथा अपनी समस्याओं को उन्हीं के चश्में से देखा इसलिए हमारी सभ्यता तथा संस्कृति पर छाप अंग्रेजी है तथा विकास भारतीय है।'' 1

अतः शोधार्थी का मानना है कि ओशो ने देश की दिशा निश्चित करने का कार्य किया। कुल मिलाकर इनमें से प्रत्येक आदर्श एक-दूसरे का घातक है इसलिए पश्चिम भी पूरे आत्मविश्वास के साथ यह नहीं कह सकता कि हमारी विचारधारा, हमारा मार्ग निसंदेह सत्य एवं उपयुक्त है।

संस्कृति ही किसी राष्ट्र की पहचान का आधार होती है इसलिए किसी भी देश की शिक्षा उस देश की संस्कृति पर ही आधारित होती है। संस्कृति के हस्तान्तरण, संरक्षण और सम्वर्धन का कार्य शिक्षा ही करती है। अतएव अनेक विद्वानों ने शिक्षा के भारतीकरण पर जोर दिया है।

प्रो. बलराज मधोक के अनुसार - भारतीयकरण का आशय है- भारत और भारतीय संस्कृति के प्रति रागात्मक, भावनात्मक सम्बंध रखना। अतः किसी व्यक्ति का भारतीयकरण अर्थ हुआ उसमें संस्कारों द्वारा तथा सजग, सामाजिक एवं राजनैतिक प्रयासों द्वारा भारतीयता की भावना भरना ताकि वह भारत से अपना तादात्म्य कर सके और अपने सामाजिक, धार्मिक, भाषायी, राजनीतिक आदि वर्गो से ऊपर भारत के प्रति निष्ठा रखें - वस्तुतः भारत राष्ट्र के प्रति राष्ट्रीय भावना जीवित करने का दूसरा नाम है - भारतीयकरण।'' 2

1. तथैव - पृष्ठ - 100

2. भारतीयकरण - बलराज मधोक

हमें अपनी प्रकृति के अनुसार विकास करना होगा। विदेशी समाजों द्वारा हम पर बलात् आरोपित कार्य प्रणालियों का अनुगमन करना हमारे लिए निरर्थक है। वह असम्भव भी है।. .... जो उनके लिए अमृत है, वही हमारे लिए विष तुल्य हो सकता है। यह पहला पाठ है जिसे हमें स्मरण रखना है.......... हम अपनी परम्पराओं के कारण, अपने पीछे सहस्त्रों वर्ष के कर्म-संचय के कारण, अनी ही प्रवृत्ति के अनुसार आगे बढ़ सकते हैं, अपने जीवन प्रवाह के अनुकूल रहकर ही संगति कर सकते हैं।''

राष्ट्र धर्म दृष्टा महर्षि अरविन्द्र ने भी राष्ट्रीय आधार पर देश के लिए शिक्षा की रूपरेखा अपनी पुस्तक 'ए सिस्टम आफ नेशनल एजूकेशन' में प्रस्तुत करते हुए कहा है..........

'' हम जिस शिक्षा की खोज में है वह भारतीय आत्मा और आवश्यकता तथा स्वभाव और संस्कृति के उपयुक्त शिक्षा है, केवल ऐसी शिक्षा नहीं है जो भूतकाल के प्रति ही आस्था रखती हो बल्कि भारत की विकासमान आत्मा के प्रति, उसकी भावी आवश्यकताओं के प्रति उसकी आत्मोत्पत्ति की महानता के प्रति और उसकी शाश्वत आत्मा के प्रति आस्था रखती है........... प्रकृति में सब कही विविधता है और इस विविधता में ही समृद्धि है। अस्तु अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना को बनाए रखते हुए भी इस विविधता को मिटाया नही जा सकता।

वर्तमान समय की एक महान् धार्मिक संस्था 'युग निर्माण योजना' मथुरा के प्रवर्तक श्री राम शर्मा ने भी पाश्चात्य शिक्षा के अन्धानुकरण पर चिन्ता व्यक्त की है तथा राष्ट्रीय समृद्धि के लिए शिक्षा में अपनी भारतीय राष्ट्रीय रीतिनीति के समावेश का सुझाव दिया है. ...

''सौभाग्य से हमें राजनैतिक स्वतन्त्रता मिला गयी।......पर काम इतने भर से चलने वाला नही हैं। जिन कारणों से हमें वे दुर्दिन देखने पड़े वे अभी भी ज्यों के ज्यों मौजूद है इन्हें हटाने के प्रबल प्रयत्न करने की आवश्यकता है अन्यथा फिर कोई संकट बाहर या भीतर से खड़ा हो जायेगा और अपनी नई स्वाधीनता खतरे में पड़ जायेगी।

1. उत्तिष्ठ जागृत – पुनूरुत्थान का कार्य आधार और दिशा – स्वामी विवेकानन्द – संकलनकर्ता – एकनाथ रानडे – पृष्ठ – 63–68

व्यक्ति और समाज की विकृतियों की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा और जो अवांछनीय अनुपयुक्त है, उसमें बहुत कुछ ऐसा है, जिसको बदले बिना काम नही चल सकता। साथ ही उन तत्वों का अपनी रीति नीति में समावेश करना पड़ेगा जो प्रगति, शान्ति और समृद्धि के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं।"

(क) ओशो की शिक्षा के मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार :

भगवान श्री रजनीश का तो स्पष्ट मन्तव्य था कि विश्व इस स्थिति में ही नहीं है जो हमें कुछ दे सके। वह स्वयं चौराहे में खड़े दिक् भ्रमित मानव की तरह है उससे किसी भी प्रकार के मार्ग दर्शन की अपेक्षा करना ही निरर्थक होगी। फिर भी हमें समस्त मानव जगत् के ज्ञान के जो सत्य है उसे स्वीकार करना करना पड़ेगा और असत्य का त्याग करना पड़ेगा। अपने ज्ञान और व्यवहार को युग के अनुसार परमार्जित करना होगा तथा आधुनिक एवं पाश्चात्य ज्ञान और सत्य को राष्ट्रीयता के साँचे में ढाल कर प्रयोग करने की विधि विकसित करनी होगी।

अन्ततः शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर हूँ अनेक भारतीय मनीषियाँ एवं विचारकों ने राष्ट्र की भावी दिशा सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण चिन्तन प्रस्तुत करने का पुण्य कार्य किया है। ओशो भी उन्ही महापुरूषों में एक आधुनिक राष्ट्रीय चिन्तक तथा अग्रगण्य महामानव है जिनके मार्गदर्शन में चलकर निश्चित ही यह राष्ट्र परम वैभव को प्राप्त करने में समर्थ सिद्ध हो सकेगा। शोधकर्ता द्वारा उनके शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों को निम्नतः वर्गीकृत करके प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैं।

ओशो की प्रखर वाणी ने ओजस्वी विचारों ने मनुष्यता के दुश्मनों पर सम्प्रदायों पर मठाधीशों पर अन्धे राजनेताओं पर जोरदार प्रहार किया लेकिन पत्र पत्रिकाओं ने छापी या तो ओशो पर चटपटी मनगढ़ंत खबरें या उनकी निंदा।

भ्रम के बादल फैलाये ये भ्रम के बादल आड़े आ गये ओशो और लोगों के बीच जैसे सूरज के आगे बादल आ जाते हैं। इससे देर हुई और हो रही है मनुष्य के सौभाग्य को मनुष्य तक पहुँचने में।

जिन्दगी कभी दुबारा वही नहीं पूछती और हमारे जवाब वही हैं जो हमारे पुरखों ने दिये और मजा यह कि जितना पुराना जवाब दो लोग समझते हैं उतना ही अधिक ठीक होगा।

जवाब नया चाहिए। जवाब हमारी स्वस्फुरणा से पैदा होना चाहिए जवाब हमारे बोध से पैदा होना चाहिए। आँख वालों ने सदा यही कहा है "अथ दीवो भव" अपने दिये खुद बनो आंखों वालों ने कहा है तुम्हारे भीतर ज्योति भरी है जरा उसे तलाशो जरा निखारो क्या तुम बाहर की शराब पी रहे हो? तुम्हारे भीतर शराबों की शराब है। जिसे एक बार पी लिया तो कभी नही उतरेगी और ऐसी मदमस्ती जो कि बेहोशी भी नहीं हो तो, जो बेहोशी भी नहीं और साथ ही साथ होश भी होती है। मस्ती से भरा होश – या होश से भरी मस्ती।

ओशो के चिन्तन का दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार यही है।

मानवीय दृष्टिकोण :

ओशो का सम्पूर्ण चिन्तन उनकी शिक्षा उनके मानवीय दृष्टिकोण की ही परिणित है। एकात्म मानव दर्शन में एकात्म मानव का पूर्ण मानव का संकलित विचार हुआ है। भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य शरीर मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। अतः उसकी सभी प्रकार की क्षुधाओं को तृप्त करने के लिये चार पुरूषार्थों धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की व्यवस्था की गयी है। इनहीं चारो पुरूषार्थों से युक्त मानव ही ओशो की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु है। ओशो परिवार जाति राष्ट्र और सम्पूर्ण मानव समाज से मानव के सम्बन्धों तथा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सभी अंगो का विचार ओशो ने अपने चिन्तन में किया है। पश्चिम में मनुष्य का खण्डशः विचार किया गया है किसी ने उस राजनीतिक प्राणी और किसी ने उसे सामाजिक प्राणी की संज्ञा दी है। कार्ल मार्कस ने तो मनुष्य को मात्र रोटीमय ही बना दिया है तथा " कमाने वाला खायेगा" का नारा प्रस्तुत किया। लेकिन ओशो क अनुसार जो कमाने में सक्षम नही है उन्हें भी भोजन प्राप्त होना चाहिए। 'कमाने वाला खिलायेगा' तथा 'जो जन्मा सो खायेगा' का नारा दिया है। यह उनका मानवीय दृष्टिकोण ही है कि बच्चे रोगी और अपाहित सभी प्रकार के मनुष्यों की चिन्ता समाज को करनी चाहिए, ओशो के अनुसार सभी मनुष्य के हाँथो को काम और पेट को रोटी मिलना चाहिये। ओशो ने पूँजीवादी एवं समाजवादी दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं का मानव के लिए कल्याणकारी पूँजीवादी व्यवस्था ने मानव को स्वार्थी, अर्थपरायण, संघर्षशील एवं मत्स्य

न्यायप्रवण प्राणी माना है तथा समाजवादी व्यवस्था ने मानव को व्यवस्थाओं और परिस्थितियों का दास अकिचंन एवं अनास्थामय प्राणी माना है। अस्तु उक्त दोनों व्यवस्थाओं को ओशो ने अमानवीय करार दिया है। उनका कहना भी है कि -

"मनुष्य केवल भौतिक आवश्यकताओं का समुच्चय मात्र नहीं उसकी कुछ आध्यात्मिक आवश्कतायें भी है। जो जीवन पद्धति मानव जीवन के इस आध्यात्मिक पहलू की उपेक्षा करती हो वह कदापि पूर्ण नही हो सकती। यहाँ हमें इसका स्मरण रखना होगा कि भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक प्रगति की कल्पना केवल हवाई उड़ान ही नही है मानव की गरिमा को सुरक्षित रखते हुए समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का दायित्व भी निभाना ही होगा।"

ओशो द्वारा किया गया आह्वान उनके मानवीय दृष्टिकोण का परिचायक है:-

"हमें मानव को पुनः उसके स्थान पर प्रतिष्ठित करना होगा, उसकी शक्तियों को उसे जगाना होगा तथा उसे देवत्व की प्राप्ति हेतु पुरूर्षाथशील बनना होगा"। 1

शोधकर्ता के अनुसार ओशो सच्चे अर्थो में मानवता के पुजारी थें उनकी भावना उनकी कामना उनके उत्कृष्ट मानवीय दृष्टि का ही रूपान्तरण है -

"हम ऐसे भारत का निर्माण करेगें................ जिसमें जन्मा मानव अपने व्यक्तिव का विकास करता हुआ सम्पूर्ण मानवता ही नहीं अपितु सृष्टि के साथ एकात्मकता का साक्षात्कार कर 'नर से नारायण' बनने में समर्थ हो सकेगा।"

तत्वमीमांसीय दृष्टिकोण

तत्वों की विवेचना ही तत्वमीमांसा है। शोधकर्ता ने ओशो के चिन्तन को वर्गीकृत करने के उपरांत पाया है कि ओशो ने सनातन तत्वों के साथ राष्ट्रीय तत्वों सामाजिक तत्वों समाजिक तत्वों तथा धर्म के तत्वों के रूप में व्याख्यायित किया है। व्यक्ति को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों तत्वों को समुच्च बताया है। ओशो के ऊपर कुछ लोगों ने यह

1 ओशो दर्शन - सम्पादक - नरेन्द्र बोधिसत्व **पृष्ठ - 46**

आरोप भी लगाया है कि उन्होंने 'आत्मा' तत्व का विचार आवश्यकता से अधिक किया है। लेकिन इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है-

"आत्मा का विचार अवश्य करते हैं किन्तु यह सत्य नहीं है कि शरीर मन और बुद्धि का विचार नहीं किया। अन्य लोगों ने तो केवल शरीर का विचार किया। इसीलिए आत्मा का विचार हमारी विशेषता हो गयी।" 1

ओशो ने धर्म को एक अत्यन्त व्यापक एवं जीवन से घनिष्ठ सम्बंध रखने वाला तत्व बताते हुए कहा है कि -

"धर्म तो एक व्यापक तत्व है। वह जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखने वाला तत्व है।"

ओशो ने धर्म के तत्वों की विवेचना करते हुए इनको सनातन एवं सर्वव्यापी तथा देश काल और परिस्थिति सापेक्ष बताया है। तात्विक आधार पर बने नियमों को धार्मिक बनाते हुए कहा है- कि धर्म वह नही है जो आजकी के पंडित, पादरी बताते फिरते हैं धर्म अपनी आत्मा के अन्दर की व्यवस्था है।

"नियमों की सम्पूर्ण संहिता और उसके तात्विक आधार का नाम धर्म है।"1

ओशो ने "राष्ट्र" को भी मनुष्य की भांति चार तत्वों देश, संकल्प, धर्म आर्दश का समुच्चय बताया हैं 'राष्ट्र' के विधायक तत्वों की विवेचना करते हुए उन्होंने कहा है कि – गुरू का स्मरण करके अपने हृदय कमल से सब दोषों को निकाल कर दुख व शौक से परे उस विशुद्ध भक्ति तत्व का सम्यक चिन्तन करना ही ध्यान है।

"राष्ट्र के लिए चारबातों की आवश्यकता होती है। प्रथम भूमि और जन जिसे हम "देश" कहते है दूसरी सबकी इच्छा शक्ति याने सामूहिक जीवन का संकल्प तीसरी एक व्याख्या जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं और सबसे उपयुक्त शब्द जिसके लिए हमारे यहाँ प्रयुक्त हुआ है वह है धर्म और चौथा है जीवन दर्शन।"2

ओशा ने चितितत्व की विशुद्ध व्याख्या प्रस्तुत की है उन्होंने व्यक्ति की आत्मा की

1 प्रार्थना के बीज – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व पृष्ठ 135

तरह ही राष्ट्र की आत्मा को चिति कहा है। 'चिति' तत्व की यह विशुद्ध व्याख्या एवं उपरोक्त तत्वों की विवेचना शोधकर्ता की दृष्टि में उनके तत्व मीमांसीय दृष्टिकोण की परिचायक है।

ज्ञान मींमासीय दृष्टिकोण :

ज्ञान की विवेचना ही ज्ञान भींमासा है इसी आधार पर ओशो द्वारा प्रदन्त शिक्षा में उनके ज्ञान मींमासीय दृष्टिकोण के अध्ययन का प्रयास किया गया है।

ओशो ने ज्ञान मींमासा को अज्ञात की कोटि में नही रखा वह अज्ञेय की कोटि है ऐसा कहा है।

अज्ञेय का मतलब है जो जानकर भी अनजाना रह जाता है जान भी लेते हैं लोग कह भी देते हैं उसके सम्बन्ध में फिर भी वह हमारा विचार नही बन पाता हमारी धारणा नहीं बना पाती उसकी शिक्षा नही दी जा सकती उसके लिए कोई शिक्षाशास्त्र काम नहीं करेगा। और ज्ञानी सदा ही असफल मालूम पड़ेगा कहता है, चेष्ठा करता है पर पाता है कि कुछ ऐसा रह गया जो मैं कह नही पाया, यह ऐसा है जैसे हवा को मुट्ठी में बांधना मुट्ठी खुली है तो हवा है, मुट्ठी बन्द की तो हवा बाहर हो गयी अनुभव में तो ज्ञान है और जैसे ही हम शब्दों पर लाते हैं निकल जाता है। न कहे होता है कहा, निकल गया।

उपरोक्त कथन में उनकी ज्ञानपूर्ण तर्क-वितर्क की क्षमता तथा देश-विदेश के इतिहास का ज्ञान और देश विदेश की राष्ट्रीयता का पूर्वानुभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है अतः शोधकर्ता निर्विवाद रूप से यह कह सकता है कि ओशो ने अपनी प्रस्तुति में ज्ञान मीमांसीय दृष्टिकोण को अपनाया है।

ओशो की विचारधारा प्रयोजनवादी संदर्भ में

शोधकर्ता ओशो की विचारधारा का प्रयोजनवादी सिंद्धातो की कसौटी में परखना चाहता है। अतएवप्रयोजनवाद की व्याख्या करते हुए ओशो के विचारों में प्रयोजनवादी तथ्यों को खोजने का प्रयास करेगा।

1 शिक्षा दर्शन – शिक्षा में व्यावहारिकतावाद – राम शुक्ल पाण्डेय पृष्ठ – 221
2 तीसरी आंख का जगत – सम्पादक – अमृत साधना पृष्ठ – 12

भारतीय विद्वानों ने उपयोगिता व्यवहार और क्रिया को ही सत्य माना है, तथा स्पष्ट किया है कि जिस सत्य से प्राणियों का मंगल सिद्ध नहीं होता वह सत्य वास्तविक सत्य कहलाने का अधिकारी नहीं है। महाभारत के अनुसार :-

"यद्‌भूतहितमत्यर्थमतत् तदैव सत्"

अर्थात् जो प्राणियों का अत्यधिक हित करने वाला है, वही परमार्थ रूप से सत्य है।

प्रयोजनवाद की उपरोक्त व्याख्या के अनुसार ओशो स्पष्टतः प्रयोजनवादी ही दिखाई देते हैं। राष्ट्र का कल्याण एवं राष्ट्र की स्वतंत्रता का मुख्य प्रयोजन है अतः इस प्रयोजन को पूरा करने वाले असत्य को भी वे सत्य से बड़ा मानते हैं।

लेकिन हमने जो अभी दुनिया बनाई है उस दुनिया में अभी बहुत चीजें बनाने की जरूरत है कुछ का प्रयोजन है तथा कुछ चीजें गैर प्रयोजन की हैं गणित में आप सफल हो गये तो आप काम के आदमी हो गये और कविता में सफल हुए तो भी रोजी रोटी चल जायेगी। यह दुनिया हमने बनाई है चारों तरफ वह सबके लायक नहीं बनी है और शिक्षा भी हम जो दे रहे हैं वह किन्ही खास प्रयोजन में सबको ढाल देना चाहते हैं। और उस ढाँचे में जो ढल गया उसे तो आनन्द आ गया जिसका प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ वह मुश्किल में पड़ जाता है।

इस समय जो बेचैनी है मनुष्य जाति की और आदमी पागल होता जा रहा है। आत्महत्या कर रहा है परेशान है, रात नींद नहीं है, मानसिक अशन्ति है और जितनी शिक्षा बढ़ती है उतना यह सब बढ़ता है ऐसा मालूम होता है कि शिक्षित होने में और पागल होमे में कोई गहरा प्रयोजन है कोई आनुपातिक सम्बन्ध है। इसीलिए ओशो ने अपने देश को टेक्नालॉजी विकसित करने पर अधिक बल दिया है उनका प्रयोजन देश का सशक्त बनाने का है।

जितना कोई मुल्क सभ्य होता है शिक्षित होता है उतनी मुश्किल में पड़ जाता है। डी. एच. लारेन्स एक अदभुत विचारक था उसने तो यहाँ क्रोध में सुझाव द दिया कि सौ साल

1. शिक्षा में क्रांति – सम्पादक – नरेन्द्र बोधिसत्व – पृष्ठ – 71

2. तथैव

के लिए सब युनिवर्सिटी और कालेज बन्द का देना चाहिए अगर आदमी को बचाना है। पहले तो लोगो ने समझा कि वह मजाक कर रहा है। लेकिन उसकी मजाक धीरे-धीरे गम्भीर होती जा रही है और ऐसा लगता है कि कहीं वह ठीक ही तो नही कह रहा था।"1

ये प्रयोजन क्या है आधुनिक शिक्षक के सामने सवाल यह है कि वह व्यक्तियों के भीतर सिर्फ बेचैनी तनाव की दुनिया न खड़ी करे व्यक्ति के भीतर एक शानित और एक आनन्द और प्रकाश के फूल खिलाने में सहयोगी हो जाये।

लेकिन यह तभी हो सकता है जब गुलाब का फूल पूरी तरह खिल जाये तो गुलाब के पौधे को पास ले जाकर देखना उसके रोएं-रोएं में आनन्द छा जाता है । आदमी जब पूरा खिलता है जैसे कृष्ण कोई बुद्ध, या कोई क्राइस्ट जब पूरी तरह खिल जाता है तो उसके सारे प्राणों का रोयां रोयां आनन्द से पुलकित हो जाता है। "2

प्रयोजनवादी विचारधारा में परम्पराओं एवं रूढ़ियों की उपेक्षा की जाती है व्यक्ति और समाज दोनों का ध्यान रखा जाता है तथा कोरे सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहारिकता को उपयुक्त माना जाता है।

ओशो रूढ़ियों परम्पराओं एवं अन्धविश्वासों के विरूद्ध हैं। अपने देश में प्रचलित रूढ़ियों को मिटाने के साथ-साथ विदेशी रूढ़ियों के अन्धानुकरण पर उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया है तथा इस दृष्टिकोण को अविवेकपूर्ण माना है। व्यक्ति और समाज दोनों के परस्पर सम्बन्ध को ही उन्होंने संस्कृति की संज्ञा दी है। कोरे किताबी ज्ञान को उन्होंने शिक्षा नहीं वरन् शिक्षा से उनका तात्पर्य है 'मानव' का सर्वागींण विकास है।

इस प्रकार उपरोक्त अध्ययन के आधार पर शोधकर्ता ने यह निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया है कि ओशो ने राष्ट्रीय प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए शिक्षा को साधन के रूप में स्वीकार किया है। छोटे-मोटे प्रयोजन के लिए सिद्धान्तों से समझौता करना उनकी आदत नहीं है । वरन् उच्च प्रयोजन जैसे राष्ट्र की स्वतन्त्रता एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए

1. शिक्षा में क्रांति - सम्पादक - नरेन्द्र बोधिसत्व - पृष्ठ - 13

2. ओशो वर्ल्ड - अक्टूबर 2000 - सम्पादक - नरेन्द्र बोधिसत्व - पृष्ठ - 9

वे कुछ भी करने के समर्थक हैं अस्तु आदर्शवादी विचारक ही नहीं किन्तु प्रयोजन वादी विचार धारा के आदर्श प्रस्तोता भी है।

अपनी शैक्षिक विचार धारा में उन्होंने भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्व प्रदान किया है। मानव के अन्दर दया, ममता, बन्धुता, परोपकार और उदारता जैसे सर्वश्रेष्ठ गुण अध्यात्मिकता के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। ऐसा उनका सुझाव है। मानव के लिए प्राप्त मूल्य उन्होंने सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् बताया है। विविधता में दैवी एकता के सिद्धान्त का अपने ढंग से प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार शोधकर्ता की दृष्टि में ओशो की उपरोक्त विचारधारा पूर्णतः आदर्शवादी है। अतएव, शोधकर्ता निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करता है कि श्री ओशो तत्वतः आदर्शवादी विचारक थे और उनकी शैक्षिक विचारधारा में आदर्शवाद पूर्णतः परिलक्षित होता है।

ओशो की शिक्षा का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :

'शोधकर्ता की दृष्टि में ओशो की शिक्षा' मनोवैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण है। उन्होंने मनुष्य की भौतिक उन्नति के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक उन्नति पर विशेष बल दिया है। ''मानवीय मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य की मूल प्रकृति आध्यात्मिक है।''1

अतएव ओशो शरीर के विकास क साथ मन, बुद्धि और आत्मा अर्थात् आध्यात्मिक विकास के पक्षधर दिखाई पड़ते हैं। आधुनिक शिक्षा में मानव की इस आध्यात्मिक प्रकृति की घोर उपेक्षा हुई है। इसीलिए मानव विकास की असीम सम्भावनाओं से वंचित होता जा रहा है। 2

ओशो का मानना है कि आध्यात्मिक प्रकृति के कारण ही मानव के अन्दर कला, संस्कृति, सदाचार, दया, धर्म, नैतिकता और उदारता के गुणों का विकास होता है इसलिए शिक्षा के द्वारा मनोवैज्ञानिक ढंग से मनुष्य के इन गुणों को पुष्ट बनाने का कार्य किया जाना

1. भारतीय शिक्षा के मूल तत्व – शिक्षा के भारतीय मनोवैज्ञानिक आधार –
लज्जाराम तोमर – पृष्ठ – 62

2. तथैव – पृष्ठ – 63

चाहिए ऐसा न किए जाने पर उन्होंने मानस के विकृत होने एवं धर्म के क्षीण होने की संभावना व्यक्त की है।

ओशो ने भी 'संस्कार' प्रक्रिया पर जोर दिया है। उन्होंने स्वीकार किया है कि जन्मतः मनुष्य पशुवृत होता है, संस्कारित होने के उपरान्त ही यह 'सामाजिक' बनता है। उनका मानना है कि संस्कारों के द्वारा ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। अतः जनता को सुसंस्कृत करने का महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा के द्वारा जाना चाहिए।

"व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास शिक्षा और मनोविज्ञान का मूल विषय है।"1

ओशो ने व्यक्तित्व निर्माण के लिए सद्कर्मों एवं संस्कारों की आवश्यकता पर बल दिया है। 'योगः कर्मसु कौशलम्''के आधार पर योग, व्यायाम, संध्या उपासना और सेवा के द्वारा कार्यक्षम और यशस्वी व्यक्तित्व के निर्माण का सुझाव उन्होंने दिया है। व्यक्तिगत भिन्नता, सामूहिक मन एवं समाज के मनोविज्ञान को ओशो ने स्वीकार किया है।

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का सुझाव उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिचायक है क्योंकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा मातृभाषा के माध्यम से बालक सहजरूप में सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उनके व्यष्टि और समष्टि, सामञ्जस्यपूर्ण समाज व्यवस्था तथा नये भारत की खोज नामक लेख कोटिशः भारतीयों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावित करने में सफल सिद्ध हुए हैं।

अस्तु उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी 'शिक्षा' पूर्णतः मनोविज्ञानिक' है।

ओशो का वैज्ञानिक विश्लेषण –

ओशो महान् दार्शनिक थे और दार्शनिक मूलतः वैज्ञानिक ही होता है। इस नाते ओशो एक वैज्ञानिक थे। वे संस्कृति का संरक्षण मात्र करने वालों में से नही थे वरन् संस्कृति को गति प्रदान कर सजीव बनाने वाले युगदृष्टा थे। रूढ़ियों परम्पराओं और अन्ध विश्वासों के

1. ओशो वर्ल्ड – दिसम्बर 2001 – सम्पादक – माँ धर्म ज्योति

पूर्णतः विरोधी लेकिन पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को आँख बन्द करके स्वीकार करने के समर्थक भी नही थे।

ओशो कहते हैं काव्य को मै विज्ञान की दूसरी सीढ़ी मानता हूँ विज्ञान से भी ऊपर। उपयोगी कम सार्थक जादा वितान उपयोगी है बीमार होगे तो विज्ञान के पास जाना पड़ेगा कार खराब होगी तो वैज्ञानिक से पूंछताछ करनी पड़ेगी विज्ञान की उपयोगिताहै उपादेयता है। इसीलिए मै विज्ञान का विरोधी नही हूँ परन्तु इसकी उपयोगिता चरम मूल्य नही है उसकी उपयोगिता तुम्हारे लिए है तुमसे ऊपर नही है तुम उसके ऊपर हो। और विज्ञान की उपयोगिता इसलिए भी है कि तुम काव्य जगत में प्रवेश विज्ञान तुम्हें ज्यादा समय देगा क्योकि जिस काम में घंटो लगते थे विज्ञान क्षणों मे कर देगा। विज्ञान तुम्हारे पास इतनी क्षमता जुटा देगा कि तुम चाहो तो नाचो गाओ चाहो तो विज्ञान करो। ध्यान करो विज्ञान समृद्धि देगा लेकिन समृद्धि को एक ही यात्रा हो सकती है। कि अंर्तयात्रा शुरू हो जाये।''1

इसलिए ओशो विज्ञान के समर्थक हैं वे चाहते है कि विज्ञान आत्मसात हो जाये मगर विज्ञान पर एक नही जाना विज्ञान के ऊपर वे काव्य का रंग देना चाहते हैं, विज्ञान अगर मंदिर बना सके तो अच्छा लेकिन इस मंदिर का जो अर्तगर्म होगा वह काव्य का होना चाहिए अन्यथा इस मंदिर का कोई अर्थ नहीं होगा।'' 2

वैज्ञानिक पदार्थ के जगत में जान गये हैं कि हर पदार्थ एक गतिमान ऊर्जा है। आइंस्टीन ने इस सत्य को जानकर ही अणु बम बनाने की विधि विकसित की। वैज्ञानकि जैसे ही पदार्थ की गहनता में पहुँचता है।

वैसे ही रहस्य दर्शी मिस्टिक की तरह वाह करने लगता है उसके मुख से उपनिषदो की तरह के वक्तव्य प्रगट होने लगते है क्योंकि उसे दिखाई देने लगता है कि अस्तित्व एक अनबूझ रहस्य हे।

अब जरूरत है कि यही बात दूसरे दोर से शुरू हो अब अध्यात्मिक व्यक्ति

1. ओशो टाइम्स (वैज्ञानिक युग में तप) – सम्पादक – अमृत साधना – 1 जुलाई 02 पृष्ठ – 6
2. एकात्म मानवदर्शन – एकात्म मानववाद – पं. दीनदयाल उपाध्याय पृष्ठ – 66

वैज्ञानिक भाषा में सोचने लगें तो ही अध्यात्म के जगत में वृचलित भ्रान्तियाँ अंधविश्वास और गलत धारणायें समाप्त होंगी विज्ञान ने भौतिक जगत को साफ सुथरा बना दिया अब उसे अन्तर विश्व में प्रवेश कर उसे वैज्ञानिक स्पष्टता देनी है इस काम के लिए यह अति आवश्यक है कि अध्यात्मिक लोग अधिक से अधिक वैज्ञानिक समय को अन्वेषक बुद्धि को अपनाये।

भारतीय जीवन को भौतिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिए उन्होंने भौतिक साधनों की आवश्यकता का अनुभव किया है लेकिन मशीनों के प्रयोग के कारण मानव के आर्थिक उत्पादन को पूर्ण करने का कार्य किया है। उन्होंने बताया है कि पश्चिम में यन्त्रो का निर्माण इसलिए किया गया है क्योंकि वहाँ टेक्नालॉजी ही प्रमुख है। इस सम्बन्ध मे उनका मत पूर्णतः वैज्ञानिक है -

ओशो ने अपने देश की प्रगति के लिए उपयुक्त यन्त्रों के निर्माण का सुझाव दिया है। विज्ञान को प्रगति का लक्षण और विकास के लिए आवश्यकता बनाते हुए अपने देश में प्राद्योगिकी के विकास पर भी बल दिया है तथा जोरदार शब्दों में यह घोषणा भी की है

"विज्ञान किसी देश की धरोहर नहीं वह हमारे भी अभ्युदय का साधन हो सकता है वसर्ते हम अब चरखे को भूल जायें और हमें भूलना ही पड़ेगा अन्यथा यह देश कभी तरक्की नहीं कर पायेगा।"

उपरोक्त विश्लेषण के बाद शोधकर्ता का मानना है ओशो के महान्, चिंतक, कर्मयोगी, दार्शनिक, तत्ववेत्ता और विज्ञानवेत्ता थे। उन्होंने संघर्ष के स्थान पर " परस्पर पूरकता" तथा परम्परावलम्न और विविधता के मूल में निहित "एकता" का सिद्वान्त प्रस्तुत करके मानव जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का आजीवन प्रयास किया।

ओशो के शिक्षा दर्शन के सबलपक्ष

शोधकर्ता ने ओशो की शिक्षा के दार्शानिक एवं मनोवैज्ञानिक आधारों को प्रस्तुत करते हुए उनके मानवीय, तत्वमीमांसीय तथा ज्ञानमींमासीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करने का प्रयास

किया है। इसके साथ उनकी शिक्षा का वैज्ञानकि विश्लेषण भी किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि ओशो दार्शनिक होने के साथ साथ ''वैज्ञानिक'' प्रतिभा के भी धनी थे।

भौतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करने वाली शिक्षा के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। शोधकर्ता के अनुसार उनकी शिक्षा की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं जिन्हें शोधकर्ता के द्वारा शोधकर्ता के द्वारा सबल पक्ष के रूप में प्रस्तुत करने का विचार किया गया है।

ओशो ने अपने शिक्षा दर्शन में एकीकरण की भावना पर जोर देकर कहा है कि विश्व विद्यालय को यह पूंछना बन्द कर देना चाहिए कि कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है विश्वविद्यालय के कैम्पस में कोई हिन्दू नही है कोई मुसलमान नहीं है नहीं तो फिर विश्वविद्यालय का क्या मतलब जहाँ विश्व एक नहीं हैं वहाँ विश्वविद्यालय कहना क्यों। दूसरी बीमारी जो समाज में व्याप्त है कि लड़का कौन, लड़की कौन और इसके साथ सारा मूल्यांकन है वही विश्वविद्यालय में थोपा जा रहा है विश्वविद्यालय को फिक्र करना छोड़ देना चाहिए कि कौन लड़का है तथा कौन लड़की है। शिक्षा से क्या सम्बन्ध है किसी के स्त्री पुरूष होने का हमारे लिए विद्यार्थी हैं। कौन स्त्री है, कौन पुरूष है यह उनका अपना मामला है।

ओशो ने विश्व विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा में भी आमूल चूल परिवर्तन की बात जोरदार शब्दों में की है क्योंकि उनकी नजर में यह पूरा ढांचा चालाकी, घृणा महत्वाकांक्षा, हिंसा, पदलिपसा श्रेष्ठता उस सब चक्कर का हिस्सा है। ओशो ने अपनी शिक्षा में धर्म – शिक्षा का समावेश बखूबी ढंग से किया है, नारी शिक्षा पर जोर देकर उन्होंने कहा है कि स्त्री को केवल स्त्री शिक्षा की आवश्यकता है स्त्री को अगर हम पुरूषों की तरह शिक्षित करेंगे तो अगले सौ वर्षो में स्त्री मर जायेगी और वह नकली पुरूष के रूप मे पैदा होकर धरती को मातृत्व हीन कर देगी।

अत: शोधकर्ता की दृष्टि में ओशो ने अपनी चिन्तन धारा के द्वारा भारतीय समाज को
अत: शोधकर्ता की दृष्टि में ओशो ने अपनी चिन्तन धारा के द्वारा भारतीय समाज को पुन: प्रतिष्ठित करन का पुन्य कार्य किया है।

सहशिक्षा :

ओशो सामाञ्जस्य पूर्ण समाज व्यवस्था के लिए बालक और बालिकाओं दोनों का समान रूप से संस्कारित किए जाने का सुझाव दिया है। उन्होंने सुझाव देते हुए कहा है कि "भेद के आधार पर कोई व्यवस्था नही चल सकती भेद भावना सृष्टि के नियमों के विपरीत है। वह विनाश का कारण बनेगी रचना का नही।"

अतः ओशो ने बालक और बालिकाओं में भेद को दूर करते हुए। मनुष्य का पूरा जीवन मनुष्य की पूरी जाति, पूरी सभ्यता और संस्कृति अधूरी है क्योंकि नारी ने उस संस्कृति निर्माण में कोई भी दान कोई भी कंट्रीव्यूसन नही किया। नारी कर भी नही सकती थी पुरूष ने उसे करने का मौका ही नही दिया। हजारों वर्ष तक स्त्री पुरुष से नीचे छोटी और हीन समझी जाती रही है कुछ तो देश ऐसे थे जैसे चीन में हजारों वर्ष तक यह समझा जाता रहा कि स्त्रियों के भीतर कोई आत्मा नही होती। इतना ही नही स्त्रियों की गिनती जड़ पदार्थो में की जाती थी आज से 100 वर्ष पहले चीन में अपनी पत्नी की हत्या पर किसी पति को कोई दण्ड नही दिया जाता था। ओशो सह शिक्षा क पक्षधर हैं उन्होंने जोर दार शब्दों में कहा है कि अगर लड़का लड़की को शुरू से ही अलग कर देगे की प्रक्रिया चलती रही तो उससे समाज की बुराइयाँ बढ़ेगी अतः लड़के लड़कियों को एक दूसरे को समझने का अवसर दिया जाना चाहिए तथा अध्ययन के क्षेत्र में शिक्षा समान प्रकार की नही होनी चाहिए नारी को नारी शिक्षा तथा पुरूष को पुरूष शिक्षा में दीक्षित किया जाना चाहिए जिससे मातृत्व की रक्षा हो सके। यही ओशो की विचारधारा का सबल पक्ष है। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि जब तक छात्राओं के लिए हमारे देश में पर्याप्त विद्यालयों की व्यवस्था नहीं हो जाती तब तक छात्रों के साथ ही छात्राओं को भी शिक्षित किया जाना चाहिए। प्राथमिक स्तर तक बालक और बालिकाओं को साथ साथ शिक्षित करने के पक्षधर थे क्योंकि उनका मानना था कि सहशिक्षा से बालक और बालिकाएं एक दूसरे को अच्छी तरह से समझने में सक्षम हो जाऐंगे। बालिकाओं में पुरूषोचित गुणों, त्याग, बलिदान और साहस तथा वीरता का विकास होगा तथा बालकों में स्त्रियोचित गुणों दया, क्षमा, स्नेह, ममता और उदारता का विकास होगा जिससे

समाज में समरसता का वातावरण स्थापित होगा। ओशो के कथानुसार परिवार में कन्धे से कन्धा मिलाकर पुरूषों के साथ कष्ट उठाने में महिलाओं की परम्परा प्रीचन काल से चली आ रही है। वे समाज का आधा भाग होती है इसलिए उनसे राजनीति में भी सहभागिता प्रदान की जानी चाहिए। इस प्रकार ओशो नए भारत के निर्माण में महिलाओं की बराबर की भागीदारी चाहते थे तथा उन्होंने महिला मोर्चा का गठन करके महिलाओं के सहभाग को बढ़ाने का कार्य किया। यही उनकी विचारधारा का सबल पक्ष है।

स्त्री शिक्षा :-

ओशो ने कहा है कि सबसे पहले यह समझना जरूरी है कि नारी का अब तक कोई व्यक्तित्व नहीं रहा है और पुरूष ने उसके व्यक्तित्व को मिटाने की भरसक कोशिश की है हजारों वर्षों तक नारी को शिक्षा नहीं दी। सिर्फ इसलिए की शिक्षित होते ही वह अपने पैरों पर खड़ी होने का प्रयास करेगी। पैर के नीचे से जमीन खींचनी हो तो शिक्षा मत दो। अगर शिक्षा दी जाये तो व्यक्ति पंगु हो जाता है और उस समाज में जहाँ शिक्षित की गति होगी, नारी कोई गति न कर पायेगी इसलिए नारी को शिक्षित होने से वर्जित रखा।

लेकिन अशिक्षित नारी का मतलब अशिक्षित माँ, अशिक्षित पत्नी, अशिक्षित बेटी, अशिक्षित बहन, अशिक्षित प्रेमिका। नारी को अशिक्षित रखने का अर्थ क्या होगा कि जीवन के सब तलों पर अशिक्षित नारी खड़ी हो जायेगी और शिक्षित पुरूष और अशिक्षित नारी के के बीच इतना बड़ा फासला हो जायेगा कि उसके बीच ताल मेल बैठाना मुश्किल है। इसीलिए नारी की स्थिति एक दासी की तरह हो गयी और पुरूष मालिक बन गया, पति का मतलब मालिक होता है स्वामी का मतलब भी मालिक होता है और हजारों साल तक से स्त्री पति को स्वामी कह रही है और अपने पत्रों में आपकी दासी लिखकर दस्तखत कर रही है।

दासी और मालिक के बीच कभी अच्छे संबंध नहीं हो सकते एक गुलाम और मालिक के बीच कैसे अच्छे संबंध हो सकते हैं, गुलाम और मालिक के बीच हमेशा तनाव होगा, अशान्ति होगी, बैचेनी होगी, संर्घष होगा और इसीलिए हजारों साल से स्त्री और पुरूष के बीच भीतरी संघर्ष है। जो दिनरात चल रहा है, स्त्री और पुरूष के बीच जो हमने अब तक व्यवस्था की है वह गलत है अगर स्त्री और पुरूष के बीच शांतिपूर्ण, प्रेमपूर्ण, मैत्रीपूर्ण व्यवस्था लानी हो तो पहली जरूरत है वह स्त्री को हमें पूरी तरह शिक्षित करना पड़ेगा और पुरूषों के समकक्ष होने का मतलब है पुरूषों ने पुरुष होने से जितना विकास करें तभी नारी शिक्षा का असली मतलब निकलेगा। वह उनके विचार थे। जिनको शोधकर्ता ने सबल पक्ष में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अर्थकारी शिक्षा -

ओशो ने अपनी शिक्षा विचारधारा में आर्थिक शिक्षा पर जोर दिया है उनका मानना है जब तक देश आर्थिक रूप से सबृद्ध नहीं होगा तब तक देश का समग्र विकास होना संभव नहीं है इसलिए उन्होंने उदाहरण देकर कहा है कि अगर रूस का बच्चा अपने भविष्य के बारे में सोचता है तो वह यह सोचता है कि चांद पर घर कैसे बनाया जाये और भारत का बच्चा यह सोचता है कि रामलीला कहाँ हो रही है हमारे बच्चे रामलीला देख रहे हैं। रामलीला देखना बुरी बात नहीं है और राम बहुत सुन्दर हैं अद्भुत हैं लेकिन रामलीला पर रूक नहीं जाना अन्यथा यह रामलीला खतरनाक हो जायेगी क्योंकि रामलीला पर रूक जाने का मतलब है पीछे की तरफ देखना और पीछे की तरफ मुड़ी हुई गर्दन धीरे-धीरे पैरालाइज हो जाती है फिर वह आगे की तरफ नहीं जाती ऐसे में आर्थिक विकास का रूक जाना खतरनाक हो सकता है।

ओशो ने आर्थिक सुस्ती के कारण ही गांधी के चरखे को नकार दिया है वे कहते हैं स्वदेशी का नारा देश भक्ति के लिए पर्याप्त है परन्तु आगे जाने के लिए विज्ञान आवश्यक है भारत की आर्थिक व्यवस्था जब तक सुदृण नहीं होगी तब तक भारत का समग्र विकास संभव नहीं है। इसलिए काम प्राप्त करने के लिए औद्योगिक शिक्षा तथा तकनीकि शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए इसके साथ-साथ यह भी व्यवस्था की जानी चाहिए कि मनुष्य धनलोलुप प्राणी बनकर न रह जाये इसलिए धार्मिक शिक्षा मानवीय मूल्यों की शिक्षा को भी ओशो ने छात्र के लिए आवश्यक अंग माना है क्योंकि यही गुण मनुष्य को पशुत्व से ऊपर उठाते हैं। अस्तु शोधकर्ता का यह मानना है कि ओशो ने आध्यात्मिक समृद्धि के साथ-साथ भौतिक समृद्धि का भी पूरा विचार किया है और भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए अर्थकारी शिक्षा का सुझाव दिया है।

(ख)ओशो की शिक्षा के निर्बल पक्ष :-

ओशो विश्व साहित्य में एक नया अध्याय है जीवन और अस्तित्व का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रह गया हो योग, तंत्र भोग हसीद सूफी आदि अनेक साधना पद्धतियों के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है कृष्ण, बुद्ध, महावीर, जीजस, जरथुस्त्र अष्टावक्र, गोरख, नानक, कबीर, तथा विश्व के तमाम रहस्य दर्शियों और संतों के साहित्य को नया जीवन दिया है साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन शिक्षा, परिवार सेक्स, समाज, गरीबी जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण संभावित परमाणु युद्ध का विश्व संकट आदि अनगिनत विषयों पर उनकी मौलिक एवं क्रांतिकारी दृष्टि ही है मार्गदर्शन किया है।

इन सब विषयों पर अपनी जैसी दृष्टि रखने के कारण वह अत्यंत विवादास्पद हो गये है शोधकर्ता ने निरपेक्ष भाव से उनका निर्बल पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

1. शिक्षक को केन्द्र न मानकर विद्यार्थी को केन्द्र माना है जो आज के समाज में सम्भव नहीं है।

2. धर्म संस्कृति जों आज के युग के प्राण कहें गये हैं उनको ओशो ने बिलकुल नकार दिया है।

3. शिक्षा के व्यवसाई करण का विरोध उनकी शिक्षा को नकारने पर मजबूर करता है

4. आपके प्रवचनों पर पारस्परिक इतना भेद है जिसको आज आदमी समझने की सामर्थय नहीं रख सकता और ऊब जाता है

5. संयोग से समाधि का रास्ता आपने जो अपनाने की प्रक्रिया बताई है उसे भी आम आदमी स्वीकार नहीं कर पाया है

6. आपने लिखा है मनुष्य को खण्ड खण्ड करके तोड़ने वाले धर्म ही है इस पर लोगों का विश्वास जम नहीं पाता

7. ओशो के आर्थिक विचार अधिक उपयुक्त होते हुए भी वास्ततिकता से परे जैसे प्रतीत

होते हैं। अपार धन की तृष्णा स्वामित्व की भूख असंतुलित प्राकृतिक दोहन जैसे मानवीय सहज स्वार्थों को संस्कारों के माध्यम से नियन्त्रण करना कठिन कार्य है

8. सेक्स को स्वच्छन्द कर देने की भावना रूढ़ियों के पुजारी भारत के मन में इतनी जल्दी नहीं उतर सकती।

ओशो और गांधी

गांधीजी के सम्बन्ध में जो ओशो की विचारधारा है उसका चिन्तन करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है ओशो का कहना है जिंदा आदमी को मार डालो और मरे हुए आदमी को पूजा करो। फिर पूजा हम उसी की करते हैं जिसको हमने बहुत सताया हो "पूजा मानसिक रूप से पश्चाताप है" वह प्रायश्चित है। जिन लोगों को हम जीते जी सताते है उसके मरने के बाद सारा समाज उसकी पूजा करता है।

गांधी को जिन्दा रहते सतायेंगे लेकिन मर जाने पर हजारों साल पूजा करेंगे यह गिल्टी का सस यह अपराधी चित्त का हिस्सा है यह पूजा। महापुरूषों को या तो गोली मारते हैं या फूल चढ़ाते हैं लेकिन महापुरूषों पर कभी सोचते नहीं है।

गांधी से ओशो का कोई विरोध नहीं है बहुत प्रेम है और इसलिए वे रोज ही उनके रास्ते पर आ जाते हैं। ओशो ने कहा है इसलिए उनकी बात करना जरूरी है क्योंकि इन वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आकाश में उनसे चमकदार कोई सितारा पैदा नहीं हुआ। उस सितारे पर आगे भी सोचना और विचार जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है लेकिन जहां मेरा उनसे विचार भेद है वहां मैं निवेदन जरूर करना चाहता हूं।

गांधी का विचार वैज्ञानिक नहीं है, वह अवैज्ञानिक है गांधी का विचार नैतिकता है लेकिन वैज्ञानिक नहीं है सांइटिफिक नहीं हैं। जीवन भर उनका चिन्तन नैतिक तो रहा लेकिन वैज्ञानिक नहीं रहा और गांधी का हिन्दुस्तान में जो प्रभाव दिखाई पड़ा वह भी इसी कारण रहा। हिन्दुस्तान हजारों साल से अवैज्ञानिक होने की आदत में ही लिप्त रहा है। हिन्दुस्तान में इसीलिए विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया।

हिन्दुस्तान के पास प्रतिभा की कमी नहीं है। हिन्दुस्तान के पास बुद्ध, दिमान, नागार्जुन, और शंकर जैसे अद्भुत प्रतिभाशाली लोग हुए हैं लेकिन हिन्दुस्तान के पास एक भी आंइस्टीन, एक भी डार्विन पैदा नहीं हुआ। इस अवैज्ञानिक परम्परा के कारण गांधी की विचार धारा को समर्थन मिलना शुरू हुआ।

गांधी को कोई बात ठीक लगे तो वे कहते हैं यह मेरी अन्तरात्मा कह रही है अब अन्तर वाणी कुछ भी कह सकती है आपकी अर्न्तवाणी किसी बात के ठीक होने का सबूत नहीं है। गांधी के इस अर्न्तवाणी के सिद्धान्त ने हिन्दुस्तान को बहुत नुकसान पहुंचाया है क्योंकि इससे अवैज्ञानिकता बढ़ती है।

लेकिन गांधी जैसे बड़े व्यक्ति ने अर्न्तवाणी को इतना बल दिया तर्क को नहीं, विचार को नहीं, सोच विचार को नहीं कि हम विचार करें और तय करें फिर एक सत्य के लिए दबाव डालते हैं और उस दबाव को यह समझते हैं। कि यह अहिंसा है। दबाव किसी दशा में अहिंसा नहीं हो सकता।

दबाव चाहे जिसका हो हिंसा है। मै आपकी छाती पर छुरा लेकर बैठ जांऊ तो यह भी हिंसा है, और मै आपके दरवाजे पर अनशन करके बैठ जांऊ तो यह भी हिंसा है। मै आपको हर हालत में दबा रहा हूं और कई बार छुरे का भय उतना नहीं होता जितना कोई आदमी द्वार पर आकर मर जाये इस बात का होता है और गांधी जैसा आदमी अगर मरने लगे तो हम गलत भी न होंगे तो झुक जायेंगे कि चलो ठीक है इस आदमी को मरने नहीं देना चाहिए यह आदमी बहुमूल्य है। चाहे दबाव किसी प्रकार का हो दबाव मात्र हिंसा है चाहे आप छुरे से दबायें किसी को और चाहे मरने की धमकी देकर दबायें। और मरने की धमकी देकर दबाना और खतरनाक है क्योंकि दूसरा आदमी एक दम निहत्था हो जाता है वह उत्तर भी नहीं दे सकता जब तक कि वह भी यही पागलपन न करे कि वह भी अनशन लेकर बैठ जाये और कहे कि मै भी मर जाऊंगा।

गांधी के द्वारा जो क्रांति हो गयी वह अहिंसात्मक नहीं थी और वह क्रांति सम्भव हो सकी वह इसलिए नहीं कि भारत अहिंसात्मक आन्दोलन कह रहा था। बल्कि भारत इतना कायर इतना कमजोर निवीर्य हो गया है कि उसमें लड़ने की हिम्मत ही नहीं रही। गांधी ने भी आजादी मिलने के बाद यह बात स्वीकार की। कि अब मैं समझता हूं, क्योंकि आजादी मिलते ही जो हिंसा का दौर छूटा पूरे मुल्क में उससे यह सब बात पता चल गयी कि यह मुल्क कितना अहिंसक है।

गांधी ने यह बात स्वीकार की कि मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान ने कमजोरी की वजह से अहिंसा की बातें मान ली थी, हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है।

हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी हिन्दुस्तान आजाद नहीं हुआ। हिन्दुस्तान से अंग्रेजी हुकूमत गयी और हिन्दुस्तानी पूंजीपति के हांथ में हुकूमत आ गयी। अतः हिन्दुस्तान की गुलामी जारी है हिन्दुस्तान को बटवाने में गांधीजी की कोशिश का जितना हांथ है उतना किसी दूसरे की कोशिश का नहीं है।

हांलाकि गांधी जी ने जितनी कोशिश एक रखने की उतनी किसी ने नहीं की ओशो की समझ यह है कि जितना हमने जोर दिया कि हिन्दु-मुस्लिम भाई भाई उतना हमने साफ कि कि ये दोंनो अलग है असल में जब हम भाई भाई कहते हैं तभी कहना शुरू करते हैं जब दुश्मनी की हालत बन जाती है उसके पहले हम कभी नहीं कहते। हम कभी नहीं कहते कि हिन्दी बर्मी भाई भाई परन्तु हमें डर है मुसलमान से अतः हम कहते हैं हिन्दु मुस्लिम भाई भाई वह हमारे भय का सबूत था।

पहली बात यह कि वह जितना हमने दोहराया उतना साफ हुआ कि इन दोंनो के बीच कोई कोई गहरी दुश्मनी है जिसको भाई भाई कहकर हम पूरा करना चाहते हैं। दूसरा गांधीजी और उनके दूसरे साथियों ने जितना जोर दिया कि हिन्दु मुस्लिम भाई भाई, उससे वह भाई भाई तो न हुए लेकिन बड़ा अजीब परिणाम आया और वह यह कि अगर दो भाई एक न हो सकें तो पार्टीशन हो जाना चाहिए।

अगर हमने भाई भाई पर जोर न दिया होता तो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान न हुए होते क्योंकि पार्टीशन दो भाईयों के बीच होता है। तो पार्टीशन का ख्याल ही नहीं आता अतः जैसे बाप की जायदाद बंट जाती है वैसे हिन्दुस्तान की जायदाद भी बांट दी गयी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ओशो
(भगवान श्री रजनीश) :-

शिक्षा में क्रान्ति !
नये भारत की खोज !
शिक्षा और जागरण !
संभोग से समाधि की ओर !
जीवन ही है प्रभु !
क्या ईश्वर मर गया है ?
शिक्षा और विद्रोह !
मैं भारत और गांधी !
प्रार्थना के बींज !
नारी और क्रान्ति !
नई क्रान्ति की रूपरेखा !
महावीर या, महाविनाश !

पत्रिकाएं :-

ओशो टाइम्स-नये मनुष्य का जन्म
ओशो वर्ल्ड-वैज्ञानिक युग में तप
'' '' मौन कितना सरल कितना कठिन
'' '' विध्वंस और सृजन का नृत्य
'' '' तीसरी आँख का जगत
'' '' तंत्र दर्शन

दीनदयाल उपाध्याय :-

एकात्म मानव दर्शन
राष्ट्र जीवन की दिशा
कर्तव्य एवं विचार
भारतीय अर्थनीति

डॉ० वैद्यनाथ शर्मा :-

विश्व के महान शिक्षा शास्त्री

दयानन्द सरस्वती :-

सत्यार्थ प्रकाश

लज्जाराम तोमर :-

भारतीय शिक्षा के मूलतंत्र

विवेकानन्द :-

भारत का भविष्य

शिक्षा रामकृष्ण मिशन

रवीन्द्र अग्निहोत्री :-

भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं

दयानन्द सरस्वती :-

सत्यार्थ प्रकाश

पाठक एवं त्यागी :-

शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त

भाई योगिन्द्रजीत :-

शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक सिद्धान्त

मुरली मनोहर जोशी :-

उ0प्र0 सन्देश

श्रीराम आचार्य :-

युग की मांग प्रतिभा परिस्पर

राणा प्रताप सिंह :-

शिक्षा में राष्ट्रीय बोध, सरस्वती शिशु मन्दिर के आधारभूत बिन्दु

विद्याभारती ज्ञान एवं चरित्र

महर्षि कणाद :-

संस्कृति का विचार